

प्राक्कथन

इस बात पर सभी शिक्षा-शास्त्री एकमत हैं कि मातृभाषा के माध्यम से दी-गयी शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं मौलिक चिन्तन की अभिवृद्धि में अधिक सहायक होती है। इसी कारण स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय एवं उसके पूर्व से ही स्वामी श्रदानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी जैसे मान्य नेताओं ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की दृष्टि से आदर्श शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी देश में शिक्षा-सम्बन्धी जो कमीशन या समितियाँ नियुक्त की गयीं, उन्होंने एकमत से इस सिद्धांत का अनुमोदन किया।

इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा थी—श्रेष्ठ पाठ्य-ग्रन्थों का अभाव। हम सब जानते हैं कि न केवल विज्ञान और तकनीक, अपितु मानविकी के क्षेत्र में भी विश्व में इतनी तीव्रता से नये अनुभवों और चिन्तनों का आगमन हो रहा है कि यदि उसे ठीक ढंग से गृहीत न किया गया तो मातृभाषा से शिक्षा पाने वाले घबराये के पिछड़े जाने की आशंका है। भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने इस बात का अनुभव किया और भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में विश्व-विद्यालयीन स्तर पर उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने के लिए समुचित आर्थिक दायित्व स्वीकार किया। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय की यह योजना उसके शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य अकादमियों द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। मध्य-प्रदेश में 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है।

अकादमी विश्वविद्यालयीन स्तर की मौलिक पुस्तकों के निर्माण के साथ, विश्व की विभिन्न भाषाओं में बिकरे हुए ज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को उपलब्ध करेगी। इस योजना के साथ राज्य के सभी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय सम्बद्ध हैं। मेरा विश्वास है कि सभी शिक्षा-शास्त्री एवं शिक्षा-प्रेमी इस योजना को प्रोत्साहित करेंगे। प्राध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे अकादमी के ग्रन्थों को छात्रों तक पहुँचाने में हमें सहयोग प्रदान करें जिससे विना और विलम्ब के विश्वविद्यालयों में सभी विषयों के शिक्षण का माध्यम हिन्दी बन सके।

जगदीशनारायण अवस्थी

शिक्षा-मन्त्री

अध्यक्ष : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रस्तावना

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-समीक्षा की आचार्य-माला के अन्तर्गत किया जा रहा है। इसके पूर्व आचार्य नम्मट और आचार्य हेमचन्द्र के सम्बन्ध में दो समीक्षा-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. श्यामा वर्मा की प्रस्तुत कृति इस माला का तृतीय पुष्प है।

काव्य-शास्त्रियों और नाटककारों में आचार्य राजेश्वर का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे एक प्रकार से मध्यप्रदेशीय कहे जा सकते हैं। दक्षिण भारत में जन्म लेकर और सम्भवतः यही विवाहित होकर उन्होंने महोदय (कन्नोज) को अपना साधना-क्षेत्र बनाया किन्तु उनके अन्तिम दिन बालपुर के शासक केयूरवर्ष के साथ उनकी राजधानी त्रिपुरी में बीते। अनुमान है कि उनका बाल्यकाल भी यही बीता होगा। उनकी लेखनी से प्रसूत त्रिपुरी तथा माहिष्मती आदि मध्यप्रदेशीय नगरों के वर्णन ने इस राज्य को गौरवान्वित किया है। सम्भवतः वे संस्कृत के एकमात्र भाष्यवान् नाटककार हुए जिनकी कृति का रामायण प्रयोग उनकी पत्नी ने किया। अबल्लिसुन्दरी के व्यक्तित्व का उत्कर्ष राजेश्वर की पत्नी होने के कारण ही नहीं, उनकी अपनी विद्वत्ता और कला-मर्मज्ञता के कारण विद्वत्-समाज में बहुत अधिक है। वे चौहान-शासक कुल की थीं और लगता है कि राजेश्वर से उनका परिणय पारस्परिक अनुराग का परिणाम था। 'काव्यमीमांसा' में अबल्लिसुन्दरी के विभिन्न मतों का उल्लेख मिलता है।

राजेश्वर की नाट्य कृतियाँ—'बाल रामायण', 'बाल भारत', 'बर्पूरमञ्जरी' और 'विद्वत्कालभञ्जिका' प्रसिद्ध हैं। इन सबका काव्य की दृष्टि में भी बहुत अधिक महत्व है। राजेश्वर सरस-शक्ति के प्रति पूर्ण निष्ठावान् थे। वे इसे ही काव्य की आत्मा मानते थे। अतः उनकी रचनायें सरस शक्तियों में भरी पड़ी हैं। 'बर्पूरमञ्जरी' एकमात्र उपलब्ध सट्टक है जिसे हम महत्त्व प्राप्त की दृष्टि से भी धार्मिक है। इसमें तथा 'विद्वत्कालभञ्जिका' में उनके नाट्य-बीजाल के दर्शन होने हैं। बाल-रामायण को भी नाटक की दृष्टि में नहीं तो काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट कृति में रखा जा सकता है।

राजशेखर को आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित करने वाला उनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' है। यदि यह ग्रन्थ पूरा हो गया होता तो संस्कृत साहित्य का सागर होता। फिर भी जो भाग उपलब्ध है, उसका विशेष महत्व है। इसमें राजशेखर ने सम्पूर्ण पूर्ववर्ती चिन्तन का सार सगृहीत कर दिया है। साहित्यिक क्षेत्र में शायद ही कोई भाग्यवान व्यक्ति राजशेखर के समान पर-वर्ती लेखको द्वारा उद्धृत किया गया हो। भाषा, व्याकरण, दर्शन आदि समस्त ब्रह्ममीन अङ्गो पर राजशेखर का व्यापक अधिकार है। उनकी शैली अत्यन्त मधुर, प्रवाहमयी एवं प्रभावोत्पादक है। राजशेखर की प्रत्येक सूक्ति हृदय और बुद्धि दोनों को समान रूप से प्रभावित करती है। राजशेखर की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी राष्ट्र-भक्ति है। कालिदास के बाद अन्य किसी कवि या आचार्य ने भारत के समस्त जनपदों, नदियों, पर्वतों तथा रहन-सहन, खान-पान वेष-भूषण और संस्कार आदि के प्रति न इतना प्रेम दिखाया और न उनका इतना विशद वर्णन किया जितना राजशेखर ने किया है। राजशेखर के ग्रन्थ वस्तुतः सम्पूर्ण भारत के सांस्कृतिक कोष है। इसलिए स्वयं-पूर्ण, आत्म-नुष्ट एवं श्री और सरस्वती दोनों के कृपापात्र आचार्य कवि के चरणों में यह पुष्प समर्पित करते हुए अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा है।

हिन्दी-टंकण में कुछ वर्णों की कमी के कारण संस्कृत उद्धारणों में सन्धि के कुछ नियमों, विशेषतः परसवर्णता का पालन पूर्णतः नहीं हो सका है, इस कारण कई स्थानों पर 'पञ्च' के लिए पच या 'अङ्क' के लिए अक और जहाँ के लिए 'जहा' जैसे प्रयोग मिलेंगे। आशा है सुधी पाठक संस्कृत-मुद्रण की कठिनाई समझ कर तदर्थ उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

भगवान् करे, डॉ. श्यामा बर्मा की यह कृति राजशेखर की काव्य-माधुरी से जन-जन को आप्यायित कर साफल्य-लाभ करे और उनकी ही कृति का यह वाक्य सफल हो -

'दुर्ला कीर्ति भ्रमति सुकवे दिक्षु यायावरस्य'

भोपाल :

१५ जून, १९७१

य. द. श्री न. दे. श्री

संचालक

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

चतुर्थ खण्ड

राजशेखरकालीन भारत

२२८

राजशेखर और परवर्ती साहित्य

२३४

नाटककारों एवं आचार्यों में राजशेखर का स्थान

२४०

परिशिष्टियाँ

१. राजशेखर की पुनरुक्तियाँ	२४५
२. अन्य ग्रन्थों में राजशेखर का उल्लेख तथा उद्धरण	२४६
३. राजशेखर द्वारा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण	२५३
४. राजशेखर के नाटकों के सुभाषित	२५४
५. राजशेखर की नाट्यकृतियों में प्रयुक्त छन्द	२५७
६. राजशेखर की सूक्तियाँ (सुभाषित ग्रन्थों में)	२६२
७. राजशेखर की पूर्वकवियों को श्रद्धाञ्जलि	२८२
८. राजशेखर-प्रशस्तय	२८७
सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची	२८८

संकेत-सूची

का० म०
 का० मी०
 या० भा०
 बा० रा०
 वि० भ०
 ए० बी० ओ० आई०

आई० ए०
 ई० आई०
 जी० ओ० एम०
 एच० ओ० एम०
 मा० द०
 दश०
 शृ० प्र०

वर्पूरमञ्जरी
 काव्यमीमांसा
 बाल-भारत
 बालरामायण
 विद्वन्मालभञ्जिका
 Annals of the Bhandarkar
 Oriental Institute
 Indian Antiquary
 Epigraphica Indica
 Gaekwad's Oriental Series
 Harvard's Oriental Series
 माहिन्य दर्पण
 दशरूपक
 शृ गार-प्रकाश

प्रथम खण्ड

वभूव वल्मीकभवः कवि.पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेष्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेक्षया स राजते सम्प्रति राजसोधरः ॥

—श्री० नारायण राम आचार्य,
श्री० एन० जी० सुर, डॉ० पी०वी०
काणे, डॉ० मिरागी

५. ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध —श्री० विन्सन

एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

६. ईसा की चौदहवीं शताब्दी —डॉ० मंजुमूलर

उक्त विद्वानों के द्वारा अपने मत के समर्थन में दिये गये तर्कों की परीक्षा करने पर हम राजशेखर के रचना-काल के विषय में सही निर्णय के निकट पहुँच सकते हैं।

ईसा की सातवीं शताब्दी ईसा की सातवीं शताब्दी को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले श्री० बरो अपने समर्थन में कवि के नाटक बालरामायण एवं बाणभारत के इस श्लोक को उद्धृत करते हैं—

बभ्रुव बल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेष्ठताम् ।
स्थितः पुनर्योभवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखर १ ॥

अर्थात् पहले बाल्मीकि नामक कवि हुए। फिर वे भर्तृमेष्ठ के नाम से भूमण्डल पर अयतरित हुए। तत्पश्चात् उन्होंने ही भवभूति के नाम से पृथ्वी पर जन्म लिया और अब वे ही राजशेखर के रूप में विद्यमान हैं।

राजशेखर के इस कथन में स्पष्ट है कि उनमें पूर्व भवभूति की मृत्यु हो चुकी थी। श्री० बरो महोदय ने भवभूति को सातवीं शताब्दी का माना है। उनका मत है कि कुछ समय पश्चात् आविर्भूत राजशेखर भी सातवीं शताब्दी में ही हुए होंगे।^१

श्री० बरो महोदय ने इस मत पर श्री० वी० एम० भागटे का धारण यह है कि भवभूति अपने युग में लघुप्रतिष्ठ साहित्यकार नहीं थे। वे स्वयं कहते हैं—

ये नाम बेचिदिह नः प्रथयन्पवतां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैव यतनः ।

१. बालरामायण १-१६ एवं बाणभारत १-१२

२. भवभूति गण्ड हिंज ज्येष्ठ दन मन्थन निदेशर ५० -१७

उत्पत्त्यते च मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥^१

अर्थात् कभी न कभी, वही तो मेरे ग्रन्थों का सहृदय प्रालोचक पैदा होगा क्योंकि बाल अनन्त है और पृथ्वी विशाल है। स्पष्ट है कि भवभूति अपने जीवन-काल में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये करुण-क्रन्दन करने वाले, तथा सम्मान के लिये झोपी फैलाने वाले मलिन-यशा कवि थे। यदि राजशेखर भवभूति के कुछ ही समय परवाह हुए होते, तो वे उन्हें कभी अपना आदर्श नहीं मान सकते थे। भवभूति को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कम से कम सौ वर्षों का समय अवश्य लगा होगा। और तभी राजशेखर ने उन्हें अपना आदर्श मानने में गौरव का अनुभव किया होगा। अतः बरो महोदय का मत, धी० घाटे की दृष्टि में उचित नहीं है। उन्होंने राजशेखर का बाल लगभग आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है।

आठवीं शताब्दी को राजशेखर का बाल मानने वाले विद्वान् क्षीरस्वामी द्वारा लिखित 'धमरकोष' की टीका को आधार मानते हैं। इस टीका में प्रथम राजशेखर को 'विद्वान्मन्त्रिजा' के चार श्लोक उद्धृत हैं।^१ इनके आधार पर श्री पीटमन एव पण्डित दुर्गा प्रसाद क्षीरस्वामी को राजशेखर का समकालीन मानते हैं। उनकी धारणा है कि क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीठ के गुरु थे।^२ जयापीठ का समय ७५० ई० है। अतः इन विद्वानों ने क्षीरस्वामी को भी आठवीं शताब्दी के मध्य में तथा राजशेखर को उनका समकालीन विद्व बरने का प्रयाग किया है। यद्यपि काश्मीर के राजा जयापीठ के गुरु का नाम क्षीरस्वामी अवश्य था, किन्तु उन्होंने धमरकोष पर टीका नहीं लिखी। अतः धमरकोष पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी का समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अतः जयापीठ के गुरु

१. माननीमाधव-१-४४

२. इनके धारणापर चरण है—

(१) "दरदयित हृदिशान्तिञ्चराष्यद्रवशानि"—धमरकोष पृ० १८ वि०
भ० ३-१३

(२) 'शिर्योनि गुण-मोक्षिणवर्ण'—धमरकोष पृ०
२२ वि० भ० १-११

(३) 'शेनागाविनिमोक्षिणवर्ण'—धमरकोष पृ० ३८ वि० भ० १-३

(४) 'शान्ति कुचपद्मो नमो मन्मथाय'—धमरकोष पृ० १८३ वि० भ०
१-१३

३. इन्द्रकान्त ट्ट कल्पतरुवाक्य मुभातिनासरी—पृ० १०१

क्षीरसागर के भ्रान्त नाम के आधार पर राजशेखर को घाटवी शताब्दी का मानना अनुचित है।

आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध : घाटवी शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले श्री घाटे का कथन है कि—

“Bhavabhuti was not appreciated in his own days He had to rest with well ground faith on boundless time and extensive time and extensive earth for the appreciation of his works, and it is, I think, quite reasonable to suppose that a period of at least 100 years must have elapsed before the verdict of posterity was unmistakably pronounced in his favour. At such a distance can alone Rajasekhara be reasonably supposed to mention Bhavabhuti in the manner above referred to. From this I conclude that our poet must have not flourished till at least one hundred years after Bhavabhuti. In other words he could not have lived earlier than the end of the 8th Century A. D.,”

भवभूति के गौरव के सम्बन्ध में घाटे महोदय का कथन ठीक भी हो सकता है, किन्तु राजशेखर के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में यह आधार प्रामाणिक है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में अपने आश्रयदाता नरेश महेंद्रपाल का उल्लेख किया है। किन्तु सिधदोनी अभिलेख के अनुसार महेंद्रपाल का राज्यकाल ६०३ ई० से ६०७ ई० ठहरता है।^१ अतः श्री० घाटे का मत प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता।

ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध : ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले विलमन महोदय ने अपने मत की पुष्टि में कर्पूरमञ्जरी सटक की निम्न प्रस्तावना उद्धृत की है—

चाहुमाणकुल मोनिमालिन्ना राघमेहर कटर वेहिणो ।
भत्तुणो किहमवतिमुन्दरी सा पउरउणेप्रनिच्छट ॥

इसके अनुसार राजशेखर की पत्नी अर्वाणिमुन्दरी न केवल चौहान कुलोत्पन्न

है अपितु वह चौहान कुल का शिरोरत्न भी है। चौहान वंश राजपूतों का था।

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग पृ०-१६
२. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १३३।
३. कर्पूरमञ्जरी-१-११।

उत्पत्स्यते च मम कोटिर् समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥^१

अर्थात् कभी न कभी, कहीं तो मेरे ग्रन्थों का महोदय आलोचक पैदा होगा क्योंकि काल अनन्त है और पृथ्वी विशाल है। स्पष्ट है कि भवभूति अपने जीवन-काल में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये कर्ण-श्रन्दन करने वाले, तथा सम्मान के लिये झोली फँसाने वाले मलिन-यज्ञा कवि थे। यदि राजशेखर भवभूति के कुछ ही समय पश्चात् हुए होते, तो वे उन्हें कभी अपना आदर्श नहीं मान सकते थे। भवभूति को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कम से कम मी वर्षों का समय अवश्य लगा होगा। और तभी राजशेखर ने उन्हें अपना आदर्श मानने में गौरव का अनुभव किया होगा। अन्तर्वरो महोदय का मत, श्री० आष्टे की दृष्टि से उचित नहीं है। उन्होंने राजशेखर का काल लगभग आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है।

आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले विद्वान् क्षीरस्वामी द्वारा लिखित 'अमरकोष' की टीका को आधार मानते हैं। इस टीका में प्रसंगत-राजशेखर की 'विद्वज्जालभञ्जिका' के चार श्लोक उद्धृत हैं।^२ जिनके आधार पर श्री पीटमन एच पण्डित दुर्गा प्रसाद क्षीरस्वामी को राजशेखर का समकालीन मानते हैं। उनकी धारणा है कि क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीड के गृह थे।^३ जयापीड का समय ७५० ई० है। अतः इन विद्वानों ने क्षीरस्वामी को भी आठवीं शताब्दी के मध्य में तथा राजशेखर को उनका समकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। यद्यपि काश्मीर के राजा जयापीड के गृह का नाम क्षीरस्वामी अवश्य था, किन्तु उन्होंने अमरकोष पर टीका नहीं लिखी। अस्तु अमरकोष पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अतः जयापीड के गृह

१. मालतीमाधव-१-४४

२. इनके आरम्भिक-वचरण है—

(१) "दरदमित हरिद्रापिञ्जराण्यद्रवकानि"—अमरकोष पृ० १८ वि०
४० ३-१७

(२) "द्विभंज्योमि पुराण-मौक्तिकवचनं"—अमरकोष पृ०
२२ वि० ४० १-११

(३) "गोवामाविनियोजिनायनजरत्"—अमरकोष पृ० ३८ वि० ४० १-३

(४) "अटिति मुचनदारी नमो मन्मथाय"—अमरकोष पृ० १८७ वि० ४०
१-१७

३. इन्द्रोद्देशान टु कालभदेवात्र मुभापितावनी—पृ० १०१

धीरसागर के भ्रान्त नाम के आधार पर राजशेखर को आठवीं शताब्दी का मानना अनुचित है।

आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध : आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले श्री आप्टे का कथन है कि—

“Bhavabhuti was not appreciated in his own days He had to rest with well ground faith on boundless time and extensive time and extensive earth for the appreciation of his works, and it is, I think, quite reasonable to suppose that a period of at least 100 years must have elapsed before the verdict of posterity was unmistakably pronounced in his favour. At such a distance can alone Rajasekhara be reasonably supposed to mention Bhavabhuti in the manner above referred to. From this I conclude that our poet must have not flourished till at least one hundred years after Bhavabhuti. In other words he could not have lived earlier than the end of the 8th Century A. D.,¹

भवभूति के गौरव के सम्बन्ध में आप्टे महोदय का कथन ठीक भी हो सकता है, किन्तु राजशेखर के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में यह आधार अप्रामाणिक है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में अपने आश्रयदाता नरेश महेन्द्रपाल का उल्लेख किया है। किन्तु सियदोनी अभिलेख के अनुसार महेन्द्रपाल का राज्यपाल ६०३ ई० से ६०७ ई० ठहरता है।^२ अतः श्री० आप्टे का मत प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता।

ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध : ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले विन्गन महोदय ने अपने मत की पुष्टि में कर्पूरमञ्जरी महक की निम्न प्रस्तावना उद्धृत की है^३ —

आहूमाणकुल मोलिमानिआ राममेहर कदद गेहिणी ।

भसुणो सिद्धमवतिसुन्दरी सा पउजइउमेममिच्छइ ॥

इसके अनुसार राजशेखर की पत्नी भवलिमुन्दरी न केवल चौहान कुलोत्पन्न है अपितु वह चौहान कुल का निर्गोस्त भी है। चौहान वंश राजपूतों का था।

१. राजशेखर हिज साइक एण्ड राइटिंग्स पृ०-१४

२. एपिग्राफिका इण्डिका त्रिन्द १ पृ० १७३ ।

३. कर्पूरमञ्जरी-१-११ ।

इससे थो विल्सन महोदय ने अनुमान किया है कि राजशेखर किसी राजपूत नरेक के मन्त्री थे तथा वे ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे —

In a verse cited from another work by the writer the (Karpurmanjari) his wife is styled as the chaplet of the crest of the Chauhan Race from which it follows that he belonged to that tribe. We can only conclude, therefore, that Rajshekhar was the minister of some Rajput prince who flourished in the central India, at the end of the eleventh or the beginning of the twelfth century.”^१

परन्तु कर्पूरमञ्जरी के आधार पर श्री० विल्सन ने जो अनुमान निकाले हैं वे युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होते^२। यद्यपि राजशेखर की पत्नी भवन्तिसुन्दरी राजपूत थी, राजशेखर स्वयं जाति से ब्राह्मण थे। अतः पत्नी के आधार पर उन्हें भी राजपूत मानना सगत प्रतीत नहीं होता। दूसरी बात यह है कि, वे महामन्त्री के पुत्र थे,^३ स्वयं मन्त्री नहीं। जो व्यक्ति अपने ग्रन्थों में बार बार स्पष्ट शब्दों में स्वयं को महेन्द्रपाल का पुत्र^४ एवं महेन्द्रपाल को अपना शिष्य^५ बता रहा है, वह किसी अन्य क्षत्रिय राजा का मन्त्री कैसे हो सकता है? अतः दुर्बल प्रमाणों पर आधारित होने के कारण विल्सन महोदय का मत, जो राजशेखर को ग्यारहवीं शताब्दी-उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध में निर्धारित करता है, अनुपयुक्त है।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी को राजशेखर का रचनाकाल माननेवाले प्रमुख विद्वान् डॉ० मेक्समूलर की विचारधारा कुछ नवीन आधार लिए हुए हैं। वे कहते हैं —

१. हिन्दू थियेटर—एच. एच. विल्सन जिल्ड २ पृ० ३६२
२. बालरामायण—१-८ सूक्तमिद तेनैव हि महामन्त्रिपुत्रेण ।
बालभारत—१-६ ज्वत हि तेनैव महामुमन्त्रिपुत्रेण ।
३. कर्पूरमञ्जरी—१-६ “बालकई कदराभो णिष्भरराजस्य तहउवग्गामो ।”
४. विद्वशालभजिका—१-६ रघुकुलतिलको महेन्द्रपाल सकलवतानितयः स यस्य शिष्यः ।
—बालरामायण १-१८ देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुशमणी
—बालभारत १-११ वही

Rajachekhara lived in the fourteenth century. He wrote the *Prabandhakosh* in about 1347 A. D. १

उन्होंने राजशेखर को 'प्रबन्धकोष' नामक ग्रन्थ का रचयिता कहा है। चौदहवीं शताब्दी में राजशेखर सूरि नामक जैन साहित्यकार ने 'प्रबन्धकोष' की रचना की थी। किन्तु राजशेखर के जिन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है उनमें प्रबन्धकोष का नाम नहीं है और न ही वे जैन साहित्यकार थे। अतः राजशेखर को चौदहवीं शताब्दी का मानना उचित नहीं है।

ईसा की नवीं शताब्दी को अनेक विद्वान् राजशेखर का रचनाकाल मानते हैं। "देवो यस्य महेश्वरपाल नृपति शिष्यो रघुग्रामणी." के अन्त साक्ष्य को आधार मानकर वे थोड़े-बहुत अन्तर से नवीं शताब्दी के आस पास राजशेखर का समय निर्धारित करते हैं। विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित कालावधि इस प्रकार है।

१ डॉ० स्टेनकोनो एव प्रो० सॉनमैन ^२	—६०० ई०
२. श्री० सी० डी० दलाल, ^३	
प० भार० ए० शास्त्री	—८८० ई०—६२० ई०
३. श्री० नारायणराम आचार्य ^४	—८४५ ई०—६५६ ई०
४. श्री० एन० जी० सुहा ^५	—७५५ ई०—६३० ई०
५ डॉ० पी० वी० काणे ^६	—८७५ ई०—६५० ई०
६ डॉ० वि० वि० मिराशी ^७	—८८५ ई०—६७५ ई०

इन तिथियों के अवलोकन से हमारे आलोच्य कवि के लिए एक सीमा बन जाती है और वह है ८५५ ई० से ६७५ ई० तक का अन्तराल। इसके अर्धिन निर्धारण के पूर्व इस प्रसंग में उन साहित्यकारों का उल्लेख उपयुक्त होगा, जिन्होंने राजशेखर को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। इसे हम साहित्यिक साक्ष्य कहेंगे—

- १ इण्डिया.व्हाट कैन इट टीच अस ?—मैक्समूलर—पृ० ३२८
- २ कर्पूरमंजरी—हारबर्ड ऑरियण्टल सीरीज, पृ०—१७६
३. काव्यमीमामा (प्रस्तावना) गायकवाड ऑरियण्टल सीरीज पृ० ३१
४. कर्पूरमंजरी—निर्णयसागर प्रेस—पृ० ५
५. कर्पूरमंजरी—(प्रस्तावना) श्री० एन० जी० सुहा पृ० १०२
- ६ इन्ट्रोडक्शन टू साहित्यदर्पण—डॉ० पी० वी० काणे पृ० २०७
- ७ पाठक कमेन्टरीजन वॉल्यूम—डॉ० वी० वी० मिराशी पृ० ३६५-३६६

साहित्यिक साक्ष्य

राजशेखर के पश्चात् उनके भावों एवं शब्दों को ग्रहण करने वाले आचार्यों में प्रमुख हैं—धनञ्जय, अभिनवगुप्त, धोमेन्द्र, कुन्तक, मम्मट, वाग्भट, हेमचन्द्र, परिंसह, धमरचन्द्र, देवेश्वर, केशवमित्र एवं विश्वनाथ । कालत्रय की दृष्टि से धनञ्जय प्रथम है जिन्होंने राजशेखर के समय से कुछ समय पश्चात् ही उन्हें उद्धृत किया है । दशरूपक में प्रपञ्च के प्रसंग में वे कहते हैं—

“असद्भूतं मिथः स्तोत्र प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः ।
असद्भूतेनार्धेन पारदार्यादितैपुण्यादिना पाऽन्योन्य-
स्तुतिः स प्रपञ्चः । यथा कर्पूरमञ्जयां धैरवानन्द —

रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा
मद्य मास पीयते खाद्यते च ।
भिक्षा भोज्य चमैखण्डं च शय्या
कौलो धर्मं कस्य नो भाति रम्यः ॥”

इसी प्रकार धनञ्जय ने अयोग की दस धवस्थाओं में से “धानन्द” नामक धवस्था के उदाहरण के लिये ‘विद्वज्जालभञ्जिका’ के निम्न श्लोक का उल्लेख किया है—

‘धानन्दो यथा विद्वज्जालभञ्जिकायाम्*
मुधावद्ध—ग्रासंखवन—जकोरैरनुसृता,
किरत् ज्योत्सनामच्छा नवलवलिपाकप्रणयिनीम्”

धनञ्जय का समय ६७४ ई० से ६६४ ई० के मध्य का है । अतः राजशेखर को ६६४ ईसवी के पूर्व का माना अनुचित न होगा ।

इसी प्रकार सोमदेव ने यशस्तिलकचम्पू में पूर्ववर्ती साहित्यकारों की एक नामावली दी है जिसमें राजशेखर का नाम अन्त में आता है ।

‘यथा उर्वेभारवि-भवभूति-भर्तृहरि भर्तृभेण्डक-गुणाद्भव्यास-भामवाण-
कालिदास मयूरनारायणकुमारमाधराजशेखरदिमहाकवि काव्येषु”

१. दशरूपक ३-१५

२. दशरूपक ४-५४१५५

३. यशस्तिलकचम्पू (चतुर्थ उच्छ्रवाम) २।११३

इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर यशास्तिलककार के समय में जीवित थे या उनसे कुछ दिन पूर्व ही दिवंगत हुए थे। "यशास्तिलकचम्पू" की रचना १५६ ई० में हुई थी। यही राजशेखर की परावधि मानी जा सकती है।

राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में वाल्मीकि से लेकर कवि रत्नाकर तक का उल्लेख किया है। रत्नाकर आनन्दवर्धन के समकालीन थे, तथा वे काश्मीर-नरेश अरुन्ति वर्मा की विद्वत्समा को मण्डित करते थे। इनका समय ८५५ ई०-८८३ ई० है। अतः साहित्यिक साध्य के आधार पर राजशेखर ईस्वी सन् ८८३ में ईस्वी १५६ के बीच रचे जा सकते हैं।

उपरिर्चरित काल-निर्धारक मान्यताओं तथा साहित्यिक साध्यों के आधार पर प्रमाणित तिथि का औचित्य एवं अनौचित्य, ऐतिहासिक साध्य से स्पष्ट हो सकता है। क्योंकि राजशेखर द्वारा दी गई आश्रयदाता नरेशों की तिथि में सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है।

ऐतिहासिक साध्य

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना में स्वयं को गुर्जर-प्रतिहारवशी महेन्द्रपाल का उपाध्याय^१ बतलाया है।

“बालकई कइराओ णिभघराग्रस्त तह उवज्जाओ”

महेन्द्रपाल की राजधानी कान्यकुब्ज नगरी थी। काठियावाड़ में स्थित ऊना के अभिलेख^२ में इस नरेश की प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति ८६३ ई० की होने के कारण इस शासक की पूर्वावधि भी ८६३ ई० मानी जा सकती है। इस राजा का प्रशास्ति-परक अन्तिम अभिलेख शांसी जिले के सियदोनी^३ ग्राम में है। जिस पर ६०३-६०७ ई० अंकित है। अतः अभिलेखों के आधार पर महेन्द्रपाल का समय ८६० ई० से ९१० ई० तक स्थिर किया जा सकता है।

“बालभारत” की प्रस्तावना में गुर्जर-प्रतिहारवशी महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल का उल्लेख है। यह नरेश राजशेखर का आश्रयदाता था।^४ इसके शासन काल के

१ कर्पूरमञ्जरी १. ६

२ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द ६, पृ० ६ पादटिप्पणी द्रष्टव्य।

३ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १७३

४. बालभारत १-७ नमिलमूरलमौलि. पाकलो मेकलाना
रणवलितकनिग. कैलितद् केरलेन्दो।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलाना कुठारो
हृहतरमउथ्री श्री महीपालदेव।

दो महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हैं। एक हडस^१ ग्राम में है, जिस पर महीपाल की तिथि ६१४ ई० उत्कीर्ण है, दूसरा एवं अंतिम प्रतापगढ़^२ में है जिस पर ६४८ ई० अंकित है। दोनों अभिलेखों के आधार पर राजशेखर के आश्रयदाता महीपाल का समय ६१० ई० से ६४८ ई० मानना प्रामाणिक है।

राजशेखर की 'विद्वन्मालभञ्जिका' त्रिपुरी-नरेश युवराजदेव के प्रीत्यर्थ प्रस्तुत की गई थी। युवराजदेव त्रिपुरी के नरेश थे। बिलहरी^३ ग्राम में प्राप्त खिललेख के आधार पर इनका शासनकाल ६१० ई० में ६४८ ई० जात होता है।

इस प्रकार इन तीन आश्रयदाताओं का कालक्रम है —

१. महेन्द्रपाल	— ८६० ई० से ६१० ई०
२. महीपाल	— ६१० ई० से ६४८ ई०
३. युवराजदेव प्रथम	— ६१० ई० से ६४८ ई०

तीनों के आश्रय में रहने के कारण राजशेखर का रचनाकाल भी लगभग ८८० से ६५० तक रहा होगा।

निष्कर्ष

विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचारों एवं अनुमानों के आधार पर राजशेखर का रचनाकाल ईसा की सातवीं शती से चौदहवीं शती के बीच स्थिर करने का प्रयास किया है। किन्तु कहीं महेन्द्रपाल की तिथि और कहीं राजशेखर की कृतियों से उनका साम्य न होने के कारण वे निश्चिन्त अनुपयुक्त हैं। कतिपय विद्वानों ने नवम शताब्दी के आसपास ही राजशेखर का समय निर्धारित किया है किन्तु साहित्यिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार राजशेखर निश्चित ही ८८५ ई० में साहित्य-क्षेत्र में उतर चुके थे। दूसरे, जो विद्वान् राजशेखर को नवम शताब्दी का मानते हैं वे भी उनका काल ८८५ ई० के लगभग ही स्थिर करते हैं।

राजशेखर महेन्द्रपाल के मुहं थे। महेन्द्रपाल के पिता मिहिरभोज की मृत्यु ८८५ ई० में हो चुकी थी। इसी समय महेन्द्रपाल (ई० ८८५ में) राज्य धिक्कित

१ इण्डियन एण्टीक्वेरी-जिल्द-१२ पृ० १६३ पादटिप्पणी-दृष्टव्य
 २ इण्डियन एण्टीक्वेरी-जिल्द १४ पृ० १२२ पाद टिप्पणी दृष्टव्य
 ३ एशियाटिका इण्डिया जिल्द १ पृ० २५२ पादटिप्पणी दृष्टव्य

हुए थे। महेन्द्रपाल के गुरु राजशेखर ने भी अनुमानतः ८८५ ई० में साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया होगा।

उन्होंने युवराजदेव (६१० ई० से ६४८ ई० तक) की सभा को भलकृत किया था। वही उन्होंने 'विद्वशालभञ्जिका' का प्रणयन किया होगा। तत्पश्चात् प्रौढ पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ की रूपरेखा निर्धारित की होगी। लगता है कि इसी पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ की रचना करते-करते नब्बे वर्ष की आयु में सन् ६७५ ई० के लगभग वे दिवंगत हो गए।

उपर्युक्त विवेचन में स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर ८८५ ई० से ६७५ ई० तक साहित्य-जगत को आलोकित करते रहे।

राजशेखर नामों की अनेकता

राजशेखर नाम के अनेक व्यक्ति मसूह साहित्य में मिलते हैं। किन्तु उनका स्थितिकाल उनके नामों की अनेकता के सम्बन्ध में फौली भ्रान्ति का निराकरण करता है।

(१) सन् ३२२ में केरल प्रदेश में राजशेखर नाम के एक राजा हुए थे।^१ उन्होंने 'मुकुन्दमाला' ग्रन्थ की रचना की थी। अभिनव वाणिदास के शिष्य बरि कुञ्जर ने 'राजशेखर-चरित' नामक प्रबन्ध का निर्माण किया जिसमें उस राजा को "कुलशेखर" और "रसिकशेखर" शब्दों में सम्बोधित किया है तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनायें वर्णित की हैं।

(२) माधवाचार्य ने अपने "शकरदिग्विजय" में राजशेखर नाम के राजा का उल्लेख किया है तथा उसे भी केरल प्रदेश का राजा बतलाया है। साथ में यह भी लिखा है कि वे आठवीं शताब्दी के शकराचार्य के समकालीन थे। घन राजशेखर-चरित में वर्णित केरल शक्तिपति 'राजरीषर' माधवाचार्य वर्णित राजा 'राजशेखर' में भिन्न है। यह तो स्पष्ट है लेकिन 'शकरदिग्विजय' और उनके लेखक माधवाचार्य, दोनों की जानकारी साक्ष्य होने के कारण उपर्युक्त विवेचन विश्वमनीय नहीं माना जा सकता।

१ हिन्दू घाँट: कर्नाटकरत मसूह लल्लेश्वर-एल. वृष्णमाचारी-पृ० ५०८।

२ वही—, पृ० ६२५

(४) दक्षिण में जंगेशेरि के समीप तलइनइल्ल गाव में ७५० ई० से ८५० ई० के बीच किसी राजशेखर नामक नरेश^१ के होने की जनश्रुति प्रचलित है। इस जनश्रुति के प्रामाणिक होने में संदेह है।

(५) इतिहास में राजशेखर सूरिनामक एक जैनाचार्य^२ का नाम भी मिलता है। इन्होंने 'प्रबन्धकोष' या 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' की रचना की थी। इनका समय १३४८ ई० है। डॉ० मैकममूलर ने नाम की समानता के कारण अन्ति में याया-वरीभ राजशेखर और जैन राजशेखर को अभिन्न माना है।

(५) इन राजशेखरों के अतिरिक्त गोदावरी के किनारे पेहर में भी एक कोल्लूरिवशज राजशेखर^३ हुए हैं। इनका दूसरा नाम सोमशेखर था। इनकी तीन रचनायें—'साहित्यकरपट्टम' 'शिवशतक' और 'अलंकारमकरन्द' हैं। इनका समय १८४० ई० है।

उक्त पाँचों राजशेखर नामक व्यक्तियों में से तीन नरेश, एक कोल्लूरिवशज साहित्यकार और एक जैन साहित्यकार हैं। कवि-आचार्य राजशेखर न तो राजा थे और न जैन। दूसरे राजशेखर का काल ८८५ ई० से ९७५ ई० के मध्य का है। अतः 'कान्यमीमांसाकार' राजशेखर इन सब राजशेखरों में सर्वथा भिन्न हैं।

जन्म-स्थान

यह निर्विवाद है कि राजशेखर, गुर्जर-प्रतिहार महेन्द्रपाल और महीपाल के शासन-काल में 'कान्यकुब्ज' में थे। वे कुछ समय तक कलचुरि नरेश युवराज-देव की राजधानी 'त्रिपुरी' में भी रहे। किन्तु उनके जन्म-स्थान का प्रश्न अब भी विचारणीय बना हुआ है।

राजशेखर के पितामह अकालजलद महाराष्ट्र के प्रतिष्ठित जनों के भूधन्य थे।^१ तदामुष्यायनस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थोदोर्दिकि।^२ किन्तु राजशेखर का जन्म-स्थान महाराष्ट्र था, यह निश्चित नहीं है। इनके जन्म-स्थान का निर्धारण करने वाले विद्वानों के दो वर्ग हैं। पहला यह कहता है कि वे मध्यप्रदेश में उत्पन्न हुए थे। दूसरे वर्ग का कथन है कि उनका जन्म-स्थान दक्षिण प्रदेश था।

१ हिन्दी आफ क्लासिकल सस्रुल लिट्रेचर—एन. कृष्णमाचारी— पृ० ६२६।
 २. —वही— पृ० ४३२।
 ३. —वही— पृ० ५०८।
 ४. बालरामायण १-१३।

उनकी पूरी धारणा—कि पांचाल और कन्नौज के कवियों तथा मुन्दरियों के प्रति उनके प्रशंसात्मक वचन उनका मध्यदेशीय होना सूचित करते हैं—अनुपमकन हैं । ऐसे तर्क यदि मान लिये जायें तो साहित्यकारों के स्थान-निर्धारण का काम अत्यन्त सरल हो जायगा किन्तु इसके परिणाम कितने दोषपूर्ण होंगे यह सहज ही कल्पित किया जा सकता है । दक्षिण प्रदेश को राजशेखर का जन्म-स्थान प्रमाणित करने वाले श्री आपटे का कथन है कि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में दक्षिणात्यो के आचरण, उनकी स्थानीय विशेषताओं एवं दक्षिण की नदियों के सौन्दर्य का अत्यन्त सहृदयतापूर्वक वर्णन किया है । अतः आपटे महोदय का अनुमान है कि राजशेखर दक्षिण देशवासी या महाराष्ट्र के निवासी रहे होंगे ।^१ इस अनुमान को वे इस तर्क से पुष्ट करते हैं कि सम्भवतः उनके हृदय पर जन्म-भूमि की प्रकृति तथा लोक-रीति की प्रतिभा का इस प्रकार का प्रकट होना सहज है । श्री आपटे महोदय के कथन में प्रामाणिकता दिखाई देती है । तद्विनाश्रित्य दक्षिणात्यो की एक साहित्यक विशेषता रही है । राजशेखर के ग्रन्थों के अनुशीलन में ज्ञात होता है कि 'काव्यमीमांसा' में न केवल 'तद्विनाश्रित्य हि दक्षिणात्या' इस महाभाष्य के वाक्य का स्मरण दिलाया गया है प्रत्युत उनकी अपनी रचनाओं में तद्विन-रूपों का बहुलता से प्रयोग भी किया है ।

श्री नारायण दीक्षित ने 'विश्वशालमञ्जिका' की टीका में लिखा है कि बाल-रामायणे स्वस्य महाराष्ट्रवर्णनात् महाराष्ट्र. कवि । सोऽयं देशी-प्रायस्वदेश-जान् प्रयुक्तवान् । योऽस्माकं मुबोधो बहुपास्ति सः' । इस प्रकार श्री दीक्षित ने राजशेखर को स्पष्ट रूप से महाराष्ट्र का कवि कहा है ।

डॉ० मिराशी^२, श्री स्टेनकोनो एवं श्री लॉनमेन^३, श्री एस० के० दे, श्री कृष्णमाचारियर^४, श्री पी० बी० काणे^५, श्री दत्ताल एव श्री शास्त्री^६ इमी पक्ष

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्स—आपटे पृ० २२ ।

२. ए० बी० ओ० धार० आई०—पृ० ३६६ ।

३. कर्पूरमञ्जरी—हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज—पृ० १८०—१८१ ।

४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—जिन्द १—एस० के० दे पृ० ४२५ ।

५. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—एन० कृष्णमाचारी—पृ० ६२५ ।

६. इन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण—डॉ० काणे—पृ० २०७ ।

७. काव्यमीमांसा—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज—पृ० ३० (प्रस्तावना) ।

के समर्थक है। राजशेखर का जन्मस्थान महाराष्ट्र मानने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिये। हाँ, इस विशाल महाराष्ट्र में किस भू-भाग विशेष को कवि ने अपने जन्म से कृतार्थ किया, यह प्रश्न दुम्ह तो नहीं, किन्तु विवेचनीय है।

राजशेखर ने काव्यमीमामा में काव्य-पुरुष को विदर्भ-देशोत्पन्न बतलाया है और उसे वैदर्भी रीति में ही आकृष्ट भी किया है। उन्होंने साहित्य का जन्म-स्थान, काव्य-मुम्प तथा साहित्य-विद्यावधू का विवाहस्थान इसी विदर्भभूमि को माना है। उनके कर्पूमञ्जरी सट्टक की नायिका भी विदर्भ देश की ही है। उनके ग्रन्थों में इनका गौरवपूर्ण 'विदर्भ'-निश्चित ही कवि का जन्म स्थान होना चाहिये।

विदर्भ का अपना निजी इतिहास है। वत्सगुल्म अकोला जिले में स्थित बाशिम का ही प्राचीन नाम है। चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में इस नगरी को वाकाटक नरेशों की वैभवशाली राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। उन नरेशों के साथ ही वह गौरव भी धाराशापी हो गया। राजशेखर ने पाच सौ वर्षों के पश्चात् उस वैभव-विहीन नगरी को, साहित्यिक प्रतिष्ठा देकर पुनः गरिमा से मण्डित किया। राजशेखर के आदर्श भवभूति भी विदर्भ देश में पैदा हुए थे। किन्तु उन्होंने विदर्भ को विशेष महत्व नहीं दिया। राजशेखर ने उसे इतनी अधिक प्रतिष्ठा जन्मभूमि के प्रेम के कारण ही प्रदान की है।

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के निर्माण में वंश, पूर्वज एवं माता पिता का अत्यधिक महत्व होता है—

वंश

राजशेखर यायावर वंश में उत्पन्न हुए थे। यह यायावरवंश ब्राह्मणों का ही होता है। अतः राजशेखर ब्राह्मण जाति के थे। यायावर शब्द का सामान्य अर्थ है—निरन्तर चलने वाला। प्राचीन काल में धर्मशास्त्रकारों ने यायावर श्रेणी गृहस्थों की बनवाई है। देवल^१ ने गृहस्थों को दो भागों में बाँटा है। १—शाश्वीन तथा २—यायावर। यायावर शाश्वीन में ऊँचे माने जाते हैं। बौधायन^२ ने यायावर के विषय में कहा है कि यायावर गृहस्थ अत्युत्तम जीविका चलाने वाले होते हैं। वे बाटवर घर में जाने समय पृथ्वी पर गिरे धूल को ही जीविकार्थ चुनते हैं और संपत्ति का संचय नहीं करते। वे जीवकोपात्रंनार्थ

१. यागवल्क्यस्मृति १-१२८।

२. बौधायन धर्मसूत्र ३-१-१।

पौरोहित्य, अध्ययनकत्व अथवा दान का आश्रय नहीं लेते । वीषायन में भिन्न मन वैखानस-गृह्यसूत्र^१ में उपलब्ध होता है । इस सूत्र में यायावरो के छह कार्य गिनाये हैं । १-हविष एवं सोम यज्ञ का सम्पादन, २-यज्ञ का पौरोहित्य, ३-वेद का अध्ययन अध्ययन, ४-दान एवं प्रतिग्रह, ५-श्रौत एवं स्मार्त अग्नि का निरन्तर सेवन तथा अतिथियों की परिचर्या ।

फिर भी सम्पूर्ण विवेचन से ज्ञात होता है कि यायावर वंश अपनी धार्मिकता, नैष्ठिकता तथा सदाचार के लिये मदा से प्रसिद्ध है । राजशेखर ने स्वयं को वारंवार यायावर या यायावरीय कहा है ।

पूर्वज

यह यायावर कुल, कवियों के प्रसव के लिये कल्पतरु था । इस कुल में राजशेखर के पूर्वजों में अकालजलद, सुरानन्द एवं कविराज आदि उल्लेखनीय काव्यकार हुए हैं ।^२

कविराज अकालजलद राजशेखर के प्रपितामह थे । वे महाराष्ट्र के प्रतिष्ठितों में भी मूर्धन्य थे । राजशेखर अकालजलद के विषय में कहते हैं—“जब मूर्ध सरोवर में भेदक अपने बिलों में पड़े मृतप्राय हो रहे थे, तब अकालजलद ने आकर मूर्ध सरोवर में ऐसी वर्षा की कि अथ उसी में जगली हाथियों के झुंड गले तक डूब कर जल पी रहे हैं ।^३ कादम्बरीराम नामक नाटककार ने, अकालजलद के श्लोकों को अपनी कृति में इस कुशलता से सविष्ट किया कि वे उसी के प्रतीत होने लगे । अकालजलद की वचन-चन्द्रिका का कवि-धकोर निरन्तर ही पान करते हैं ।^४ किन्तु वह चन्द्रिका रिक्त नहीं होती । इससे स्पष्ट है कि राजशेखर के प्रपितामह महाराष्ट्र देश के सम्प्रतिष्ठ साहित्यकार थे ।

अकालजलद के समान सुरानन्द भी यायावर वंश के थे तथा राजशेखर के पूर्वज थे । संभवतः ये राजशेखर के पितामह होंगे । सुरानन्द चेदिमण्डल के भूषण थे ।^५ राजशेखर ने काव्यमीमांसा में सुरानन्द के “अपहरण” सबधी मत को

१. वैखानस-गृह्यसूत्र १-८ ।

२. बालरामायण १-१३ ।

३. सूक्तिमुक्तावली ४-८४ ।

४. सूक्तिमुक्तावली ४-८३ ।

५. सूक्तिमुक्तावली ४-८७ ।

नदीना मेकलसुता नृपाणां रणविग्रह ।

नदीना च सुरानन्दश्चेदिमण्डल मण्डनम् ॥

आदरपूर्वक ग्रहण किया है। इसमें प्रतीत होता है कि राजशेखर उनकी विद्वत्ता एवं प्रतिष्ठा में अपनी युवावस्था में ही लाभान्वित हुए होंगे।

इसी यायावर वंश में तरल नाम के कवि भी प्रसिद्ध है। मूक्तिमुक्तावली में यायावर कुलश्रेणी के मण्डनरूप में तरल कवि का परिचय मिलता है^१। राघवपाण्डवीय काव्य के रचयिता कविराज से हम अवश्य परिचित हैं। किन्तु यह यायावरीय कविराज से भिन्न है। क्योंकि यह कविराज धारानरेश कामदेव (मन् ११८२-११८७) के समकालीन थे। यायावरीय कविराज के विषय में अन्य किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं है।

माता पिता : राजशेखर की माता का नाम शीवनती तथा पिता का नाम दुर्दुक या दुहिक था—“तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकाल जलदस्य चतुर्थो दौर्दुकि शोभवती सनुष्पाध्याय धीराजशेखर इत्यपर्याप्त बहुमानेन।”^२ नाम को छोड़कर उनकी माता के विषय में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। कवि के पिता किसी राजा के महामंत्री थे^३ किन्तु किस राजदरबार में वे महामंत्री का पद सम्हाल रहे थे इसकी भी विश्वमनीय जानकारी हमें प्राप्त नहीं है। इनके परिवार के अन्य सदस्यों, या भाई बहिनो आदि के विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। हो सकता है, वे अपने माता पिता के एक मात्र पुत्र रहे हों।

पत्नी - उन्हें श्री एवं सरस्वती में वरप्राप्ता पत्नी का भी आशंका है। नवम शताब्दी में क्षत्रियों का चौहान कुल प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर हो रहा था। राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी चौहान वंशीया क्षत्रिया थी। अवन्तिसुन्दरी का कुल अन्य चौहानों में मूर्धन्य माना जाता था।^४ स्पष्ट है कि राजशेखर तथा अवन्तिसुन्दरी का विवाह अन्तर्जातीय या अनुलोम था। इस अन्तर्जातीय (अनुलोम) विवाह के लिये राजशेखर को कितने बड़े सघर्ष का सामना करना पड़ा होगा यह अनुमान हम सहज ही कर सकते हैं।

१. मूक्ति मुक्तावली —

यायावरकुलश्रेणेर्हरियष्टेश्च मण्डनम् ।

मुवर्णवन्धरुचिरस्तरलस्तरलो यथा ॥

२. बालरामायण-अंक १-१३-१४ ।

३. बालभारत १-८१६ (उक्तं हि तेनैव महामुमन्त्रिपुत्रेण)
बालरामायण-१-८१७ (मूक्तमिदं तेनैव महामन्त्रिपुत्रेण)

४. कर्पूरमञ्जरी १-११

चाहुष्माणकुलमोतिमालिभा राउमेहर कइंदगेहिणी ।

भत्तुणो किइमवनिमुन्दरी मा पउजइउमेममिच्छइ ॥

अश्विन्तिमुन्दरी विदुषी महिला थी। मसूत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं पर उनका प्रभुत्व था। उनके द्वारा रचे गये किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का नाम नहीं मिलता, फिर भी इतना स्पष्ट है कि वे अक्षरशास्त्र में निपुण थी। 'काव्यमीमांसा' में अश्विन्तिमुन्दरी के मतों का तीन बार उल्लेख है। एक में उन्होंने वामन के पाक विषयक मत^१ का खण्डन किया है। दूसरे शब्दहरण के विषय में^२ अश्विन्तिमुन्दरी का मत महत्वपूर्ण है। तीसरे रस-परिपाक के विषय में^३ भी उनका स्वतन्त्र मन्तव्य मिलता है। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में^४ अश्विन्तिमुन्दरी को दो बार उद्धृत किया है जिसमें स्पष्ट है कि वे न केवल संस्कृत और प्राकृत अपितु सत्तालीन जनभाषाओं में भी पारंगत थी। दसवीं शताब्दी के तिलक-मञ्जरीशर आचार्य धनपाल की छोटी बहन का नाम भी अश्विन्तिमुन्दरी था। धनपाल ने उसके लिये 'पादप्रलच्छी' की रचना की थी। डॉ० बूलर इमी प्राध्यापक पर 'पादप्रलच्छी' की प्रस्तावना में^५ यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि हेमचन्द्र की देशी नाममाला में जिस अश्विन्तिमुन्दरी का उल्लेख है वह धनपाल की बहन थी, कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर की पत्नी नहीं। बूलर महोदय की यह बात शिती हास्यास्पद लगती है।

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी की रचना अश्विन्तिमुन्दरी के लिये की थी। नाम से अश्विन्तिमुन्दरी अश्विन्तिदेश की प्रणीत होती है। सम्भव है उमका नाम कुछ अन्य हो, परन्तु अश्विन्तिदेश पर प्रगाढ़ अनुराग होने से उन्होंने प्रियता का नाम अश्विन्तिमुन्दरी रच लिया हो।

पारिवारिक जीवन

राजशेखर की साहित्यिक प्रणिष्टा को बनाये रखने में इनकी धर्मपत्नी का बहुत बड़ा योगदान प्रणीत होगा है। इनका पारिवारिक जीवन सुखद रहा होगा। क्योकि "कविता जैसा स्वभाव होता है वैसा ही उमका वाक्य होता है। जैसा चित्रकार होता है वैसा ही उमका चित्र होता है"। इस नियम से कवि के साहित्य से

१. काव्यमीमांसा १-११

२. काव्यमीमांसा अ ५५० २०

३. वही ४ ११५० ५७ ।

४. देशीनाममाला ५-७१, ५-१५७ ।

५. पादप्रलच्छी-डॉ० बूलर (प्रस्तावना) ५० ७ ।

गन्धुष्ट पारिवारिक जीवन का पता चलता है । उनके मममन् ग्रन्थों का सम्पक् निरीक्षण करने से मालूम होता है कि वे विनासी तथा विनोदी स्वभाव के थे । उनके जीवन का अधिकांश भाग राजदरबार में ही बीता था । अतः उनकी वाणी में शिष्टता तथा आचार-विचार एवं वैशभूषा में राजमभोचित गरिमा थी । आदर्श कवि की जीवन-चर्चा का वर्णन राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में किया है । अनुमानतः उनका जीवन तदनु रूप रहा होगा । इस दृष्टि से वे वात्स्यायन वर्णित नागरिकचर्चा के नागरिक थे । वात्स्यायन के नागरिक मुख ममृद्धि के प्रतीक थे । हमारे काव्य-माधक के विषय में भी यह कथन अति-शयोक्ति न होगी ।

अध्ययन

राजशेखर ने किम शुक्ल या विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण की, इसका निर्देश प्राप्त नहीं है । राजशेखर ने स्वयं कवि के निये वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या, राजसिद्धान्तत्रयी, सांसारिक या व्यवहारिक वृत्त, धन्यान्व कवियों की रचनायें, दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य, प्रकीर्णक (चौगठ बलाये, आयुर्वेद ज्योतिष, वृक्षशास्त्र, अश्व गजलक्षण आदि) का अध्ययन आवश्यक बननाया है । वे स्वयं चारों वेदों और वेदगो के विद्वान् थे । इन्होंने ऋग्वेद की दो रचनायें काव्यमीमांसा में उद्धृत की हैं । काव्यपुरुष की उनकी कल्पना पुरुष-सूक्त पर आधारित है । ऐतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय ब्राह्मण, मुण्डक, श्वेताश्वर, ईश और महानारायणादि उपनिषदों का उन्होंने मनन किया था ।

संस्कृत व्याकरण का इनका अध्ययन गम्भीर था । कविरहस्य का छठा अध्याय व्याकरण शास्त्र के नियमों से सबन्धित है । प्रवृत्ति और प्रत्यय निष्पन्न सुबन्त एव तिङ्बन्त शब्द, प्रातिपदिक एव पद की परिभाषा, सुबन्त, ममासान्त तद्धितान्त कृदन्त और तिङन्त के पाँच पद-भेद, ममासवृत्ति के छ भेद, तद्धितवृत्ति की अनन्तता, दस लकारों पर आधारित तिङन्त के दस भेद, वाक्य, वाक्यभेद, भारत के विभिन्न देशों की प्रियवृत्तियाँ, पातञ्जल महाभाष्य के पञ्चशाहिक का समीक्षण, व्याकरण का काव्यविद्या की दृष्टि से मूल्यांकन, व्याकरणकारपाल्यकीर्ति के मत का उल्लेख, शब्द ब्रह्मवाद का विवेचन आदि से उनकी व्याकरण विषयक पारंगतता सूचित होती है ।

वायु-पुराण इनका प्रिय पुराण है । काव्यपुरुष के जन्म की कथा प्रमुखतः वायु-पुराण वेकथान्त पर आधारित है । कविरहस्य अधिकरण के मन्तम अध्याय

मे ब्राह्मवचन उसके पाँच प्रकार-स्वायम्भुव, ऐम्बर्ष, आर्ष, आर्षीक एव आर्षीपुत्रव, इन सबका वर्णन राजशेखर ने वायुपुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर किया है। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण और अग्निपुराण में उनकी रुचि दिखाई देती है। भारतवर्ष के वर्णन में जम्बूदीप का उल्लेख, कविप्रसिद्धियाँ तथा बालरामायण में लिखित अनेक कथाओं का आधार आदर्श पुराण है। इन पुराणों के अध्ययन में राजशेखर की विशेष रुचि थी।

राजशेखर स्मृतियों के भी अध्येता थे। इन्होंने 'विद्वत्शालभजिका' तथा 'काव्यमीमांसा' में मनुस्मृति का श्लोक उद्धृत किया है।

आस्तिक तथा नास्तिक, दोनों दर्शनों पर राजशेखर का अच्छा अधिकार था। इन दर्शनों का परिचय एव उममें राजशेखर की विद्वत्ता, कविरहस्य के अर्थव्याप्ति नामक नवम अध्याय में दिखाई देती है। माख्य, न्याय, योग, वंशेषिक, वेदान्त, पूर्वमीमांसा आदि आस्तिक दर्शन तथा बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि नास्तिक दर्शनों के विषय में इनका ज्ञान अत्यन्त व्यापक था। राजशेखर साम्प्रदायिक विद्याओं से भी सुपरिचित थे। शैव, पाचरात्र (वैष्णव) एव बौद्ध सिद्धांतों का भी उन्हें ज्ञान था। इनकी रचनायें कौटिलीय अर्थशास्त्र, वात्स्यायनीय कामसूत्र एवं भारतीय नाट्यशास्त्र से प्रभावित हैं। निश्चित ही इन्होंने इन ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा।

राजशेखर ने 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटकों के कथानकों के लिये रामायण और महाभारत का अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त कालिदास की समस्त रचनायें—रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, अभिज्ञान-शाकुन्तल, विजयो-वंशीय एवं मालविकाग्निमित्र—उन्होंने रुचिपूर्वक पढ़ी थी। भारवि के किरा-तार्जुनीय, माघ के शिशुपालवध, कुमारदास के जानकी हरण, भर्तृहरि के हयग्री-वध, मयूर के मूर्यशतक, अमरक के अमरशतक, भट्टनारायण के वेणीसहार, बाणभट्ट की कादम्बरी एव जण्डीशतक, पुण्यदन्त के शिवमहिम्नस्तोत्र, वाक्यति-राज के गौडवध, त्रिविक्रमभट्ट के दमयन्तीचम्पू, जीभूतवाहन की व्यवहारमातृका, वात्स्यायन के कामसूत्र, हालसानवाहन की गायिका-मत्तशती, रत्नाकर की सुभा-पितावली, व्यासमुनि के महाभारत, वाल्मीकि ऋषि की रामायण, भवभूति के मातलीमाधव एवं महावीरचरित आदि के अनेक उदाहरण काव्यमीमांसा ग्रन्थ में बिखरे पड़े हैं।

इसी प्रकार काव्यशास्त्र के विषय में उनका पांडित्य प्रगाढ़ था । समस्त प्राचीन आचार्यों का स्थान-स्थान पर उल्लेख उनके व्यापक काव्यशास्त्रीय अध्ययन का सूचक है । भरत, उद्भट, रुद्रट, सुरानन्द श्यामदेव, वाक्यतिराज, मेधा-विह्वर, मगल, द्रोहिणि और आनन्दवर्धन के स्पष्ट नामोल्लेख के अतिरिक्त "आचार्याः" नाम से बहुधा भामह, एव दण्डी का संकेत भी काव्यमीमांसा में उपलब्ध है । एक वाक्य में कहा जाय तो इनके अध्ययन की परिधि में सम्पूर्ण वाङ्मय आ जाता है ।

यात्राएँ

राजशेखर ने वत्सगुल्म से कान्यकुब्ज एव कान्यकुब्ज से त्रिपुरी तक तो भ्रमण किया ही था परन्तु उनके अन्य प्रदेशों की पर्यटन विषयक प्रामाणिक जानकारी अनुपलब्ध है । फिर भी स्वदेश के भूगोल का सूक्ष्म ज्ञान उनके ग्रन्थों में दिखता पडा है । राजशेखर ने 'बालरामायण' में मिथिला, लका, कोकण, अयोध्या, सिंहल, कैलास प्राग्ज्योतिष, कामरूप, पाण्ड्य, द्रविण, माहिष्मती, दशार्ण, सिंहल मथुरा, अवन्ति, कुशस्थली, त्र्यकंशिक, कुन्तल, काची, लाट, औड्र, मगध, काम्बोज, सौराष्ट्र, शक, नेपाल, आन्ध्र, हैहय, विदेश, लम्पाक, वाल्व, वाल्हीक, प्रयाग, चित्रकूट तथा 'बालभारत' में मुरल, मेकल, कर्लिग, रपठ, घकुट आदि और जनपदों का सांस्कृतिक एव प्राकृतिक महत्व वर्णित किया है । 'काव्यमीमांसा' में भौगोलिक आधार पर उनका पाँच खण्डों में विभाजन भी बतलाया है । उनके इस विशाल भौगोलिक ज्ञान तथा उसके सूक्ष्म वर्णन में हम अनुमान करने के लिये बाध्य है कि राजशेखर ने अवश्य ही भारत के सुदूर प्रान्तों का अर्थात् हिमालय से कन्याकुमारी एव कच्छ से ब्रह्मदेश तक का प्रवास और प्रकृति निरीक्षण किया होगा । इनके सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण एव शास्त्रों के गहन अध्ययन झाँकी की उनकी विभिन्न रचनाओं में दिखाई देती है ।

रचनाएँ

आज राजशेखर के नाम से निम्न पाँच रचनायें उपलब्ध हैं—'बालरामायण' 'बालभारत', 'कर्पूरभजरी', 'विद्वंशलभजिका' और 'काव्यमीमांसा' । इनमें 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटक 'कर्पूरभजरी' सटक, 'विद्वंशलभजिका' नाटिका तथा 'काव्यमीमांसा' काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने राजशेखर की कुछ अन्य कृतियों का भी उल्लेख किया है । जैसे, चौदहवीं शती के आचार्य देवनान्द ने धरने काव्या-

नुशासन में 'स्वनाभाकता यथा राजशेखरस्य हरविनासे, द्वारा इन्हे हरविलास प्रथ का न केवल वर्ता बताया है अपितु अन्य दो श्लोको द्वारा' यह भी प्रमाणित किया है कि यह ग्रंथ कभी अस्तित्व में था। आचार्य हेमचन्द्र के पूर्व १३ वीं शताब्दी के वृत्तिकार उज्ज्वलदत्त-जिन्होंने उणादि मूत्रों पर वृत्ति लिखी है^१—ने हरविलास ग्रन्थ का तो उल्लेख किया है परन्तु राजशेखर का नहीं। हेमचन्द्राचार्य द्वारा उद्धृत भ्रम से विदित होता है कि इसका प्रचलन चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक था। संभव है किसी तमसावृत प्रदेश में पडा यह ग्रंथ किसी अन्वेषक गुधी की प्रतीक्षा कर रहा हो।

राजशेखर की सदिग्ध पदावली के कारण उनके नाम पर दो अन्य ग्रन्थों का अस्तित्व भी विवाद का विषय बन गया है। 'बालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होंने प्रथम षट्प्रबन्धों का अवलोकन करने का आग्रह किया है।^३ अतः ये षट्प्रबन्ध विद्वानों के लिए प्रहेलिका बन गये हैं। इसी प्रकार काव्यमीमांसा में देश विभाग के विवेचन के पश्चात् "यस्तुजिगीपत्यधिक पश्यतु मद्भुवनकोपमसौ" कहकर 'भुवनकोप' नामक ग्रन्थ के स्वतंत्र या 'काव्यमीमांसा' के अध्याय विशेष होने की समस्या को हल करने के लिए छोड़ गए हैं। इन दोनों ग्रन्थों के विषय में अनेक मत उपलब्ध हैं।

डॉ० मिराशी 'षट्प्रबन्ध' को कवि की प्रथम रचना मानते हैं।^४ इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थ 'भुवनकोप' के संबंध में डॉ० वि० वि० मिराशी^५ डॉ० एस० के० एव प्रो० रैतो^६ का कथन है कि वह स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर 'कविरहस्य अधिकरण' का अन्तिम अध्याय है।

१. काव्यानुशासन—हेमचन्द्र—पृ० ४३५

आशीयथा हरविनासे—

भोभिरयेकाक्षर ब्रह्मधुतीना मुखपक्षरम् । प्रसीदतु सता स्वान्तोत्वेक त्रिपुरसीमयम् ॥

सुजनदुर्जनस्वरूप यथा हरविनासे—

इतरततो भुपन् भूरि न पतेत् पिशुन. क्षुन । अत्रदाततया किञ्च न भेदो हसत सत ॥

२. उणादिसूत्रवृत्ति—उज्ज्वलदत्त, २।२५

३. विडि न. षट् प्रबन्धान्, बालरामायण १।१२

४. पाठशः कर्ममोरशन बाल्युम पृ० ३६०

५. —वही—

पृ० ३६०

६. हिन्दी आफ मसूत निटरेबर—एस० के० डे०—भाग १ पृ० ४५५।

७. इन्द्रोद्भवान द्वा वर्षरुमञ्जरी—एन० जी० मुरु, पेज jxxxvi

श्री एम० कृष्णमाचारियर ने^१ राजशेखर को "अष्टपत्रदलकमल" ग्रन्थ का तथा प्रो० रैनो ने^२ "रत्नमंजरी नाटिका" का कर्ता बतलाया है। इन दो ग्रन्थों का अन्यत्र उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

डॉ० क्षाम्यरे ने अपने प्रबन्ध में 'षट् प्रबन्धों' को (छैं) छह स्वतन्त्र ग्रन्थ माना है वे बालरामायण, बालभारत, हरविलास, कर्पूरमजरी, विद्वशालभजिका, 'भुवनकोष' एवं 'काव्यमीमासा', को मिलाकर राजशेखर के १३ ग्रन्थों का उल्लेख करते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से पता चलता है कि राजशेखर की उपलब्ध कृतियों की अपेक्षा अनुपलब्ध कृतियाँ ही अधिक हैं। किन्तु विश्वमनीय जानकारी के अभाव में हमें केवल उनका नाम निर्देश करके ही मौनधारण करना होगा।

ग्रन्थों का रचना क्रम

उपलब्ध ग्रन्थों के रचना-क्रम के सम्बन्धी में विद्वानों में मतभेद नहीं है। नीचे कतिपय प्रमुख विद्वानों के मत प्रस्तुत हैं—

१-श्री० वी० एस० आपटे एवं डॉ० स्टेनकोनो

१ कर्पूरमजरी २ विद्वशालभजिका ३ बालरामायण ४ बालभारत

२-डॉ० ए० बी० कौय

१ कर्पूरमंजरी २ बालरामायण ३ विद्वशालभजिका ४ बालभारत

३-श्री० सी० डी० इलाल

१ बालरामायण २ बालभारत ३ विद्वशालभजिका ४ कर्पूरमजरी

४-प्रो० रैनो एवं श्री० शास्त्री

१ कर्पूरमजरी २ विद्वशालभजिका ३ बालरामायण ४ काव्यमीमासा

५-डॉ० मिराशी

१ बालरामायण २ बालभारत ३ कर्पूरमजरी ४ विद्वशालभजिका

५. काव्यमीमासा

१. हिस्ट्री ऑफ़ क्लासिकल सांस्कृतिक लिटरेचर-एन० कृष्णमाचारी, पृज ६२७-६२८ ।

२. द्रष्टव्य —वही—पृ० ६२७-६२८ ।

इस रचना-क्रम से कतिपय तथ्यों की जानकारी मिलती है। पहिली बात- १८८६ में जब श्री० वी० एस० भाषटे ने "राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्ज" की रचना की तथा १९०१ ई० में डॉ० स्टेनकोनो ने 'कर्पूरमञ्जरी' सद्क की टीका लिखी जब तक 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया था। दूसरी बात यह है कि डॉ० मिराशी और श्री० दलाल को छोड़कर सभी विद्वान 'बालभारत' को कवि की अंतिम रचना मानते हैं। इसका कारण वे बालभारत का अपूर्णत्व बतलाते हैं। केवल इन्हीं दो विद्वानों ने 'बालरामायण' को कवि की प्रथम रचना माना है। अन्य तीन विद्वान 'कर्पूरमञ्जरी' को प्रथम कृति मानने के पक्ष में हैं।

राजशेखर ने 'बालरामायण' तथा 'बालभारत' में स्वयं को महामन्त्री-मुख कहकर अपने पिता का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि इन ग्रंथों के रचना-काल तक उनके पिता जीवित थे। अन्य तीन कृतियों में पिता का नाम निर्देश नहीं है। अतः बालरामायण को प्रथम रचना मानना उचित प्रतीत होता है। 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ की सुयोजित रूपरेखा देने के पश्चात् भी उसका अपूर्ण रहना कवि की मृत्यु की धार ही संकेत करता है। अतः काव्यमीमांसा अंतिम रचना मानना न्याय्य होगा।

राजशेखर के नाट्यग्रन्थों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि 'बालरामायण' 'बालभारत' एवं 'कर्पूरमञ्जरी' की रचना कान्यकुब्ज में तथा 'विद्वद्भालभजिका' की रचना त्रिपुरी में हुई थी। 'काव्यमीमांसा' के विषय में दो मत हैं—डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार यह ग्रन्थ कन्नौज में रचा गया था। डॉ० मिराशी का कथन है कि उसकी रचना त्रिपुरी में हुई थी।

संस्करण

इन रचनाओं के निम्नलिखित संस्करण उपलब्ध हैं—

बालरामायण - (१) पण्डित ओल्ड सीरीज ३ के अन्तर्गत श्री० गोविन्ददेव शास्त्री द्वारा बनारस से सन् १९६६ में प्रकाशित।

(२) श्री० जे० विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १८८४ में प्रकाशित।

(३) श्री० लक्ष्मण सूरि द्वारा कलकत्ता से सन् १७६६ में प्रकाशित।

कर्पूरमञ्जरी : (१) 'पण्डित ओल्ड सीरीज ७' के अन्तर्गत श्री० वामनाचार्य द्वारा सन् १८७२-७३ में बनारस से प्रकाशित।

- (२) 'काव्यमाला सीरीज न० ४' के अन्तर्गत वासुदेव व्याख्या समेत श्री दुर्गाप्रसाद तथा श्री पाण्डुरंग परब द्वारा सन् १८८७ में बम्बई में प्रकाशित ।
- (३) जे० विद्यासागर द्वारा व्याख्या सहित कलकत्ता से १८७६ में प्रकाशित ।
- (४) आग्ल भाषा में 'ए लकी वाइफ' शीर्षक के अन्तर्गत श्री वी० एस० इस्लामपुरकर द्वारा बम्बई में १८६० में प्रकाशित ।
- (५) श्री स्टेनकोनो तथा श्री सी० आर० लॉनमैन द्वारा 'हार्वर्ड ओरियन्टल सीरीज ४' के अन्तर्गत केम्ब्रिज से १९०१ में प्रकाशित ।
- (६) श्री० मोतीलाल बनारसीदास द्वारा इसी संस्करण का बनारस से पुनः १९६५ में प्रकाशन ।
- (७) श्री एन० जी० मुहू द्वारा अंग्रेजी और मराठी अनुवाद सहित १९६० में पूना में प्रकाशित ।
- (८) चौधम्बा मस्कृत सीरीज से आचार्य रामचन्द्र द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन ।

इन संस्करणों के अतिरिक्त हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि स्वर्गीय श्री० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'वर्पूरमजरी' का हिन्दी में अविकल्प अनुवाद किया है ।

विद्वंसालर्भजिका

- (१) श्री० वामनाचार्य द्वारा 'पंडित श्रीलड सीरीज' के अन्तर्गत १८७२-७३ ई० में बनारस से प्रकाशित ।
- (२) श्री जे० विद्यासागर द्वारा सत्यव्रत व्याख्या समेत कलकत्ता से सन् १८७३ में प्रकाशित ।
- (३) इनके द्वारा सन् १८८३ में पुनः प्रकाशित ।
- (४) श्री वी० आर० आरले द्वारा (नारायण दीक्षित की व्याख्या समेत) पूना से सन् १८८६ में प्रकाशित ।
- (५) आग्ल भाषा में प्रथमतः अनुदिन, जे० ए० ग्रो० एम० वं लुई एच० ग्रे (Louis H. Gray) द्वारा सन् १९०६ में प्रकाशित ।

काव्यमीमांसा

- (१) 'गायत्रबाड ओरियन्टल सीरीज १' के अन्तर्गत श्री सी० डी० दलाल एवं श्री० आर० ए० शास्त्री द्वारा बडौश में सन् १९१६ में प्रकाशित ।

- (२) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से सन् १९५४ ई० में श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत द्वारा प्रकाशित ।
- (३) 'हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला १४' के अन्तर्गत वाराणसी से सन् १९५८ में मधुसूदन मिश्र द्वारा प्रकाशित ।
- (४) डॉ० गंगासागर राय द्वारा संपादित ।
- (५) डॉ० गंगानाथ झा ने कवि शिक्षा प्रणाली विषय पर व्याख्यान दिए थे । उन व्याख्यानों का सङ्कलन 'कविरहस्य' रूप में हिन्दुस्तानी अकादमी ने सन् १९२८-१९२९ में प्रकाशित किया था । यह 'कविरहस्य' पुस्तक बाब्यमीमासा के कविरहस्य का ही अनुवाद है ।

बालभारत

'बालभारत' का स्वतन्त्र संस्करण उपलब्ध नहीं है । 'काव्यमाला सीरीज ४' के अन्तर्गत कर्पूरमजरी के संस्करण से सन्गम इस ग्रंथ का एकमेव संस्करण उपलब्ध है ।

राजशेखर की रचनाओं के इतने अधिक संस्करण उनकी लोकप्रियता के प्रतीक हैं ।

सन्मान-प्रतिष्ठा

राजशेखर के समकालीन कवि मित्त कृष्णशंकर वर्मा की राजशेखर के विषय में यह प्रशस्ति प्रसिद्ध है—

पातु श्रोत्ररमायन रचयितु वाच सतातम्मत
व्युत्पत्ति परमाषवाप्सुमर्वाधि नव्यु रसस्रोतस ।
भोक्तुं स्वादुफल च जीविततरोर्यंचस्ति ते कौतुक
तद् भ्रात शुणु राजशेखरकवे सुतो मुधास्यन्दिनीः ॥

अर्थात् यदि कानों को रसायनपान कराना चाहते हों, सञ्जन-सम्मत वचनों की रचना करने के दृष्टिकोण से, विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने की सालगा रखते हों, रस-स्रोत की पराकाष्ठा चाहते हों, जीवन-रूपी वृक्ष के मधुर फल का आस्वादन करना चाहते हों तो हे भाई, राजशेखर की अमूर्तवर्षिणी सूक्तियों को सुनो ।

बार-बार उनकी काव्यमाधुरी का पान करने पर भी को रमिकों तृप्ति नहीं होती थी। उनके दूसरे मित्र आपराजित ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

वालकवि. कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्याय. ।

इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमाहृद ।

सोऽस्य कवि श्रीराजशेखर त्रिभुवनमपि धवलयन्ति

हरिणाक प्रति पङ्क्ति सिद्धया निष्कलका गुणा यस्य ।।

अर्थात्, वालकवि, कविशिरोमणि, निर्भयराज के उपाध्याय आदि का गौरव इन्होंने पाया है। इनके निष्कलक गुणों में त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है। मृगाक-वधाकार आपराजित के इन वचनों से प्रमाणित होता है कि राजशेखर अपने युग के मूर्धन्य कवि थे। जिनकी कीर्ति उनके समक्ष ही दिग्दिगन्त में फैल गई थी। अपने जीवन-काल में इतनी अधिक कीर्ति शायद ही किसी कवि को मिली हो। उनकी मृत्यु के पश्चात् साहित्यकारों ने उन्हें स्तुतिकुमुमाञ्जलि अर्पित की है, वह पठनीय है। सोड्डल का कथन है—

यायावर प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशसित सूरिसभाज वर्ये ।

नृत्यत्युदार भणिते रमस्या नटीव यस्पोडरमा पदश्री ॥

(अर्थात् रममयी नटी के नृत्य के समान जिसकी कविता में पदों की शोभा मृत्य करती हुई दिखाई देती है, ऐसे राजशेखर गुणज्ञ मुधीजनों द्वारा प्रशंसित है) तिलक-मञ्जरीकार धनपान का कथन है कि मुनियों की वृत्ति धारण करने वाले यायावर कवि की कविता समाधिगुणशालिनी तथा प्रसादगुण से परिपक्व होती है—

समाधि-गुण-शालिन्य प्रसन्नपरिपवित्रमा ।

यायावर-ऋचेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तय ।

राजशेखर ने साहित्यकारों में एव विद्वत्सभाज में जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उतने वही अधिक प्रतिष्ठा एव सम्मान उन्हें राजदरवार में प्राप्त था। राजशेखर नर्वा शनी के अद्भुत पराक्रमी एव प्रख्यात सम्राट गुर्जर प्रतिहार महेंद्रपाल के राजगुरु थे। यह जितना भव्य सम्मान था। इस प्रकार इस उभयमुखी प्रतिभा से सम्पन्न वनावार ने द्विविध-साहित्यिक तथा राजकीय-गौरव प्राप्त किया था।

मृत्यु

दोमेन्द्र ने राजशेखर के विषय में कहा है कि—

कर्णाटी-दशाक्ति मितमहाराष्ट्री-कटाशाहतः
 प्रौढान्धीस्तनपीडित प्रणयिनी भूभग विन्नामित ।
 लाटीबाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जित
 सोऽय सम्प्रति राजशेखर-कविर्वाराणसी वाञ्छति ॥

(अर्थात् पहले जो कर्नाटक देश की वनिताओं के दन्तकृतों से चिह्नित हुआ, फिर महाराष्ट्र की गोरी ललनाओं के कटाक्षनिक्षेप का शिकार हुआ, बाद में भ्रान्त्र को प्रौढ मुन्दरियों के स्तनों के भार से दब-सा गया, फिर प्रेयसी की कुटिल भूकुटि से भयभीत हुआ, बाद में लाट देश की कामिनियों के बाहुपाश में आवद्ध हुआ, और मलय-नितम्बिनी की तर्जनी से तर्जित भी हुआ, वही कविशिरोमणि राजशेखर आज धाराणसी जाने की स्फूहा कर रहा है) ।

क्षेमेन्द्र के इस कथन में सत्यता या प्रामाणिकता का प्रभाव होने के कारण यह विश्वसनीय नहीं है । राजशेखर ने बल्मगुल्म को अपने जन्म से पुनीत किया था, किन्तु वह क्षेद्र जन्मस्थली तक ही महत्वपूर्ण रहा । उनकी कर्म भूमि कान्यकुब्ज थी । त्रिपुरी पर भी उनका प्रभाव था । महेन्द्रपाल नरेश के आश्रय में इस तर्पण कवि ने पहले बालरामायण की रचना की और तत्पश्चात् कर्पूरमञ्जरी की । जब वे महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी पुत्र महीपाल की छत्रच्छाया में बालभारत को पूर्ण कर रहे थे, उसी समय उन पर दुर्दिन के बादल मण्डराने लगे । पिता की मृत्यु एवं आश्रयदाता के जगल-जगल में भटकने में कवि पर दांढ़री विपत्ति आ पड़ी और वे इसी दशा में कन्नौज से त्रिपुरी पहुँचे । वहाँ 'विद्वग्बालभजिका' की रचना की । पुत्र महीपाल के स्थिर हो जाने पर कन्नौज लौटे । तब तक वे बृद्ध-वस्था में पदार्पण कर चुके थे और अपने प्रौढ़ पांडित्य एवं जीवन की सम्पूर्ण-साहित्यिक निधि को काव्यमीमांसा में एकत्र करना चाहते थे किन्तु जराजर्जरित देह उनकी साधना में बाधक हुई । वे काव्यमीमांसा ग्रन्थ को प्रारंभ ही कर पाये कि उनकी मृत्यु हो गई । इस समय वे नब्बे वर्ष के थे । भारत तथा भारती दोनों ही इस महापुरुष के निधन से होने वाली क्षति को आज तक पूर्ण नहीं कर पाये ।

सामयिक परिस्थितियाँ

समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार की रचनाओं में यत्र- तत्र दृष्टिगत होता है । साहित्य पुग का निर्माण करता है, और पुग साहित्य का । साहित्यिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थितियों से उद्भूत प्रेरणा साहित्यकार को

प्रभाविन करती है। दूसरे शब्दों में, सामयिक साहित्य, देश, धर्म, समाज और जीवन ही साहित्य-निर्माता की पृष्ठभूमि होते हैं।

राजशेखर नवम शताब्दी के साहित्यकारों की कोटि में अग्रणी कहे जा सकते हैं। वे साहित्य-नायक थे। जनार्चि के अनुकूल साहित्यिक पृष्ठभूमि तैयार करना ही उनका परम लक्ष्य था। अतः साहित्य को नई दिशा की ओर मोड़ने का इन्होंने प्रथमनीय प्रयत्न किया। शताब्दियों से चली आने वाली साहित्यशास्त्रीय परम्परा को एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख करने में उनकी वैखरी प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई। अतः राजशेखर कालीन स्थितियों का अवलोकन, उनकी रचनाओं के अनुशीलन के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

नाटककार राजशेखर के पूर्व विद्यमान नाट्य-परम्परा का प्रभाव उनकी नाट्य-कृतियों में स्पष्ट झलकता है। अतः इस पूर्ववर्ती नाट्यपरम्परा का विहंगावलोकन यहाँ आवश्यक होगा।

नाट्य-परम्परा

संस्कृत साहित्य में नाटको की सजीव एवं मूर्त परम्परा का प्रवर्तन भाम के साथ होता है। भासकृत नाटको की मर्यादा तेरह है। ये नाटक हैं—दूतवाक्य, कर्णभार, दूत-घटोत्कच, उरुभग, मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, अभिषेक, बालचरित, अविमारक, प्रतिभा, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता और चारुदत्त। इन रचनाओं का आधार महाभारत, रामायण, उद्दयन कथा एवं काल्पनिक है। दूतवाक्य, कर्ण-भार, दूतघटोत्कच, उरुभग, मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र और बालचरित महाभारताश्रित है। प्रतिभा और अभिषेक का उपजीव्य रामायण है, और अविमारक एवं चारुदत्त के कथानक काल्पनिक है। प्रतिज्ञायोगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्त उद्दयन की जीवन-घटना में सम्बन्धित है।

नाटको की निर्माण-परम्परा में भाम के बाद कानिदाम का क्रम आता है। नाटकों के क्षेत्र में इस महाकवि ने (१) मालाविकाग्निमित्र (२) विक्रमोर्वशीय एवं (३) अभिज्ञान शाकुन्तल—इन तीन कृतियों का प्रणयन किया है। मालाविकाग्निमित्र की गणना नाटिका-भेद में की जाती है, विक्रमोर्वशीय की त्रोटक एवं अभिज्ञान शाकुन्तल की नाटक में।

कानिदाम के बाद अश्वघोष का नाम उल्लेखनीय है। अश्वघोष के नाटक का नाम 'शारिपुत्र प्रकरण' है। अश्वघोष के परवान् शूद्रक उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मुष्कटान्ति की रचना की थी। राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि में यह

राजशेखर को उत्तराधिकार के रूप में भाम से मुरारि तक की नाट्य परम्परा उपलब्ध थी। इन सम्पूर्ण कृतियों को हम कथानक की दृष्टि से तीन भागों में बाँट सकते हैं—(१) रामायण पर आश्रित-प्रतिमा, अभिषेक, उत्तररामचरित, महावीरचरित एवं अनर्घराघवं (२) महाभारत पर आश्रित—दूतवाक्य, कर्ण-भार, दूतघटोत्कच, उरुभन, मध्यमव्यायोग, पचरात्र, बालचरित, एक-श्रेणीसंहार, (३) कल्पित या उत्पाद्य—मालविकाग्निमित्र, अविमारक, चारुदत्त, रत्नावली, प्रियदर्शिका, मान्तीमाधव आदि। कल्पित कथावस्तु का मुख्य उद्देश्य रामायण और महाभारताश्रित नाटकों से भिन्न था। स्वाभाविक है कि उत्पाद्य कथावस्तु पर आश्रित नाट्यकृतियाँ जनमत के अधिक समीप रही होंगी। घिसीपिटी कथावस्तु में लाख प्रयत्न करने पर भी नये प्राण उड़ाना कठिन था। "जनसामान्य के लिए इन कथाओं में तब तक कोई विशेष हचि नहीं हो सकती थी, जब तक कि उनमें कोई विशेष कलाप्रयोग न किया गया हो। भवभूति को इसी कारण, नवीनरम मार्ग का वरण करना पड़ा। दूसरी ओर कल्पित कथाओं छोटे-छोटे राजपरिवारों के अन्तर्गत स्नेह संबंधों का उद्घाटन करती, और प्रकारान्तर में लोगों की अपरि-तुष्ट शृंगार भावना की पुष्टि में सहायक होती थी। इनमें दर्शक की उत्सुकता बनी रहती थी, क्योंकि वे उनके कथानक में पूर्वपरिचित न होने थे। अपने दर्शकों के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए, उत्पाद्य वस्तु के नाटककारों ने अपनी कृतियों में प्राकृत को अधिक महत्व दिया था।

राजशेखर ने समर्पण कलाकार की भाँति अपने पूर्व में चली आती हुई चारों शैलियों का वरण किया और अपनी प्रतिभा के सस्पशं से उनमें नवीन प्राणों का संचरण किया। उन्होंने रामायणीय कथानक पर नवीन प्रयोग करते हुए, बाल-रामायण लिखा, और महाभारत के आधार पर बालभारत की रचना की। शिष्ट, अधीत, मध्यमों के लिए विद्वज्ज्ञानभञ्जिका का निर्माण किया, तो रामान्य समाज को कर्पूरमञ्जरी के लावण्य कौशल में चमत्कृत करने का प्रयास किया। राजशेखर का वैशिष्ट्य उनकी समग्र द्रष्टव्यता में है। इन कृतियों के सम्बन्ध में उनके नवीन कला-प्रयोगों की चर्चा हम विशेष प्रसंग पर करेंगे।

शास्त्र-परम्परा

जिस प्रकार राजशेखर को उत्तराधिकार में भाम से मुरारि तक की नाट्य-परम्परा प्राप्त थी उसी प्रकार उन्हें आचार्य भामह से आचार्य आनन्दवर्धन तक शास्त्रशास्त्र की विरामित प्रणाली पृष्ठभूमि के रूप में उपलब्ध थी। उन्होंने

काव्यमीमासा ग्रन्थ में प्रायः सभी पूर्ववर्ती आचार्यों—(भरत, वामन, उद्भट, लोल्लट, भानन्दवर्धन) के मतों का उल्लेख किया है। साथ ही उन पूर्ववर्ती आचार्यों की नामावली भी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है, जिनसे पूर्ववर्ती आचार्यों नितान्त अपरिचित थे। इन पूर्ववर्ती आचार्यों में प्रमर^१ उक्तिधम^२, उतघ्य^३, उपमन्यु^४, भवर्ष^५, प्रचेतायन^६, मगल^७, रूप^८, श्यामदेव^९ सुरानन्द^{१०}, श्रीर मूर^{११} केवल नाम शेष हैं। इनकी कृतियों अथवा इनका स्वयं का परिचय राजशेखर के शब्दों में ही मिलता है।

काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य मेघाविहद का उल्लेख भालंकारिक के रूप में मिलता है। स्वयं भामह^{१२} ने अपने काव्यालंकार में मेघाविहद को दो स्थलों पर उद्धृत किया है। रूद्रट के काव्यालंकार की टीका लिखने वाले नमि-साधु ने^{१३} इनके अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्देश किया है। अतः इनका अस्तित्व निर्विवाद है। राजशेखर इनकी मौलिक प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस प्रतिभा के कारण ही जन्म से मन्धे होने पर भी मेघाविहद, कुमारदास आदि को समस्त विषय प्रत्यक्षवत् भासित होते थे।

“प्रतिभावत् पुनरपश्यतोऽपिप्रत्यक्ष इव । यतो मेघाविहद कुमारदासादयो जात्यन्धा कवय श्यन्ते ।”^{१४} आचार्य दण्डी ने इनका उल्लेख मेघावी नाम से किया^{१५} है।

कालक्रमानुसार मेघावी के पश्चात् आचार्य भामह का स्थान है। काव्यशास्त्र के ये आद्य भालंकारिक हैं। इनकी अलंकारशास्त्र में सर्वधिन एकमात्र कृति काव्यालंकार है। इन्होंने इस ग्रन्थ में काव्य-शरीर (काव्य के प्रयोजन, लक्षण आदि) अलंकार, दोष, न्यायनिर्णय, शब्दशुद्धि आदि का विवेचन किया है। राजशेखर ने इनके सिद्धांतों का उल्लेख ‘आचार्यः’ नाम से किया है।

१. काव्यमीमासा अध्याय १० पृ० ५५५, (२), (३), (४) वही अ १ पृ० १, (५) वही अध्याय १० पृ० ५५, (६) वही अध्याय १ पृ० १ (७) वही अध्याय ४ पृ० ११, १४ अध्याय ५ पृष्ठ १६, २०, (८) वही अध्याय १० पृ० ५५, (९) वही अध्याय ४ पृ० ११, १३, अध्याय ५ पृ० १७ (१०) वही अध्याय १३ पृ० ७८, (११) वही अ. १३ पृ० ७८

१२. काव्यालंकार-भामह. २-४०, २-८८

१३. काव्यालंकार-रूद्रट १.२

१४. काव्यमीमासा. अध्याय ४ पृ० ११-१२

भामह के पश्चान् आचार्य दण्डी का नाम आता है। इन्होंने काव्य तथा शास्त्र दोनों ही क्षेत्रों की श्री-वृद्धि की। अलंकार-शास्त्र को उनकी अमूल्य देन है— काव्यादर्श। तीन परिच्छेदों में विभक्त इस ग्रन्थ में काव्यलक्षण, काव्यभेद, मद्य के दो भेद, आख्यायिका, कथा, रीति, गुण तथा कवि के आवश्यक गुण, अलंकार, अलंकारों की परिभाषायें, उनके उदाहरण, यमक, चित्तबन्ध, गोमूत्रिका, सर्वतो-भद्र और वर्ण-नियम आदि सोलह प्रकार की प्रहेलिकाओं और दस प्रकार के काव्य-दोषों का विशद विवेचन किया है। काल की दृष्टि से दण्डी के उपरान्त उद्भट और वामन का स्थान है। ये दोनों प्रायः समकालीन थे तथा काश्मीर-नरेश जयापीड के सभापण्डित थे। राजशेखर ने उद्भट और वामन के विचार औद्भटा^१ एवं वामनीया^२ नाम से व्यक्त किए हैं। आचार्य उद्भट के ग्रन्थ का नाम 'अलंकारस्मरसंग्रह' है। नामानुसार इस ग्रन्थ का प्रमुख विवेच्य विषय अलंकार है। रीति को काव्य की आत्मा धरित करने के अतिरिक्त इन्होंने काव्य के प्रयोजन, काव्य के अधिकारी, रीति के प्रकार, काव्य के प्रकार, पद-वाक्य, वाक्यांशों के दोष, अलंकार, गुण, गुणों के दस भेद, काव्यमय, सदिग्ध शब्दविवेचन तथा शब्दशुद्धि का विवेचन किया है।

आचार्य रुद्र काव्यालंकार के कारण अलंकार-क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रन्थ में काव्य प्रयोजन, भाषा, रीति, रस तथा वृत्ति का वर्णन होने पर भी प्रमुखता अलंकारों के विवेचन को दी गयी है। इन्होंने अलंकारों का प्रथमतः वैज्ञानिक विभाजन किया है। राजशेखर ने ब्रह्मोक्ति की शब्दालंकारता के विवेचन के अवसर पर इनका उल्लेख किया है।

रुद्र के पश्चान् धानन्दवर्धन का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ये ध्वनि सम्पदाय के प्रवर्तक हैं। इनकी एकमात्र कृति 'ध्वन्यालोक' ध्वनि विरोधी मनो, ध्वनि के भेद-प्रभेदों एवं उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालती है। राजशेखर ने कही इनका निर्देश 'कश्चित्' शब्द द्वारा और वही 'धानन्द'^३ नाम से किया है।

धानन्दवर्धन के पश्चान् काव्यक्षेत्र में राजशेखर का पदार्पण हुआ। हम देखते हैं कि काव्य के शास्त्रीय क्षेत्र में भी नाट्यक्षेत्र के समान राजशेखर के सम्मुख प्रचुर

१. काव्यमीमांसा : अध्याय ६ पृ० २२, अध्याय ६ पृ० ४४

२. वही—अध्याय ४ पृ०, १४,

३. वही—अध्याय ५ पृ० २०

सामग्री विद्यमान थी। उन्होंने उपस्थित सामग्री का यथावत् श्रेष्ठ्ययन कर अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा में उसे और विकसित एवं समृद्ध किया। न केवल विचारों और मिथ्याता की दृष्टि से, अपितु निरूपण-शैली की दृष्टि से भी उन्होंने साहित्य-समीक्षा को एक नई दिशा प्रदान की और मौलिक मर्मज्ञ के साथ-साथ आचार्य के रूप में भी प्रथम पक्ति में प्रतिष्ठित हुए। उनकी काव्यमीमांसा के विवेचन के समय इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला जायगा। यहाँ उनके नाट्य-ग्रन्थों एवं काव्यशास्त्र की पृष्ठभूमि का एक चित्र देना आवश्यक है, जिसमें उनकी कृतियों की समीक्षा करते समय उनके सम्मुख प्रस्तुत साहित्य सामग्री के परिप्रेक्ष्य में हम उनके उचित मूल्यांकन में मगध हो सकें।

संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा और उसके आश्रयदाता

संस्कृत नाट्य-परम्परा एवं काव्य-परम्परा का अनुशीलन तत्कालीन सरहट्ट भाषा की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डालने में महायक सिद्ध होता है। राजशेखर से पूर्व-भास में मुरारि पर्यन्त एवं भासह से आनन्दवर्धन तक (नाट्य एवं काव्य) वाङ्मय की गतिशीलता प्रदान करने वाले दो प्रमुख वर्ग थे—कवि और आचार्य, साहित्य-कार एवं साहित्य सेवी। यहा साहित्य सेवी में तात्पर्य समाज के साहित्यानुसारी राजगणों में है। भारत में कवियों एवं विद्वानों को सब प्रकार की महायता एवं सम्मान प्रदान करने की परम्परा राजपरिवारों के इतिहास में प्रारम्भ में ही पायी जाती है। चालुक्य वंश के विष्णुवर्धन, श्रीधरमेन एवं भातगुप्त ने प्रमग भारवि, भट्टि एवं भर्तृहरेण्ड जैसे महाकवियों को प्रथय दिया था। स्याण्शीखर के वर्धन कुल की छत्रच्छाया में वाणभट्ट, भयूर, मानग दिवाकर जैसे प्रथिनयशस्क साहित्य-कार पल्लवित हुए। चन्द्रो का वर्धन वंश भवभूति एवं धाकनिराज के संरक्षण का श्रेयोभागी रहा। काश्मीर के उत्तम राजघराने के आश्रय ने निवत्सामी, रत्नाकर, मुक्ताचण और आनन्दवर्धन जैसे कलाकारों की प्रतिभा को मुखलि किया। इसी देश के जयापीड नृपति ने वामन, उष्मट जैसे आचार्यों को आरना संरक्षण प्रदान किया। राजकुओं के संरक्षण में प्रतिभाशाली व्यक्ति पनपने रहे। राजशेखर में इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

“राजाश्रयेण च गता. वदय. प्रसिद्धिम्।”

ये साहित्यकार अपनी कृतियों के साथ-साथ अपने आश्रयदाता नरेशों को भी समर कर गए। इनकी पुष्टि ‘राजश्व नास्ति क्विना तदुज गहाय’ इस वाक्य में हो जाती है। राजा एवं साहित्यकार दोनों ने निम्नकर सरहट्ट को जो प्रतिष्ठा प्रदान की, उसकी प्रतीति तत्कालीन ग्रन्थवैभव से हो जाती है। राजशेखर के युग में

संक्रामुद्ध के समय तीन तुल्यबल सम्राटवशो की खोनुप दृष्टि बभ्रोज नगरी पर जा टिकी। ये अदम्य साहसी सामक थे—बंगाल के पाल, राजपूताना के गुर्जर-प्रतिहार, एवं मालखेड के राष्ट्रकूट। इन दुर्बल सामको से छुटकारा पाते न पाते बन्नीज को इन तीन दिग्गजों की गृहदृष्टि का पात्र बनना पडा। आठवीं शताब्दी के अधिकाग भाग में तथा नवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में इन नगरी में युद्ध की रणभेरी रह रहकर बजती रही। अन्तराल देवर पाल प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट एक दूसरे में तलवारों के सहारे मिलने रहे। पाला के शय में तनवार छूटती नहीं कि पुल उगे बाम कर रणभूमि में उतर पडता।

श्री० एच० रायचौधरी, कालिचिन्तर दत्त एवं धार० सी० मजूमदार ने तत्कालीन उत्तर भारत के राजनीतिक केन्द्र बभ्रोज का वर्णन इस प्रकार किया है—

“पश्चिम एशिया की सैनिक जातियों के लिए जित प्रकार वैशिमोन था, त्यू टौनिक बवंरो के लिए जिस प्रकार रोम था, पूर्वी और दक्षिणी यूरोप के लिए मध्ययुग में जिस प्रकार वारजेण्टिन था उमी प्रकार आठवीं और नवीं शताब्दियों के नवोदित राजवंशों के लिए ‘महोदय’ अर्थात् बभ्रोज था।”

भारत के इस विशेष संपर्क में भाग लेने वाले नवोदित राजवंशों, पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट—का परिवय निम्न तालिका में स्पष्ट हो जायगा।

पाल	प्रतिहार	राष्ट्रकूट
धर्मपाल (७७० ई. से ८१० ई.)	बलमराज (७८० ई. से ८०५ ई.)	द्वय (७७६ ई. से ७९३ ई.)
देवपाल (८१० से ८५० ई.)	नागभट्ट द्वितीय (८०५ ई. से ८३३ ई.)	शोबिन्द गुनीय (७९४ ई. से ८१३ ई.)
विग्रहपाल (८५० ई. से ८९४ ई.)	रामभट्ट (८३३ ई. से ८३९ ई.)	धर्मोपराज (८१४ ई. से ८३३ ई.)
नारायणपाल (८९४ ई. से ९०८ ई.)	मिहिरभोज (८३९ ई. से ८८५ ई.)	हय्य द्वितीय (८३८ ई. से ९१४ ई.)
राजपाल द्वितीय (९०८ ई. से ९२५ ई.)	महेन्द्रपाल (८८५ ई. से ९१० ई.)	हय्य तृतीय (९१४ ई. से ९२२ ई.)
गणपाल द्वितीय (९२५ ई. से ९५० ई.)	भोज द्वितीय (९१० ई. से ९१३ ई.)	धर्मोपराज द्वितीय (९२२ ई. से ९२३ ई.)
विग्रहपाल (९५० ई. से ९७९ ई.)	मरीचक (९१५ ई. से ९४५ ई.)	शोबिन्द तृतीय (९२३ ई. से ९३९ ई.)

१. प्राचीन भारत: (भारत का गृह्य इतिहास) भाग-१

हैमचन्द्र राय चौधरी, कलिचिन्तर दत्त, धार० सी० मजूमदार—पृ० १७५

ग्रामुघवशीय इन्द्रामुघ को कन्नौज के आसन से हटाना और चक्रामुघ को उस स्थान पर प्रतिष्ठित करना धर्मपाल के लिये चिर अभिशाप बन गया। ८१५ ई में गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभट्ट एव राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की सेनाओं द्वारा उसे करारी हार ही न मिली, प्रत्युत लोहा लेते लेते धराशायी होना पड़ा। नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर गुर्जर प्रतिहारों के प्रभुत्व की स्थापना की। प्रतिस्पर्धी राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय से परास्त होने पर भी उसने कन्नौज को अपने हाथों से जाने नहीं दिया। नागभट्ट के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी रामभद्र अयोग्य शासक सिद्ध हुआ, अतः धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल ने उसे सहज ही उखाड़ दिया। देवपाल उत्तरी भारत के बड़े भाग का निष्कण्ठक स्वामी बन गया। देवपाल की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी विग्रहपाल की शान्तिवादी नीति से प्रतिहार नरेश भोज (रामभद्र का उत्तराधिकारी) को स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। उसने देवपाल की गद्दी पर बैठे हुए विग्रहपाल को बुरी तरह पराजित किया। उसने दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय को नर्मदा तट पर विजित कर मालव भूमि पर भी अपना कब्जा कर लिया। इस प्रकार दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों पर विजय पा जाने के पश्चात् भोज को पंजाब, अवध और अन्य प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में कोई कठिनाई न हुई। भोज ने कश्मीर, सिन्ध, बिहार, बंगाल के पाल राज्य और जबलपुर प्रदेश के कलचुरि राज्य को छोड़कर सारे उत्तरी भारत को प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। यह महान् सम्राट् इस विस्तृत क्षेत्र पर कन्नौज से निष्कण्ठक राज्य करता रहा। ८८५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने बेटे और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल के लिये एक सुमगठित साम्राज्य छोड़ गया। इसी काल में राजशेखर कन्नौज आये।

राजशेखर कालीन राजनीतिक स्थिति

त्रिकोण सभ्यता का अवनत प्रतिहार साम्राज्य की विजय एव महेन्द्रपाल के राज्याभिषेक में हुआ। इस शासक के काल में प्रतिहार साम्राज्य अपनी सफलता एव समृद्धि की चरम सीमा पर था। कान्यकुब्ज की हर्षकालीन गरिमा पुनः लौट आई। महेन्द्रपाल केवल तलवार का ही धनी न था, अपितु साहित्यकारों का आश्रयदाता भी था। जना,^१ दिषवा-दुबोनी^२ और रामगया^३ के भिन्न भिन्न

१. एषियामिन्टिका इण्डिका—भाग ९, पृष्ठ ६, टिप्पणी।

२. इण्डियन एण्टिक्वेरी—भाग १४, पृष्ठ ११२।

३. आरिआलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, कनिथम—भाग ३, पृ० १२३।

अभिलेखों में उसके लिये महेन्द्रायुध, महेन्द्रपानदेव, महीन्द्रपाल आदि उपाधियों का प्रयोग किया गया है। मगध और उत्तर बंगाल पर विजय प्राप्त कर उसने पिता मिहिरभोज की साम्राज्यसीमा और भी विस्तृत कर दी। महेन्द्रपाल के दो अभिलेख ऊना (भालवा) में प्राप्त हुए हैं। इनमें क्रमशः चातुर्व्य नरेश बलवर्मन् और उसके पुत्र भवनिवर्मन् द्वितीय द्वारा एक सूर्य मंदिर को दिने गये दो गावों के दान का उल्लेख है। ये दोनों सामन्त इन अभिलेखों में परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुध अथवा महेन्द्रपाल के सामन्त कहे गये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि (चाटियावाड) भोजपुर भी महेन्द्रपाल के आधीन था। पहेवा, दिघवा, दुबौली एवं सिपदौली अभिलेखों से प्रभाणित होता है कि उसका साम्राज्य पश्चिम में पूर्वी पंजाब, पूर्व में पश्चिमी मगध, उत्तर में नेपाल की तराई तथा दक्षिण में ग्वातियर प्रदेश तक विस्तृत था। राजशेखर के ग्रन्थों में इम दानी, साहित्यसेवी, आश्रयदाता के लिये निर्भयराज, निर्भय नरेन्द्र, रघुकुलनिलक एव रघुकुल चूडामणि, विरदों का प्रयोग उपलब्ध होता है। सिपदौली अभिलेख में महेन्द्रपाल की अन्तिम तिथि ६०७ ई० मिलती है। अतः सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ६१० ई० में महेन्द्रपाल की मृत्यु हो गई होगी।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के पश्चात् सम्भवतः उनके दो पुत्रों, भोज द्वितीय और महीपाल प्रथम में युद्ध छिड़ गया। महेन्द्रपाल की अनेक रानियां थीं। उनमें से एक के पुत्र का नाम भोज और दूसरी के पुत्र का नाम महीपाल था। युद्ध के आरंभ में भोज की विजय हुई। भोज की इस जीत में उसके एक सामन्त चेदि नरेश कोक्कल प्रथम ने बड़ी सहायता की थी। उधर चन्देन नरेश हर्षदेव ने महीपाल का पक्ष लिया। इस समय सामन्त कोक्कल की मृत्यु हो चुकी थी। अतः महीपाल को पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया। इस युद्ध से छुटकारा पाते ही उसे राष्ट्रकूटों का मुकाबला करना पड़ा। सम्भवतः ताअपट के अनुसार राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय और महीपाल के युद्ध में महीपाल की पराजय हुई, किन्तु इन्द्र तृतीय के वापस चले जाने के पश्चात् महीपाल ने कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लिया तथा बश की खोई हुई गरिमा पुनः प्राप्त की। भरव यात्री धनमसूरी ने प्रतीहार-राष्ट्रकूट-मर्षण का उल्लेख किया है। उसने बन्नीर के प्रतिहार राजा को बजर तथा राष्ट्रकूटों को बहुलर कहा है। उसका कथन है कि बहुलर ने रक्षा करने के लिये बजर ने दक्षिण में एक मंदा स्थापित कर रखी थी। भरव यात्री मुनेमान का वर्णन भी उल्लेखनीय है। वह लिखता है कि "जुय के पास

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चार दिशाओं में चार सेनाये मदा तैयार रहती थी । पश्चिम की सेना विशेष सुमज्जित थी । इसका कारण यह था कि उक्त राज्य की पश्चिमी सीमा अरबों के सुल्तान राज्य में मिली हुई थी । अरब वाले हिन्द पर आक्रमण करने के लिये सदा सुमज्जित रहते थे । दक्षिण की सेना (बलुहारा) राष्ट्रकूट का सामना करने के लिये तैयार थी, क्योंकि वह अरबों का मित्र और सहायक था । पूर्व और उत्तर की सेनाओं का अधिक काम नहीं था । ये सेनायें इधर उधर भी जाती थीं । कन्नौज की प्रधान सेना घुडसवारों की थी, तथा सेना में विशेष रूप में मारवाड़ी क्षत्रिय थे ।”

६४५ ई० के लगभग महीपाल की मृत्यु हो गई । महीपाल एक भोज द्वितीय के आन्तरिक कलह में भोज की सहायता देने वाले चेदिवशज कोकिल के १८ भट्टारह पुत्र थे । कौशल की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र शररगण ने पिता का अधिकार प्राप्त किया । उसके उपरान्त उसके बड़े पुत्र बालहर्ष ने अल्पकाल तक शासन किया । बालहर्ष के पश्चात् उनका छोटा भाई युवराज प्रथम कलचुरि सत्ता का स्वामी बना । यह अपने बाल्य का शक्तिशाली शासक था । युवराज ने अपनी पुत्री कन्दुकदेवी का विवाह राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष तृतीय के साथ कर राष्ट्रकूटों से रक्त-सवध स्थापित किया । इस दम्पति से कृष्ण तृतीय का जन्म हुआ यह ६४६ ई० के लगभग राष्ट्रकूट सिंहासन पर आसीन था । अपने अपने पिता की नीति का त्याग कर कलचुरि बश में शत्रुता कर ली, तथा अपने नाना युवराज देव प्रथम पर आक्रमण किया । बिलहरी अभिलेख से पता चलता है कि युवराज ने (बर्नाटो) राष्ट्रकूटों को पराजित किया था । राजशेखर इस नरेश के दरबार में भी रहे थे ।

राजशेखर के समय की राजनीतिक स्थिति का यह पर्यवेक्षण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि राजशेखर के उदय के पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति डीवा-डोल थी । उत्तर में अरबों का जोर था, उमी प्रकार पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट अपनी शक्ति की प्रतिष्ठा के लिये आन्तरिक शक्ति की नींव खोखली कर रहे थे । लगभग डेढ़ शताब्दी तक यह आन्तरिक संघर्ष विकराल रूप धारण किये रहा, किन्तु संघर्ष की सुखद परिणति गुर्जर प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की प्रभुता में समाहित हो गई । राजशेखर महेन्द्रपाल के राजगुरु थे । उन्होंने महेन्द्रपाल के शक्तिशाली पिता मिहिरभोज के ऐश्वर्य, महेन्द्रपाल की सार्वभौमता एवं महीपाल के सामयिक पतन की अनुभूति एक साथ की । इस राजनीतिक उत्थान पतन

ने उनके जीवन पर पर्याप्त प्रभाव डाला जिसकी अभिव्यक्ति अपूर्ण बालभारत एवं बालरामायण के प्रसंगों में हुई है ।

राजशेखर युगोन धार्मिक स्थिति : यह युग हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की उन्नति का काल था । सम्प्रदायों में वैष्णव, शैव, शाक्त एवं सूर्य सम्प्रदाय प्रमुख थे ।

वैष्णव सम्प्रदाय : इस समय विष्णु की उपासना अनेक नामों—गरुडासनदेव, पत्रस्वामिदेव, त्रैलोक्यमोहन, माधव, कामन, स्वामिदेव आदि—से की जाती थी । समाज में उनके अनेक भक्ततारों की भलीभाँति प्रतिष्ठा हो चुकी थी । मंदिरों और मूर्तियों की स्थापना पुण्य कर्म समझा जाता था । स्वामिदेव अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में अल्लनामक एक व्यक्ति ने विष्णुमंदिर का निर्माण कराया था । पेशोवा अभिलेख तोमरां द्वारा निर्मित एक विष्णु मंदिर का उल्लेख करता है । मंदिरों के लिये दानदाताओं की कमी न थी । बहुसंख्यक विष्णु मूर्तियों का निर्माण इसी युग में हुआ था । जोधपुर अभिलेख में शक, चक्र, शदा और कमल धारण किये हुए चतुर्भुजा पारमेश्वरी प्रतिमा का उल्लेख है । शैव-शापी रूप में भी विष्णु अनेकों मंदिर में प्रतिष्ठित हुए ।

शैव सम्प्रदाय : वैष्णव सम्प्रदाय की भाँति शैव सम्प्रदाय भी लोकप्रिय था । शिव भगवान्, महादेव, उद्भ, शंकर, शम्भु, सर्व, पशुपति, योगस्वामी आदि अनेक नामों से प्रख्यात थे । देश के अधिकांश भागों में शिव के मंदिरों और प्रतिमाओं की स्थापना की गई थी । मंदिरों की आर्थिक व्यवस्था दान द्वारा सुकर हो जाती थी । देश में बहुसंख्यक शैवाचार्य और शैव-पाशुपत सन्यासी थे । उनके बहुत से मठ थे ।

शैव और वैष्णव मतों का संबंध : धार्मिक सहिष्णुता के कारण वैष्णवों और शैवों के पारस्परिक संबंध अच्छे थे । शिव मंदिर में प्रायः विष्णु की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की जाती थी । कभी कभी शैवाचार्य शैव मंदिरों के साथ वैष्णव मंदिरों की देखभाल करते थे । राष्ट्रकूट नरेशों की मुहरों में इन दोनों देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं ।

इन दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त तान्त्रिक सम्प्रदाय भी देश में प्रचलित था । उसकी चरमाभिव्यक्ति कौल मत से हो रही थी । कौल सिद्धों की साधना अत्यन्त विद्वत तथा भीषण आचारों से भरी हुई थी । यह धीरे धीरे अपने हाथ पर फैलानी जा रही थी । कौलों ने मासाहार, मुरापान तथा यौन-मपक को साधना

के रूप में स्वीकार कर लिया था । आचरण से पतित होते हुए भी वे राजमहल से समाज तक को सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर प्रलोभित करते थे । इस प्रकार की साधना समाज को दूषित करने का गहंणीय कार्य कर रही थी ।

बौद्ध धर्म : बौद्ध धर्म अपनी अवनत अवस्था में था । इसके अनुयायी अल्पसंख्यक थे, किन्तु उन्हें पूर्णतया धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी । पाल नरेश धर्मपाल एवं देशपाल स्वयं बौद्ध थे ।

जैन धर्म : इस समय दक्षिण में जैन धर्म का प्रचार था । राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम, कृष्ण द्वितीय, इन्द्र तृतीय तथा चतुर्थ ने इस धर्म को राजाश्रय दिया था ।

पूजा : हिन्दुओं में बहुदेवोपासना और मूर्ति-पूजा का प्रचलन था । मूर्ति पूजा के अनेक विधि-विधान विद्यमान थे । शक्ति की पूजा पार्वती, काली, दुर्गा, चामुण्डा, भगवती आदि अनेक नामों में होती थी । सूर्य पूजा को भी पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी । प्रतिहार नरेश रामभद्र और विनायकपालदेव आदित्यभक्त कहे गये हैं । विनायक पूजा का भी प्रचार था । विनायक गणेश के नाम से प्रख्यात थे ।

धार्मिक स्थिति के अवलोकन से पता चलता है कि इस युग में अनेक धार्मिक थे । जिनमें वैष्णव, शैव, (कौल) प्रधान थे । इनके अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार भी था । देवी देवताओं की साकार भक्ति का महत्व अधिक था । फिर भी इन धर्म साधनाओं में पारस्परिक विरोध न था । एक ही वंश के राजगण भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी होते थे । प्रतिहार वंशी नागभट्ट द्वितीय और भोज प्रथम भगवती के उपासक थे तो रामभद्र और विनायक पालदेव आदित्य भक्त । राष्ट्रकूट नरेश जैनावलम्बी थे, किन्तु उनके वंश में उत्पन्न दन्तिदुर्ग ने ब्राह्मणधर्म का अवलम्बन किया था । पाल नरेश बौद्ध धर्म के प्रचारक थे । उन्होंने परम सौगत पदवी धारण की थी किन्तु धर्मपाल द्वारा नरनारायण तथा विनायकपाल द्वारा शिवमंदिर के निमित्त दान का उल्लेख मिलता है । संक्षेप में इस युग में धार्मिक सहिष्णुता पराकोटि की थी ।

राजशेखर की रचनाओं पर प्रभाव - राजशेखर की रचनायें सामयिक एवं पूर्ववर्ती वातावरण से प्रभूती न रह सकी । उन पर प्राचीन नाट्य एवं शास्त्र परम्परा का प्रचुर मात्रा में प्रभाव दिखाई देता है ।

रत्नावली एव मालविकाग्निमित्र की छाप पूर्ववर्ती नाट्य के प्रभाव को सूचित करती है ।

काव्यमीमांसा में पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का अविच्छिन्न प्रभाव लक्षित होता है । राजशेखर ने आचार्य, वामनीय, औद्भट, भरत आदि शब्दों से इभी तथ्य को दिग्दर्शित किया है । तत्कालीन साहित्यिक धारा भी इसमें प्रवाहित है । कवियों की पाठप्रणाली, कवियों की चर्चा आदि के प्रसंग सामयिक प्रभाव से परिनिष्ठित हैं । इन कृतियों के पृथक् पृथक् अनुशीलन से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी ।

द्वितीय खण्ड

राजशेखर के नाटक

वल्मीकजन्मास कथिः पुराण कबीश्वरः सत्यवतीमुतश्च ।
यस्य प्रणेता तदिहानवद्यं सारस्वतं वत्मं न कस्य बन्धम् ॥
वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवरपत्रसधटितम् ।
रसनायु च सुकवीना निवसति सारस्वत चक्षुः ।

राजशेखर के नाटक

राजशेखर के दो नाटक उपलब्ध हैं—बालरामायण और बालभारत । इन नाटकों के मूल स्रोत हैं रामायण एवं महाभारत । राजशेखर के पूर्व भी इन दो काव्यकथाओं के आधार पर निर्मित काव्यों तथा नाटकों की संस्कृत में बहुलता थी । राम साहित्य की परम्परा में महाकाव्य क्षेत्र में कालिदास तथा नाट्यकला में भवभूति का नाम विशेष उल्लेखनीय है । राजशेखर ने इस साहित्य परम्परा को उत्तराधिकार में पाया था । बालरामायण की रचना करते समय वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त भवभूति का महावीर-चरित राजशेखर के सामने था । जसका पर्याप्त प्रभाव इस नाट्यकृति पर परिलक्षित होता है ।

संस्कृत साहित्य में महाभारत के कथानक को लेकर अनेक नाटकों की रचना हुई । पचरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, दूतवाक्य, उरुभंग, कर्णभार एवं वैष्णोसंहार महाभारत पर ही आधारित हैं । राजशेखर ने बालभारत के कथानक का चयन इस महाकाव्य से किया । किन्तु इस कृति के केवल दो अंक उपलब्ध हैं ।

शास्त्रीय दृष्टि से बालरामायण को रूपक के अन्तर्गत नाटक भेद में रखा जा सकता है । यह नाटक दस अंकों में विभक्त है । इसमें सीता-स्वयंवर से रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है ।

प्रथम चार अंकों की घटनाएँ बालकाण्ड पर आधारित हैं । पाँचवें अंक का मूलाधार भरष्यकाण्ड है । छठे अंक में अयोध्याकाण्ड एवं भरष्यकाण्ड के प्रसंग हैं । सातवें अंक की घटनाएँ सुन्दर एवं किष्किन्धा काण्ड पर आधारित हैं । तथा आठवें और दसवें अंकों तक युद्धकाण्ड में सबन्धित घटनाएँ वर्णित हैं । इस नाटक में रामायण के उपाख्यान के अतिरिक्त कई नवीनताएँ भी हैं जो कि राजशेखर की मौलिक प्रतिभा का परिचय देती हैं ।

कथानक . दस अंकों में विभाजित बालरामायण का कथामूत्र इस प्रकार है :—
प्रथम अंक में शून्य शेष रंगमंच पर आता है । उसके कथन से ज्ञात होता है

किन्तु भृगिरिटि दोनों को युद्ध में रोतने है । राम और रावण का प्रसंग ही प्रमुख होने के कारण इस अंक की अभिधा रामगवणीय है ।

सोसरे अंक में मूधमिथुन के कथोपकथन से दो बातें विदित होती है । पहली यह कि राम और लक्ष्मण ने (यज्ञ में बाधा उत्पन्न करने के कारण) ताडका, सुबन्धु और मारीच का वध कर दिया है । दूसरी, सीता के विरह में विशिष्ट रावण के विनोदार्थ "सीतास्वयवर" नामक नाटक का अभिनय होने वाला है । प्रमुख दृश्य में रावण को "सीतास्वयवर" के दर्शक के रूप में दिखाया गया है । राम, लक्ष्मण और विरवमित्र स्वयवर कक्ष में अपना उचित स्थान ग्रहण करते हैं । सीता के अप्रतिम सौंदर्य पर सारे राजराज मुग्ध हैं । सीता, धातंत्रिका, जनक, शतानन्द और प्रतीहारी रगमच पर दिवाई देने है, । प्रतीहारी घोंपणा करता है कि शिवधनुष को भंग करने वाला व्यक्ति ही सीता का पाणिग्रहण कर सकेगा । सब भरोशों के द्वारा इस कार्य में प्रमथयता प्रकट कर देने पर राम सहज ही धनुर्भंग करते हैं । परिणामत जनक राम में सीता का पाणिग्रहण कराते हैं । नाटक देखते हुए रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता है । किन्तु शीघ्र ही प्रतीहारी उभे बताना है कि वह नाटक देख रहा है । इसी समय बंतालिक सन्ध्या की मूचना देने है । रावण अपने प्रासाद से लौटना है । लक्षेश्वर के विलक्षण आचरण का प्रदर्शन ही इस अंक की प्रमुख घटना होने में, इस अंक का शीर्षक है "विलक्षण लक्षेश्वर" ।

चतुर्थ अंक में उपाध्याय और बटु के सवाद में पता चलता है कि राम के द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर उपकोपी परशुराम अध्यापन कार्य छोडकर प्रतिशोध लेने के लिये शीघ्र ही मिथिला की ओर प्रस्थान करने बागे है । प्रमुख दृश्य में ददारुण, विमान द्वारा मिथिला पहुँचते हैं किन्तु वीवारिक उन्हें बतलाता है कि समस्त विवाह-विधि हो चुकी है और राम उपाध्याय के लिये प्रस्थान करने बासे है । दिवाई समारोह में सीता को गुरुजन कुलवधू धर्म की शिक्षा प्रदान करते हैं । इसी समय घोर गर्जना करते हुए परशुराम विवाहमंडप में आ खडे होने है । वे राम पर अत्यन्त क्रुड होते हैं । राम विनयपूर्वक शान्त भावना करते हैं किन्तु परशुराम किंचित् भी द्रवित नहीं होते । अन्त में राम और परशुराम युद्ध के लिये तैयार होते हैं । इस अंक का अभिधान है 'भागंबभग' ।

पाँचवें अंक में मायामय और मान्यवान् की चर्चा से विदित होता है कि राम और परशुराम के युद्ध में राम विजयी हुए हैं । दुर्बुद्धि रावण सीता में अनुरक्त है, तथा उसका हरण करना चाहता है । इगलिये मन्दोदरी के पिता मायामय

ने रावण के कृत्रिम परितोष के लिये यन्त्र-ज्ञानकी का निर्माण किया है । प्रमुख दृश्य में विरही रावण के दर्शन होते हैं । वह सीता के लिये भयन्त व्याकुल है । प्रहस्त यन्त्र-ज्ञानकी और उसकी सखी सिन्दूरिका को रावण के समक्ष उपस्थित करता है । वनिपय प्रणयोद्गार के पश्चात् रावण सीता के आलिंगन के लिये बढ़ता है, किन्तु छूने ही गात हो जाता है कि वह यन्त्र-ज्ञानकी है । वह प्रहस्त को आदेश देता है कि उसे प्रमोदवन का मार्ग दिखाया जाय । कामसत्पत् रावण के लिये 'पद्भक्तु चत्रवाल' की योजना की जाती है किन्तु उसे शांति नहीं मिलती है । वह कामदेव से ऐसे प्रहार की प्रार्थना करता है जिसमें वह और उसकी प्रिया जानकी मरने के पश्चात् पुनः स्वर्ग में मिल सकें । उनकी कामशान्ति के लिये गिरिलियाँ अप्सरायें, नदियाँ, लक्ष्मी, वारुणी एवं मरस्वती उसकी विविध मेवायें करती हैं किन्तु उनसे कोई लाभ नहीं होता । वह हाथी, मर्प, हरिण, चन्द्र, वायु, तथा आदि पर प्रिया के विभिन्न भयवों का सौंदर्य हरने का प्रारंभ लगाना है । प्रमजिवा उसे वस्तुस्थिति का बोध करती है । इसी बीच छिन्नताता शूर्पणखा, सीता का हरण करने के प्रयास में असफल होकर लौटती है । रावण की क्रोधाग्नि भड़क उठती है । सम्पूर्ण ध्रुक में दशानन की उन्मत्तावस्था का वर्णन होने के कारण इस ध्रुक का नाम 'उन्मत्त दशानन' है ।

छठे ध्रुक के आरंभ में माल्यवान् के कथन से पता चलता है कि बहन की दुर्दशा के प्रतिशोध के लिये रावण राम की राजधानी की ओर जा रहा था किन्तु उसे रोका गया । उसके दूत ने खबर दी कि वैदेही ने रावण के साथ रहने का निश्चय किया है । इसके पश्चात् मायामय और शूर्पणखा आती है ।

उन दोनों के वार्तालाप से चौदह वर्ष के लिए राम के निर्वासन का रहस्य उद्घाटित होता है । जिस समय दशरथ कंकयी सहित इन्द्र की सहायता के लिये स्वर्ग गये हुए हैं मायामय शूर्पणखा एवं उनकी परिवारिका प्रमथ दशरथ, कंकयी एवं मयरा के छद्म रूप में अयोध्या पहुँचे । छद्म-कंकयी ने दशरथ से दो बरों की याचना की—राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास एवं भरत का राज्याभिषेक । वामदेव के रोकने पर भी पितृपरायण राम ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और वन के लिये प्रस्थान कर दिया । सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ गये । दशरथ और कंकयी के आगमन के भय में नकली कंकयी और दशरथ जनमजू में मिल गये । प्रमुख दृश्य में दशरथ और कंकयी जब अयोध्या में प्रवेश करते हैं तो राजधानी को मुनसान और उदास देखकर उन्हें कुशका उत्पन्न होती है । वामदेव जब रावण के छल प्रसंग का वर्णन करते हैं तब दशरथ और कंकयी अत्यन्त

शोकानुल ही उठते हैं । राम का ममस्त परिवार शोक-मत्त दिग्गर्द देता है । इसी समय सुमन्त्र आते हैं । वे राम के वन जीवन, तथा नर्मदा तट के प्रवास का कण्ठ वर्णन करते हैं । तत्पश्चात् जटायु का दूत चित्रगिष्णु भी आकर सीता के हरण तथा उन्हें छुड़ाने के प्रयाम में गृध्रराज जटायु की मृत्यु का दुःखद सवाद सुनाता है । यह सुनकर व्यथित हुए दशरथ, गंगा यमुना के संगम में शरीर त्याग करने की इच्छा प्रकट करते हैं । राम-निर्वाहन में दशरथ एवं कैरवी को निर्दोष प्रदर्शित करने के कारण इस श्रु को सजा है—“निर्दोषदशरथ” ।

मातर्वै श्रु का आरम्भ कर्पूरचण्ड और चन्दनचण्ड नामक वृतालिकों द्वारा नेपथ्य में गायी गई प्रभात-भोग्यावली में होता है । वे राम के पुनीत जीवनक्रम का वर्णन करते हैं । प्रतीहार प्रवेश करके उन्हें शीर्ष-गुण के गान करने में मना कर देता है क्योंकि रामचन्द्र ने पिता की मृत्यु में दुःखी होकर रावण के वध तक अपने यशोगान पर निषेधण लगा दिया है । प्रतीहारी एवं वृतालिकों की चर्चा में राम के विनय करने पर भी समुद्र द्वारा मार्ग न देने की घटना का पता चलता है । अन्ततः राम को क्रुद्ध होकर अग्निबाणों की वर्षा करनी पड़ती है । राम, विभीषण और सुग्रीव मन्त्र पर दिखाई देते हैं । हनुमान् नामक नवीन पात्र का आगमन होता है । हनुमान् राम को यथोचित प्रणाम करता है—ममूद्र अपनी पत्नियों सहित आकर राम से क्षमा माचना करता है । वह रोतु बाँधने के लिये राम में आग्रह करता है । सेतु-निर्माण का कार्य प्रारम्भ होता है । राम मलयपर्वत पर चढ़कर सेतुनिर्माण के कार्य का अग्रगण्य करते हैं । एकाग्र-भीषण गर्जना होती है । रावण द्वारा भेजी गई राक्षस सेना सेतुबन्ध में विघ्न डालने का प्रयाम करती है । परिणामस्वरूप वातर और राक्षसों के बीच घमासान युद्ध छिड़ जाता है । राक्षस-सैन्य पराजित होकर भाग जाता है । पुन बाधा उत्पन्न करने के लिये रावण विमान में सीता का कटा मन्त्रक फेंकता है । उसे देखकर राम और लक्ष्मण शोकविविह्वल हो जाते हैं । किन्तु शीघ्र ही सारिका मायामौता के नरुनी होने की सूचना देनी है । अथ राम द्वि-गुणित उत्साह में युद्ध के लिये आगे बढ़ते हैं । राक्षसदल पुन घोरगर्जन करता हुआ रणक्षेत्र में उतरता है और राम को भी चेलावनी देना है । दोनों मैदानें युद्ध के लिए मद्रद हैं । इस श्रु का नाम है ‘अयमपरायम’ ।

आठवें श्रु के आरम्भ में मुमुक्षु और दुर्मुख इन दो राक्षसों के वार्ताचार से पता चलता है कि रावण ने ‘तुलाशूत्र’ प्रत्याद की सम्मति के लिये, गुरु और सारण को राम के पास भेजा है । अर्ध यह भी कि इस तुलाशूत्र में निमकी जीत होगी

उसे—सीता और लका दोनों मिल जायेंगी। सबके निषेध करने पर भी राम अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। इस कार्य में राम का प्रतिनिधि अर्जुन विजयी होता है, किन्तु रावण तुलायुक्त की शर्त वापिस ले लेता है। लिजटा नामक राक्षसी, सीता को युद्ध विषयक समस्त घटनाओं की जानकारी देती रहती है, प्रमुख दृश्य में रावण सोकर उठता है। वह राम और लक्ष्मण में युद्ध करने के लिये क्रमशः कुम्भकर्ण और मेघनाद को भेजता है। मेघनाद और कुम्भकर्ण मारे जाते हैं। इस अंक में वीरो के वीरत्व का वर्णन है। अतः अंक का शीर्षक है 'वीरविनाश'।

अठे अंक के आरम्भ में राम पुरुष दिखाई देता है। उसके कथन से पता चलता है कि उसने लका में हुई मृत्यु-संख्या की जानकारी के लिये चित्रगुप्त के पास अपने सेवक को भेजा है। मृत्यु की संख्या अत्यधिक होने के कारण चित्रगुप्त राम के भार से आक्रान्त है। तथापि वे मृत्यु-लेखा प्रस्तुत करते हैं। इन्द्र और दशरथ राम-रावण के द्वन्द्वयुद्ध के अवलोकन के लिये तैयार हैं। दो चरण युद्ध का वर्णन करते हुए कहते हैं कि युद्ध को राम यथासंभव शांतिपूर्वक निपटाना चाहते हैं किन्तु रावण को यह स्वीकार नहीं है। दोनों योद्धाओं में पहले तो बचनों का आदान प्रदान होता है, तत्पश्चात् बाणों की वृष्टि। अनेक प्रकार के अस्त्रों के चालन से युद्ध की विभीषिका बढ़ जाती है। राम द्वारा रावण के भस्तक छिन्न करने का प्रयास सफल होता है, क्योंकि रावण के बटे हुए सिर के स्थान पर दूसरा सिर उत्पन्न हो जाता है। अन्त में राम विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त मायाहूर नामक अस्त्र का प्रयोग करते हैं, जिससे वे रावण के दसों सिरों का उच्छेद करने में सफल हो जाते हैं। देवगण रावण बध में प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करते हैं। अतः इस अंक का नाम 'रावण बध' है।

अन्तिम अंक में राम के जीवन का सुखमय पक्ष वर्णित है अतः अंक का शीर्षक 'राघवानन्द' है। समोका लका एवं अलका के कथन से ज्ञात होता है कि सीता की अग्निपरीक्षा की गई जिससे वे ब्रह्मण निकल आईं। राम अयोध्या गमन के लिये तत्पर हैं। प्रमुख दृश्य में राम, लक्ष्मण, सीता, लिजटा, सुग्रीव और विभीषण विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं। जिन स्थानों पर युद्ध की महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी थी उन स्थानों का निर्देश करते हुए वे क्रमशः आगे बढ़ते हैं। विमान समुद्र सतह से ऊपर आकाश की ओर पहुँचना है। हिमालय, बंलास, मानस, मन्दर, मेरु आदि पर्वत को पार करते हुए यान चन्द्रलोक में पहुँचकर पुनः रोहणगिरि, मलयगिरि, ताक्षणी एवं अगम्याधम से होना हुआ मोरामुखा के पुनीत आश्रम में रुकता है। तत्पश्चात् श्रिविष्णु, मोघ, कावेरी, महागङ्गा, नर्मदा,

लाट, भालवा, उज्जयिनी, पाचान, महोदय, प्रयाग, वाराणसी एव मिथिला को पार करते हुए वे लोग अयोध्या में आते हैं । राम के राज्याभिषेक के मुख्य विवरण के साथ नाटक की समाप्ति होती है ।

राजशेखर ने बालरामायण नाटक में रामायण की कथा को आधार माना है किन्तु उन्होंने कतिपय नूतनताओं की उद्भावना की है, जिसमें महाकाव्य नाटक के कनेक्टर में परिणत किया जाने योग्य हो सके । स्वयं राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में इसका स्पष्ट संकेत किया है यथा—

पारिपाश्विक —वाल्मीकिना भुनिवरिष्टेन दृष्टनिबन्धनस्य रामचन्द्रचरितस्य
क पुनः स विशेषो यमेव क्विदर्शयिष्यति ।

सूत्रधार —मारिष । क्वचित्कश्चित्प्रगन्भने नहि सर्वं सर्वं जानाति ।

पारिपाश्विक —भाव' ननु भणामि श्रव्यशीकृतसकल संगंशब्दार्थात् तवमवतो
महर्षेरनिक्रम्य किमेष चमंचक्षु प्रेक्षिष्यते ।

सूत्रधार —मारीच मा भवम्

वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवर पत्रसघटितम् ।

रमनामु च सुखीना निवमति मारस्वत क्षु ॥^१

जिन प्रसंगों में नाटककार ने अपनी मौलिकता प्रकट की या प्रचलित कथा से भिन्नता प्रदर्शित की है, वे हैं—१-सीतास्वयंवर, २-विवाहोपरान्त दशरथ का प्रागमन, ३-स्वयंवर के समय विश्वामित्र की धनुषस्थिति, ४-ताडका, मारीच एवं सुबाहु का वध, ५-राम-परशुराम मर्षण, छद्म मस्तकी के प्रसंग, ६-यज्ञजानकी, ७-भूर्पणाखा प्रकरण, ८-कैकयी का दोषनिवारण एवं ९-दशरथ मरण ।

सीतास्वयंवर बाल्मीकि-रामायण में सीता स्वयंवर के प्रसंग में कहा गया है कि जब अनेक राजा शिव के धनुष को उठाने में असमर्थ रहे तो उन्होंने मिथिला पर आक्रमण कर दिया^२ किन्तु उग धटना के वर्षों बाद राम ने धनुर्भंग करके सीता का पाणिग्रहण किया ।^३

बालरामायण में सीता-स्वयंवर प्रसंग दो बार वर्णित है । प्रथम अंक में सीता स्वयंवर की घोषणा के पश्चात् रावण मिथिला को प्रस्थान करता है किन्तु

१ बालरामायण अंक १ पृष्ठ ६।७

२ बाल्मीकि रामायण १-६६

३. वही-२-११८

धनुष ग्रहण करने के पश्चात् वह धनुष परीक्षा को अस्वीकार कर देता है ।^१ इस नाटक के तृतीय अंक में पुनः सीता स्वयंवर के आयोजन का वर्णन मिलता है । शिव का धनुष भंग करने का अनेक राजाओं ने प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे । अन्ततः राम धनुष-भंग करते हैं । सीता-स्वयंवर के गर्भांक में रावण सम्मिलित होता है किन्तु दर्शक के रूप में ।^२

विवाह के उपरान्त दशरथ का आगमन वाल्मीकि-रामायण के अनुसार विश्वामित्र जनक के यज्ञ के अवसर पर राम-लक्ष्मण को मिथिला ले जाते हैं । राम धनुष-भंग करते हैं । दशरथ को निमंत्रित किया जाता है । तत्पश्चात् उनके पुत्रों का विवाह होता है ।^३ बालरामायण में दशरथ को निमंत्रित नहीं किया जाता वे स्वयं रामविवाह का समाचार सुनकर मिथिला पहुँचने हैं लेकिन तब तक विवाह का कार्य सम्पन्न होकर वरवधू की विदाई का आयोजन हो रहा होता है ।^४

स्वयंवर के समय विश्वामित्र की अनुपस्थिति : रामायण के अनुसार स्वयंवर के समय विश्वामित्र स्वयं उपस्थित थे^५ जबकि बालरामायण में विश्वामित्र के स्थान पर उनके प्रतिनिधि धुनःशेष उपस्थित है ।^६

ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का वध (वध की स्थान-भिन्नता) : वाल्मीकि रामायण के अनुसार सिद्धाश्रम में पहुँचने के पूर्व ही राम ताड़का का वध करते हैं^७ तथा भाद्रम में यज्ञ-रक्षा करते समय वे सुबाहु और मारीच का वध करते हैं । लेकिन बालरामायण में सिद्धाश्रमवासियों को अपने उत्पातो से दस्त करने से राम वही उमका वध करते हैं ।^८ उसी प्रकार मिथिला जाने में विघ्न उत्पन्न करने के कारण वे मारीच सुबाहु का वध करते हैं ।^९

राम-परशुराम संघर्ष : वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम के पराक्रम तथा उनके द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर परशुराम उनमें द्वन्द्वयुद्ध करना चाहते

१. बालरामायण अंक १-५०।५१

२. वही अंक ३ पृ० ६०।८५

३. वाल्मीकि रामायण १-६६

४. बालरामायण ४४१-४२

५. वाल्मीकि रामायण १-३१-४० ।

६. बालरामायण १-२३:२३

७. वाल्मीकि रामायण १-२६ वही-१-४० ।

८. वाल्मीकि रामायण ३-६ ।

९. बालरामायण ३।७-८ ।

है । विवाह के पश्चात् घयोध्या की ओर प्रस्थान करते समय वे राम को चुनौती देते हैं, किन्तु ज्यों ही वे विष्णु-नाप चढ़ाते हैं, परशुराम निष्प्रभ होकर उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में पहचान कर प्रणाम करते हैं । राम चढ़े हुए बाण से परशु राम के तपोबल द्वारा संचित पुण्य नष्ट करते हैं और परशुराम महेंद्र पर्वत की ओर चले जाते हैं ।^१

बालरामायण में धनुष-भंग का समाचार सुनकर परशुराम मिथिला पहुँचते हैं । अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे राम का वध करने की बार-बार धमकी देते हैं । अन्त में दोनों युद्ध के दृश्य के उद्देश्य से रंगमंच से चले जाते हैं ।^२

यन्त्र-जलकी (छद्म-मस्तकों के प्रसंग) रामायण में रावण प्रहस्त द्वारा सीता के पास राम के वध का समाचार सुनाता है तथा विद्युज्जिह्व के द्वारा सीता को राम का मस्तक तथा धनुष दिखाता है । रावण के चले जाने पर राम का मायावी मस्तक और धनुष दोनों अदृश्य हो जाते हैं ।^३ दूसरी घटना माया-सीता के वध से संबंधित है । इन्द्रजीत लका के पश्चिमी द्वार से निकलकर हनुमान तथा अन्य वानरों के सामने अपने रथ पर बैठी सीता का मिर काट लेता है । राम-सीता-वध का समाचार सुनकर विलाप करने लगते हैं किन्तु विभीषण राम को विश्वास दिलाता है कि रावण सीता का वध नहीं कर सकता । अवश्य ही यह कोई माया-सीता होगी ।^४

बालरामायण में रावण सेतु निर्माण के समय विमान द्वारा राम के शिविर के पास आकाश में पहुँचता है तथा राम के सम्मुख यन्त्रजानकी का वध करके उसका मस्तक समुद्रतट पर फेंककर लंका लौट जाता है ।^५ इस प्रकार ग्रन्थों में मायाशीर्षों के प्रसंग में अन्तर है ।

शूर्पणखा प्रकरण (शूर्पणखा के प्रसंग में समय का अन्तर) - वाल्मीकि-रामायण में शूर्पणखा राम के पास वन में जाकर यह इच्छा प्रकट करती है कि वह सीता तथा लक्ष्मण का भक्षण करके उनकी पत्नी बनना चाहती है । राम उसको भविष्यवाहित लक्ष्मण के पास भेज देते हैं । राम की अस्वीकृति जानकर शूर्पणखा सीता पर आक्रमण करने के लिये उद्यत होती है, किन्तु राम की आज्ञा से लक्ष्मण

१. वाल्मीकि रामायण १-७४-७५-७६ ।

२. बालरामायण ४.८१-८३ ।

३. वाल्मीकि रामायण ६-३१ ।

४. वही-६-८१ ।

५. बालरामायण ७-७१-७२ ।

उसके ज्ञान और नाक काट लेते हैं ।^१ बालरामायण में शूर्पणखा बनवास के पूर्व ही अयोध्या के राम तथा लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत और विरूपित की जाती है ।^२ वाल्मीकि-रामायण के अनुसार शूर्पणखा विरूपित हो जाने के बाद जन्मस्थान में अपने भाई के पास पहुँचकर विलाप करती है । बालरामायण में वह रावण के पास जाकर कहती है कि मैंने सीता को तुम्हारे योग्य समझकर उसका अपहरण करना चाहा, फलस्वरूप राम-लक्ष्मण ने यह दुर्गति कर दी ।

उक्त प्रसंग में रामायण तथा बालरामायण के काल में वर्षों का अन्तर है ।

कैकयी का दोष-निवारण : वाल्मीकि ने पहले तो कैकयी की दुष्टता का चित्रण किया है ।^३ फिर कैकयी के दोष-निवारण का भी प्रयत्न किया है । किन्तु बालरामायण ने प्रारम्भ से ही कैकयी को निर्दोष दिखाया है । जब दशरथ कैकयी के साथ इन्द्रलोक में गए हुए थे तभी दोनों की अनुपस्थिति में मायाभय, शूर्पणखा तथा एक परिवारिका क्रमशः दशरथ, कैकयी तथा मथरा का रूप धारण करके राम निर्वाहन की अभिसंधि में सफल होते हैं ।

दशरथ-मरण : रामायण में राम-वनगमन के पश्चात् सुमित्र से राम का संदेश सुनकर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं तदनन्तर शोकाकुल अवस्था में उनकी मृत्यु हो जाती है ।^४ बालरामायण में दशरथ सीताहरण के समाचार से अत्यन्त व्याकुल होकर गंगा यमुना के संगम में डूब कर प्राण त्याग देते हैं ।^५

नाटक में इन बड़े परिवर्तनों के अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे परिवर्तनों अथवा नावीन्य का विन्यास भी लक्षित होता है जैसे—

१—प्रायः अक में नरान्तक और अगद का तुलादूत प्रसंग तथा उसमें विजयी व्यक्ति को सीता तथा सका का स्वामी होने की कल्पना नहीं है ।

२—रामायण में कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् नरान्तक का वध वर्णित है ।^६ नाटक में यह मृत्यु कुम्भकर्ण-वध के पूर्व होती है ।^७ नाटक में कुम्भकर्ण और

-
१. बालरामायण ७-७१-७१ ।
 २. बालरामायण ४-७८ ७९ ।
 ३. वाल्मीकि रामायण २-४५ ।
 ४. वाल्मीकि रामायण २-५९:६० ।
 ५. बालरामायण ६-६२ ।
 ६. वाल्मीकि रामायण ६-६९
 ७. बालरामायण २-२१-२२

मेघनाद राम और लक्ष्मण के साथ प्रायः एक ही समय में युद्ध करते हैं।^१ जबकि महाकाव्य में इन दोनों के युद्ध के बीच अनेक दानवों के युद्ध का वर्णन है।^२ सेतुबन्ध के समय में सिंहनाद राम के पास जाकर उनका युद्ध के लिए आह्वान करता है।^३ रामायण में इसका उल्लेख नहीं है। रामायण में रावण की मृत्यु ब्रह्मास्त्र द्वारा वर्णित है।^४ बालरामायण में रावण के नव सिरो का उच्छेद मायाहर द्वारा तथा दसवें का उच्छेद ब्रह्मास्त्र द्वारा दिखाया गया है।^५ रामायण के अनुसार राम वन गमन के समय भरत नन्दिग्राम में रहे।^६ जबकि नाटक के अनुसार वे अयोध्या में ही रहे। राम के माघ चलने का उन्होंने प्राग्रह भी किया था।^७

परिधर्तन का उद्देश्य : राजशेखर ने कई प्रसंगों में अपनी मौलिकता का कारण प्रदर्शित की है। यथा—सीता-स्वयम्बर प्रसंग में रावण की विद्यमानता इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि सीता-हरण का मूल कारण केवल राम के प्रति रावण की विद्वेष-भावना ही नहीं है अपितु उसके मन में सीता के प्रति अनुराग है। इससे रावण के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। यही घटना बालरामायण का मुख्य विषय है। नाटककार का लक्ष्य रामविवाह का वर्णन नहीं है। राम-विवाह में वे धनुर्भंग प्रसंग को मुख्य स्थान देने हैं। अतः इस समय दशरथ के वहाँ होने या न होने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए उन्होंने विवाह के समय दशरथ की अनुपस्थिति बतलायी है। यही भावना विश्वामित्र की उपस्थिति के विषय में भी उचित प्रतीत होती है।

राजशेखर ने हाड़का, मारीच एव सुबाहु-वध के प्रसंगों में रामायण की कथा का अनुसरण न करके जो काल-भेद दिखाया है वह इसलिए कि अभिनेयता की दृष्टि में इन प्रसंगों का महत्व गौण था। हाँ, इस दिशा में नाटककार से भवश्य ही थोड़ा प्रमाद हो गया है।

राम के देवत्व की अपेक्षा उनके श्रेष्ठ मनुष्यत्व की प्रतीति के लिए नाटककार ने परन्तु राम-राम के सघर्ष का आयोजन किया और एक को विजयी घोषित किया। यज्ञ-जलकी का आयोजन नाटकीय आकर्षण की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है।

१. बालरामायण ८-२०
२. वाल्मीकि रामायण ६-६०-६८-८८-९२
३. बालरामायण ७-४०
४. वाल्मीकि रामायण ६-१०२-४-६-८
५. बालरामायण ९-४९-५०-५४-५५
६. वाल्मीकि रामायण २-७१
७. वही—बालरामायण ६-३३-३४

राजशेखर ने नाटक के आरम्भ में ही रामायणीय कथा में विशिष्टता प्रदर्शित करने का संकल्प किया। उस संकल्प की पूर्णता इन परिवर्तित दृश्यों में दृष्टिगत होती है।

पूर्ववर्ती साहित्यकारों का प्रभाव - यह नितान्त सत्य है कि साहित्यकार अपनी रचना में मौलिकता की सृष्टि करता है तथापि पूर्ववर्ती साहित्य एवं समकालीन वातवारण के प्रभाव से वह अछूता नहीं रह सकता। नाटककार दृश्य काव्य का सृजन करता है। उसका काव्य दर्शकों की विवेकशीलता से ही मडित या खण्डित होता है। कतिपय साहित्यकार परीक्षकों (दर्शकों) के समक्ष स्वयं ही वस्तुस्थिति का उद्बोधन कर देते हैं। राजशेखर का भी इसी तरह का प्रयास निम्न पंक्तियों में प्रतिफलित हो रहा है।

ब्रह्मभ्य. शिवमस्तु वस्तु वितत किञ्चिद् वयं ब्रूमहे,
हे सन्त शृणुतावपन्न विधृतो युष्मानु सेवाञ्जलि ।
सत्यं किं विनयोक्तिभिर्मम गिरा यद्यस्ति सूक्तामृत
माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्या पर दैन्यभू ।^१

उनकी "बभूव बाल्मीकमव" पुरा कवि स्थित. पुनर्यो भवभूति-रेखया"— पंक्तियाँ पूर्ववर्ती साहित्यकारों के प्रभावातिशय की द्योतक हैं। इन दो साहित्यकारों के अतिरिक्त अपनी प्रतिभा से राजशेखर को प्रभावित करने वालों में कवि कुल गुरु कालिदास विशेष स्मरणीय हैं। भवभूति की रामकाव्य से सबन्धित कृति उत्तर-रामचरित है। इसमें राम के जीवन का उत्तरार्द्ध वर्णित है। यद्यपि बालरामायण में राम के जीवन का पूर्व पक्ष चित्रित है, तथापि जहाँ कहीं भी राजशेखर को उत्कृष्ट भावाभिव्यक्ति का अवसर मिला उन्होंने उसे शीघ्र ही ग्रहण कर लिया। ऐसे साम्यस्थल अनेक हैं। उदाहरणार्थ उत्तररामचरित में राम के पुत्र सब की राम के प्रति भर्त्सना-पूर्ण उक्ति—

१- वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्णयते ।
मुन्दररत्नीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते ॥
यानि क्षीण्यन्तुतोमुखान्यपि पशन्त्यासन् धरायोधने ।
यदा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यमिशो जग ॥^२

और बालरामायण में रावण के पुत्र सिंहनाद की राम के प्रति व्यङ्ग्योक्ति—

१. बालरामायण १-१०
२. उत्तररामचरित ५ ३५

स्त्रीमात्र ननु ताडका भृगुभवो रामश्च विप्र. शुचि
मारीचो भृग एष भीतिभवन वाती पुनर्वानर ।
भा काकुत्स्थ । विकल्पसे कथय किं वीरो जित कस्त्वया
दोर्दंपंस्तु तथापि ते यदि तत. कोदण्डमारोपय ।^१

इन दोनों में उल्लेखनीय भाव-सादृश्य है ।

राजशेखर राम के विषय में कहते हैं—

त्वया तु क्षीरकण्ठेन वनवासो निपेव्यते ।^२

भवभूति ने भी इसी प्रकार के उद्गार प्रकट किये थे—

धृत बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यक-व्रतम् ।^३

बालरामायण में रावण के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग सुनकर सिंहनाद करता है :

रे रे क्षत्रिय तातमभिशिषसि, तदेव शितमुखं शितीमुखंरवकीयंसे^४
उत्तररामचरित में राम की निन्दा सुनकर चन्द्रकेतु क्रोधसतप्त होकर कहता है
मा तातापवादिन् । भिन्नमर्याद । प्रति हि नाम प्रगल्भसे ।^५

भवभूति सत्सगति की महिमा का गान करते हैं—

सता सद्भि सङ्ग कथमपि हि पुण्येन भवति ।^६

इसी भाव की अभिव्यक्ति राजशेखर ने निम्न शब्दों में की है—

समप्रेमरस समरूपधीवन समविलासविशिष्टम् ।

समसुखदुःख च जन समपुण्यजनो लभते ।^७

ऋषियों के प्रति भवभूति की उक्ति—

नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि^८

राजशेखर के शब्दों को प्रभावित करती है । वे कहते हैं

१. बालरामायण ७.८८

२. उत्तररामचरित १-२२

३. वही-१-२५

४. बालरामायण ७.८०.८१

५. उत्तररामचरित ६.३४.३५

६. उत्तररामचरित २-१

७. बालरामायण २-१२

८. उत्तररामचरित. १-२५

यदाचंममवृत्तयः किमपर नीवारमुष्टिम्पचाः ।^१

राम के शोक से पत्थर भी भ्रूसू बहाते हैं—

भवभूति—अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।^२

राजशेखर-ग्रावग्रन्थीनां परं यदि न दलति हृदयम् ।^३

भवभूति के इसी भाव का ग्रहण राजशेखर की उपरि पंक्तियों में दिखायी देता है—

राजशेखर ने भवभूति के समान कालिदास के ग्रन्थों से भी भाव ग्रहण किया है। इस दृष्टि से रघुवश, अभिज्ञानशाकुन्तल, एव विक्रमोर्वशीय उल्लेखनीय है। सीता-स्वयंवर की कल्पना का आधार रघुवश-वर्णित इन्दुमती स्वयंवर है। बिरही रावण के उन्मत्त प्रलाप क्षण भर के लिए विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा एव मालती-माधव के माधव का स्मरण दिलाते हैं जो उर्वशी एव मालती के विरह में पशु पक्षियों से प्रिया का पता पूछने लगते हैं।

सीता की विदाई के प्रसंग में जनक उसे गार्हस्थ्य धर्म का उपदेश देते हैं। शकुन्तला को बिदा करते समय यह कार्य कण्व मुनि ने किया था। दोनों के उपदेशों में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है।

कालिदास—शुभ्रूपस्व गुरुन् कुरु प्रियसखी-वृति सपत्नीजने
भर्तुर्विक्रमकृतापि रोपणतया मा स्म प्रतीप गम ।
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्दयेव गृहिणीपदं युवतयो वामा. कुलस्याधयः ॥^४

राजशेखर—अभ्युत्थानमुपागतं गृहपती तद्भाषणे नम्रता
तत्पादापितदृष्टि रासनविधिलस्स्योपचर्या स्वयम् ।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यं पुत्रि । निवेदिता कुलवधूमिद्वान्तधर्मा प्रमी ॥
निर्व्याजा दयिते, ननान्दुषु नता, श्वश्रुषु भक्ता भव ।
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि ॥
पत्न्युमित्तजने सनमं वचना, विभ्रा च तद्वेषिषु
स्त्रीणा संवनन नतधु । तदिदं श्रेष्ठोपध भर्तुषु ॥^५

१. बालरामायण १०-९२

२. उत्तररामचरित १-२८

३. अभिज्ञान शाकुन्तल ४.१८

४. बालरामायण ४:४३-४४

दोनों का ही मूलस्रोत वात्स्यायन का काम सूत्र है। राजशेखर के बालरामायण पर महावीरचरित का भी प्रभाव लक्षित होता है। दोनों के कथानक में पर्याप्त साम्य है। भवभूति ने सीता स्वयंवर से राज्याभिषेक तक की घटनाओं को नाट्यरूप में स्वीकृत किया है। राजशेखर ने इन्हीं प्रसंगों को अपने नाटक में मान्यता दी है। इस नाटक में कथानक के साम्य के अतिरिक्त भाव-साम्य एवं शब्द-साम्य के अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जिनका सकलन एक लघुपुस्तिका का रूप ग्रहण कर सकता है। नीचे निदर्शनमात्र प्रस्तुत किया जा रहा है

बालरामायणम्	महावीरचरितम्
१-वीराद्भुतप्रायरमे प्रघाने १-२	१-वीराद्भुतप्रियतया १-६
२-बालरामायणम् नाटयितव्यम् १-५।६	२-महावीरचरितं प्रयोक्तव्यम् १-३।४
३-उक्त तेन महामन्त्रिपुत्रेण १-८।८३	३-उक्ता च तेन योत्रियपुत्रेण १-६।७
४-तदामुप्यायणस्य १-१३।१४	४-तदामुप्यायणस्य १-४।५
५-अथास्य शिष्य किल याज्ञवल्क्य स्तस्यापि राजा जनक स योषी १-२१	५-याज्ञवल्क्यो मुनिर्वस्मं ब्रह्मपारायण जगौ । १-१४
६-अतमात्यायतमिद्वेधिद्र मन्त्रित्वम् । १-२४।२५	६-साचिव्यनाम महते सन्तापाय ६-२।३
७-स्वेच्छया कुरतेस्वामी यत्किंचन यतस्तत् । तत्तत् प्रतिचिकीर्षन्तो दुःख जीवन्ति मन्त्रिण । १।२५	७-यत्किंचित्कुमंडा स्वैरमाद्रियन्ते निरंगलम् तत्र तत्र प्रतिकारशिवन्त्यो साधु विधावपि । ६।३
८-यस्य भगवतस्त्रैशङ्ख शौन शेष रभास्तम्भन १।१०।११	८-मेनत्राकामुक्तस्य, त्रिशाङ्ख याज्ञिन शात्रियश्राहणस्य— १-२५।२६
९-निषेद्धा विन्ध्यस्य वंशानस वृषा १-२८	९-तदस्मिन्— —वताम् १-११ तथा—अय विषय ७-१४
१०-नवनपुन गवत्र सर्व गुणा १।३६	१०-धम्मो न वसन्त्येकत्र सर्वे गुणा १।३३
११-स्फुजं द्रव्याहृत १।४१	११-स्फुजं द्रव्यसहस्र १-५३
१२-वैलासमुद्भव १।४४	१२-वैलासोद्धारनाद २-१६
तथा—वैलासोद्धारधीरम् १।४७	
एक वैलासमद्रि करतलमरुरोत् २।१५	
१३-अस्मद्दोदण्डचण्डाञ्जन १।४६	१३-दोदण्डाञ्जनम् १।५४
१४-मुञ्चि स्थिरा भव १।४८	१४-यावत्कणीन्द्रशिरसि ७।२६
१५-बहति भुवनभेगीशेष कणापलव- स्थिता ७-४०	१५-यावत्कणीन्द्रशिरसि ७।२६

बालरामायणम्	महावीरचरितम्
१६-माहेश्वर १-५११५२	१६-माहेश्वर ११११०
१७-तेनाभ्युत्सहते मर्मप युगपच्चापाय शापाय च ११५२	१७-प्राक्सत्कारवशेन चापमितरः पाणिर्ममान्विष्यति ३१४३
१८-हस्तालम्बितमधसूत्रलयम् ११५३	१८-पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रबलयम् १११८
१९-ब्रह्मकतानहृदया ११५६	१९-ब्रह्मकतान मनसो ३१११
२०-जनकविरम कोपात् ११५७	२०-विरम नरपते कथम् ३१३०
(२)	
१-इत्यपरमप्यपरिमेयं चित्र चरितजात माचक्षते २-३१४	१-इत्यपरिमेयमाश्चर्यंजातमाश्च नविद भाचक्षते १-१०१११
२-त्रिःसप्तावधि वाधिता एकविंशतिभिद वारान्— एष त्रिः सप्तहृत्व ४१३९	२-त्रिःसप्तवारानविक्रम त्रि सप्तावधि— एकविंशत्यवधि ३११३ २१४८
३-चिच्छिद्ये श्रीश्वमन्यो २११५	३-श्रीश्वस्य मैक्षत २११७
४-तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिवधारा २११५ यदि चनाश्वले लोचने किमुत्पल कदम्बकम् ६१९	४-मुख यदि किमिन्दुना । सा दृष्टिर्यदि हारितं कुवलयैः २११७
५-गौलस्त्य प्रणयेन याचत इति २१२०	५-गौलस्त्यो विनयेन याचत इति ११५९
६-काश्यपाय ऋतुविधिगुरवे दक्षिणीकृत्य पृथ्वी— २१२३ दत्त्वा पृथ्वी जलधिरज्ञानामयिने ग्राहणाय ४१४१	६-काश्यपाय मुनये दत्त्वाश्वमेधे महीम् २११९
भूतधाव्या ऋतुपु गुणवते काश्यपाय प्रदाता ४१३९	
७-कन्दपंचण्डूलभुजदण्डमडलम् २१२४१२५	७-दपंचण्डूलदोष्ण २१२७
८-कार्तिकेयो विजेय ९-सक्रन्दननन्दन २१४८	८-कार्तिकेयोवजेयः २११९ ९-सक्रन्दननन्दन ५१३९
१०-लोकोत्तर चरितमर्पयति २१५१	१०-लोकोत्तरकर्माणि लोकोत्तराणि रामस्य कर्माणि ५१२३
११-त्वा-स्थित. २१४८	११-कैलासे तुलिते ५१३७
१२-जे कैलासे कलिन्दे— मानुषेण रावणपराजय २-३८१३९	१२-भृगुप्रसवात्पराजय ३१३७३८
१३-विद्यत्पूजजरित दृष्टि ११४४१४५	१३-विद्यत्पूजपिञ्जर—नयने २१५८१५९
१४-कालानिद्रातिवि २१६२	१४-कालद्रानलत्व २१२५
१५-पुत्रभाण्डम् २१६३	१५-पुत्रभाण्डम् २१४४, २१२, २१६०-६१

बालरामायणम्	महावीरचरितम्
(३)	
१-भगवान् विश्वस्य मित विश्वामित्र. ३।२।३	१-विश्वामित्रात्प्राप्य विश्वस्य मिलात् १।५०
२-स्त्रीवध विचिकित्तामुद्रः ३।३।४ स्त्रीति किं विचिकित्मसे	२-प्रमायाय स्त्रीणेन विचिकित्मति ३।३७
३-साक सेने जुम्भकास्त्रं समन्त्रे ३।७	३-सरहस्य जुम्भक प्रयोगसहार १।४७
४-नमयति धनुरेश यस्तदारोपणेन ३।२७	४-आरोपणेन पणप्रतिकार्यमार्य लैयम्भकस्य धनुषे १।२७
५-ओङ्कारः ३।७९	५-गप तावदोङ्कार १।४०।४१
(४)	
१-दोदंष्ट्राद्वितयाश्चितोन्नतधनु ४।२०	१-दोदंष्ट्राश्चितचन्द्रशेखरधनु १।५४
२-इष्टापूर्तंपविलमाधमपद ४।३४	२-इष्टापूर्तं विधे ४।३४
३-महावीरचरितावलोकनपरायणे चिते नकिंचित्प्रतिभाति ४।४१।४२	३-वस्तुकिंचित्प्रतिभाति ५।३४।३५ महावीरे सौकण्डमिव मानसम् ५।३६
४-मञ्जातियेयो भव । भार्गवोऽ तिधि भवति- ४।५१।५२	४-स्व न पूज्यतनोऽप्रतिधियर्दि भवे. मञ्जातियेया वय २।५०
५-द्वाविशोऽपि ममप ४।५३	५-पुनर्द्वाविशोऽपि ३।४१
६-तूनक्षत्रियकण्ठमण्डलगलत्की ४।५८ खानकुल्याभूतः	६-कुक्ष क्षत्रियकण्ठकदरमरत्की खाननिर्वापित ३।४८
७-भो विदेहेश्वरशुद्धान्त चारिण ४।५७	७-भो विदेहनगरीगता राजकुल चारिण २।१५।१६
८-विधायधरणीवन्धमराममपलक्षमणम् ४।८३	८-अरामा जानि सीरछवमदशरणी कृत्यजगतीम् ३।२४
९-किं वीरस्य विकल्पनया ४।८४	९-तत्र वा विकल्पना २।४८।४९
(५)	
१-माल्यवान् उन्मुच्यवाचयति ५।३।४ 'स्वस्ति'	१-माल्यवान् गृहीत्वा वाचयति 'स्वस्ति' २।९।१०
२-भुट्यद्दोदंष्ट ५।७९	२-उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तुण्डप्रोतशिर ३।३२ ५।१९
(६)	
१-वृद्धो दशरथ मोष्यमुपास्ते गृहमेधिताम् । त्वया तु क्षीर कण्ठेन वनवासो निपेय्यते ६।३०	१-पुत्रसन्तान्त लक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेदेवाकु भिर्घृतम् त्वया तत्क्षीरकण्ठेन प्राप्तमारण्यक वनम् ४।५१
२-एषोऽहम् ६।५६	२-एषोऽस्मि ५।१५
(७)	
१-ज्यावद्-कार्तवीर्याकुं ७।५	१-हैहयमति. ४।१९
२-रुद्धितो गोप्यदवन् समुद्रः ७।१८।१९	२-गोप्यदवदिलह्य ६।१७

बालरामायणम्		महावीरचरितम्	
३-दूम्रो विजृम्भण०	७।२२	३-ज्याजिह्वया	३।२९
४-वारां मध्याद्	७।३४	४-ततश्च—उपविष्ट	६।१२।१३
(८)			
१-तंका दुर्गो जमधिपरिष्ठा	८।५	१-दुर्गो य पितृकूट	६।७
२-सविते क्षिताभिरन्तीर्यतेऽनावभिर्वा निमग्जयते ।	८।३१।३२	२-अम्बुनि मम्जन्यनावूनि प्रावाण ज्वन्ते	१।३१।४०
(९)			
१-तदित्यमभिदधानमपवित्रं वक्रम्	९।४६।४७	१-पत्किञ्चद्वादिनो मुख सस्कुर्वात	६।२१।२२
२-वत्पीतस्त्यगृहोपिता	१०।८	२-दशकन्धरगृहनिवास	७।३।४
३-पतिव्रतामय ज्योति.	१०।८।९	३-रतिव्रतामयज्योति पतिव्रतामय ज्योति	७।३।४ ६-६
४-निसर्गत पवित्रस्य किमन्यत्पावनतव	४।२७	४-गुदाया क इवात्र शोधनविधिः	१०।१३
५-मुञ्जं कवाकशि तलातलि च प्रवृत्तम्	१०।१९	५-मुष्टामुष्टि कवाकशि	६।३१
६-एतस्मिन्वरि देवदारुविपिनं	१०।३१	६-एय ते सुरतिन्धु.	७।२७
७-एह्येहि बल रघुनन्दन रामभद्र चुम्बामि तेऽद्यवदनम्	१०।६५	७-एह्येहि बल रघुनन्दन रामभद्र चुम्बामि तेऽद्यवदनम्	१।६५
८-श्रीश्रपयादतारिणि	१०।७८	८-यत्रामोक्षपावनारिणो	२।४५
९-धरत-शत्रुघ्नाभ्यातिष्ठति	१०।९५।९६	९-भ्रान्तप्रवृत्तिर्नाहितोऽभ्येति भरत ।	७।३०

अभिमान शाकुन्तल, उत्तररामचरित एवं महावीरचरित आदि दृश्य काव्यो से अनेक भाव ग्रहण करने पर भी बालरामायण में कवि को मौलिक प्रतिभा अप्रतिहत ही प्रतीत होती है। बालरामायण के पात्र प्रादमं होते हुए भी मानवीय धरातल पर चलते हैं। वे अन मानस के समीप प्रतीत होते हैं। इसीलिए ६७ पात्रों से युक्त यह नाटक पात्रों का जगल प्रतीत नहीं होता।

बालरामायण का कथावस्तु

सविधान-शिल्प शिल्प की दृष्टि से इस नाटक में एक रघुनना शिवाई देती है और वह है—नाटक का अत्यधिक विस्तार। इसमें वस्तु-निर्माण में शैथिल्य आ गया है। अनावश्यक विस्तार के कारण नाटक में गति का अभाव लक्षित होता है। प्रायः प्रत्येक अंक में ऐसे गति-प्रवाह-हीन स्थल पाए जाते

हैं। किन्तु दूसरा दृष्टिकोण इस न्यूनता को गुण की सजा भी प्रदान कर सकता है। नाटक ध्वन्यात्म्य भी है। उसमें प्रयोजनात्मक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। इसमें रंगमंच की प्रेषित गजावट की कमी की पूर्ति तो होती ही है साहित्यकार को साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन का सुन्दर अवसर भी मिलता है। अतः हमारे काव्य नायक ने पद्मशतु-चक्रवाल, सायंकान्त, मध्याह्न, गूर्वाँदय एव सूर्वास्त का सरस वर्णन साहित्यिक सृजनात्मकता से अनुप्रेरित होकर किया है।

राजशेखर की वस्तुविव्याप्त-वृत्ता उनकी निजी विशेषता में युक्त है। प्रसंबद्ध प्रतीत होने वाली घटनायें आधिकारिक कथा की परिपोषक हैं। प्रथम अंक में शुन शेष एवं तापस का संवाद, द्वितीय अंक में भूमिरिटि एव नारद का कपोर-कथन, तृतीय अंक में गृध्रमिथुन-वार्तालाप, चतुर्थ में गुरु-शिष्य (भवभूति) वार्ता, नवम में यम का मृत्युलेखा-वर्णन, एवं दशम में अलका एव लका की समवेदनाभि-व्यक्ति मूलकथा की परिपोषक प्रमाणित होती है।

कथा नाटक में दो प्रकार की कथा होती है। आधिकारिक एव प्रासंगिक। भारतरामायण में आधिकारिक कथा रावणवध से संबद्ध है। प्रासंगिक अथवा गौण रूप में तीन छोटी बड़ी सहायक उपकथायें निबद्ध हुई हैं। इसमें शुन शेष राक्षस-संवाद गृध्रमिथुन एव गुरु-शिष्य संवाद तथा सीतास्वयंवर संवाद को प्रकटीकृत जा सकता है। ये कथायें आधिकारिक कथावस्तु के विकास में सहायक हुई हैं। अतः जिस अंक में ये प्रदर्शित की गयी हैं उन्हीं अंक के पश्चात् ये सदा के लिए तिरोहित कर दी गयी हैं। सुशील और विशेषण का कथा-प्रमथ "पताका" कहा जा सकता है। क्योंकि कथायें प्रधान वृत्त के साथ दूर तक (मेतुबन्ध से रामराज्याभिषेक तक) समानान्तररूप में चल रही हैं।

प्रासंगिक वृत्तों में शुन शेष और तापस संवाद को नाटक से हटा दिया जाय तो दर्शकों को रावण की तीव्र उत्कंठा और सीतास्वयंवर में सम्मिलित होने की उसकी प्रभिलाषा का पता नहीं चल सकता। यह कथा खलनायक की पृष्ठभूमि को ठीक तरह से समझने के लिए सहायक है। दूसरे अंक में भूमिरिटि और नारद का वार्तालाप राम रावण के भावी युद्ध के कारण पर प्रकाश डालना है अन्यथा दोनों के युद्ध का रहस्य प्रकट नहीं हो पाता। गृध्रमिथुन, सुवेग एव चित्रशिखण्ड के वृत्त प्रासंगिक होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसमें खलनायक के मानसिक संघर्ष की पृष्ठभूमि का पता चलता है। इससे यह निश्चय होता है कि इस नाटक की सम्पूर्ण आसंगिक कथा में आधिकारिक वस्तु का निर्देश युक्त है।

इस नाटक के प्रथम अंक में जनकमंदिर में निरस्तुत रावण संकल्प करना है—
 मसरम्भम्—शृणुत भो! शृणुत! निशाचरपते प्रतिज्ञाम्
 कुर्वन् मौर्वीनिवेश-त्रय-नमदटननि-स्पष्ट-टडकारटडक,
 शम्भो. कोदण्डदण्डं वधिरितभुवन मूर्ध्व स्वस्तपोऽपि ।
 यस्तामेना वरीता रमयति तदसूक् चन्द्रहासो ममासि
 कण्ठास्थि-ग्रन्थिशुक्नीकरण-भवरणत्कार-वाचालघार. ॥

राक्षसराज को इस प्रतिज्ञा में नाटक का बीज वर्तमान है। "यस्तामेना वरीता रमयति तदसूक् चन्द्रहासो ममासि."

जो सीता का वरण करेगा उसे चन्द्रहास (तनवार) का भी वरण करना होगा। इस कथन में ही नाटक के भावी मघर्ष एवं विपत्ति के संकेत दक्षित हैं।

द्वितीय अंक में रावण-परशुराम का वाक्पुङ्गव मूल कथा-प्रवाह को कहीं विच्छिन्न न करदे इसलिए सीतास्वयंवर नामक गर्भोक्त का आयोजन और उसमें रावण की कोप्रपूर्ण उक्ति कहलाई गई है। इस दृश्य प्रधान कथा का पूर्ण विच्छेद नहीं होने पाता और कथावक्र पुनः सुगति धारण कर लेता है। इसे नाटकीय भाषा में बिन्दु कहा जा सकता है। नाटक का मुख्य लक्ष्य खलनायक की मृत्यु द्वारा स्थायी शान्ति है। सीताहरण के कारण नायक और प्रतिनायक का मानसिक मघर्ष बढ़ जाता है। इस मघर्ष की परिणति राम रावण युद्ध में होती है। मघर्ष का मूल रावण वध तथा राम-राज्याभिषेक के द्वारा होता है। यही उसका 'कार्य' समझना चाहिए।

इस नाटक के मातृवें अंक में वैतालिक राम का यमोगान करते हैं। उसी समय प्रतीहार आकर उन्हें ऐसा करने से वर्जित करना हुमा कहता है—“कथम् ननु रामदेवेन निपटमात्मोपवर्णनम् घदशरषस्वर्गारोहणधुने गदशकण्ठवधम्” इस कथन से कार्य की “प्रारम्भ” अवस्था होती है। इसी संदर्भ में “यत्न” की अवस्था भी प्रारम्भ हो जाता है। फल-प्राप्ति के लिए राम-रावण युद्ध का आयोजन तथा लंका में पहुँचने के लिए मेनुवन्ध का वर्णन कथा को इसी दिशा की ओर प्रवृत्त करता है क्योंकि यत्न में फलप्राप्ति के लिए मत्वर उद्योग लक्षित होता है। यत्न की अवस्था भी त्रयश्र आठवें अंक तक चलती है। “प्राप्त्यागा” का प्रारम्भ भी इसी बीच होता है। सेतुनिर्माण के समय सीता के बटे मन्तरु को देखकर राम शका-कुशकासो मे शोशकाम हो जाने हैं। अपने प्रयासों पर विप्र होने हुए उनका यह कहना है कि “धिक् निष्कर्षं हनुमन् पवन तदप्यौ, धिक् निष्कर्षं मममावन-मेनुवन्ध.” प्राप्त्यागा की चरण सीमा है।

इसी अक्षर में कटे हुए मस्तक के कृत्रिम होने का पता चलने पर राम-पक्ष में जो उल्लास उत्पन्न होता है—वह “नियताप्ति” का प्रारम्भ है। द्विगुणित उग्माह से मेना शत्रुपक्ष का विनाश करती हुई आगे बढ़ती है जहाँ राम दशरूढ का मस्तक काट देते हैं वहाँ ‘नियताप्ति’ ‘फलागम’ के निकट आ जाती है। सीता की प्राप्ति, राम-निर्वासन अवधि की समाप्ति तथा राग्याभिषेक के माय ‘फलागम’ हो जाता है।

रावण की सीता के प्रति आभरण शक्तुत्व की भावना तथा राम के द्वारा रावण की मृत्यु तक अपने यशोगान पर पात्रन्दी “मुख” मन्धि को सूचित करती है। रावण पक्ष में सीताहरण एवं रामपक्ष में सीता-प्राप्ति के यत्न के स्वप्न में निर्वर्ण तक का कथा भाग ‘प्रतिमुख’ मन्धि का निर्देश करता है। चर्म-सन्धि का आरम्भ एवं निर्वाह राम-रावण के मार्गिक मर्षण द्वारा होता है। रावण द्वारा फेंके गए माया सीता के अंटे मिर के कारण राम के मन में जो शोक उत्पन्न हो गया था वह सही तथ्य को जानकर प्रतिशोध की उत्कट भावना में बदल जाता है। इनवरत मुद्ध और अतत, रावण बध ‘अवमज्ञ’ मन्धि को प्रकट करता है। सीता-प्राप्ति तथा रामाभिषेक में ‘उपसंहृति’ सन्धि की व्याप्ति लक्षित होती है।

विष्कम्भक भूत और भावी अर्थों की सूचना देने वाला विष्कम्भक होता है। इसका विस्तार अक्षर की अपेक्षा कम होता है। इसके दो प्रकार हैं प्रथम वह है जिसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं, जिसमें मध्यम प्रकृति के पात्र वृत्तवर्तिष्यमाण कथाक्ष की सूचना देते हैं। मिथ्य विष्कम्भक में नीचे और मध्यम प्रकृति के पात्रों द्वारा भूत और भावी धरजक घटनायें सूचित की जा सकती हैं।

बालरामायण में शुद्ध तथा मिथ्य दोनों प्रकार के विष्कम्भकों की योजना की गई है। प्रथम अक्षर में शुन शेष तथा तापस के बालांलाप में सीतास्वप्नर की तथा विष्कामित्र के राम एवं लक्ष्मण को लाने के लिए जाने की घटना का संकेत मिलता है। दोनों पात्र संस्वृत्तभाषी हैं। अतः शुद्ध विष्कम्भक के आयोजन में यह कार्य सफल होता है। द्वितीय अक्षर में राम (परशुराम) तथा रावण के युद्ध की सूचना नारद एवं मृडिगरिडि के संवाद में दी गयी है। दोनों मस्तक का व्यवहार करते हैं। अतः यहाँ भी शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग उपलब्ध है। तृतीय अक्षर में मिथ्य विष्कम्भक प्रस्तुत है क्योंकि सुयोग साहायभाषी है। चतुर्थ अक्षर में उपाध्याय एवं शिष्य के संवाद में बट्ट प्राकृत भाषा के माध्यम में व्यवहार करना है। अतः पुनः मिथ्य विष्कम्भक की आवृत्ति लक्षित होती है। प्रथम अक्षर में शुद्ध विष्कम्भक का आविष्करण है। अतः मायामय और मान्यवान् का वयोपकथन मस्तक में है। षष्ठ अक्षर में विष्कम्भक शब्द शुद्ध विष्कम्भक का द्योतक है। किन्तु इसमें शूर्पणखा स्त्रीपाव होने के कारण

प्राकृत वा अवनम्वन करती है। सातवें धार म भावी घटना की सूचना प्रती-
हारी एवं कर्पूरचण्ड के यवनप्य से दी जाती है। यहाँ शूद्र विष्णुम्भक वा अयोजन
है। साठवें धार में मुमुग्ग एवं दुमुग्ग में दुमुग्ग की भाषा प्राकृत है। धार- यहाँ मिथ-
विष्णुम्भक प्रयुक्त है। नवें धार की घटनाओं को जोड़ने वा कथं वितरगुप्त ने
शूद्र विष्णुम्भक द्वारा किया है। दशमधर के कथोपरपदन में शूद्र वा प्रयोग है।

प्रत्येक धार में विष्णुम्भक वा विधान सराहनीय प्रतीत नहीं होता क्योंकि
जिम वस्तु वा ज्ञान अधुनू द्वारा मध्य है उसे ध्रुवण द्वारा सूचना मात्र के रूप में
पाकर दर्शक मनुष्ट नहीं हो सकते।

कथानक के अभिनय प्रसंग में स्वगत, आकाश-भाषण एवं नेपथ्य वा भी महत्व-
पूर्ण स्थान है। राजशेखर के स्वगत भाषण पात्र की अवस्था को प्रकट करते हैं।
सम्पूर्ण नाटक में पचम स्थान है जहाँ स्वगतोक्ति का प्रयोग किया गया है। राज-
शेखर के शिल्प विधान की एक विशेषता नेपथ्य-योजना में है। सम्पूर्ण नाटक में
सैतीस^१ बार नेपथ्य का प्रयोग लक्षित होता है जो दर्शकों को निपेध्य दृश्यों से अवगत
कराना है। सम्पूर्ण नाटक का आचरपण उसमें दक्षित गर्भक के प्रयोग में है। बाल-
रामायण के तृतीय धार में शीतास्वयंवर नामक नाटक के विधान को परवर्ती प्राचार्यों
ने सौन्दर्यनाथक गुण माना है। उपर्युक्त विस्लेषण में प्रतीत होता है कि राजशेखर
के रूपकों की कथावस्तु में प्रकृति, अवस्था, सन्धि वा सुयोजन एवं विष्णुम्भक,
स्वगत, आकाश-भाषण एवं नेपथ्य का प्रयोग कुशलता-पूर्वक हुआ है। शास्त्रीय
मानदण्ड पर सही उतरने वाले उक्त रूपक नाटककार के समर्थ शिल्प-विधान का
परिचायक है।

बालभारत

राजशेखर के युग में एक विशेष राजनीतिक सञ्चालि का आविर्भाव हुआ था।
इसकी प्रतिच्छाया उनकी "बालभारत" नामक द्वयस्त्रीय नाट्यकृति में दृष्टिगत होती
है। इस सम्पूर्ण नाटक का कथानक दो राज-परिवारों—कौरव एवं पाण्डवों—

१. बालरामायण पृ० १३, १४, १५, २०, २३, २४, ११२, २१, ८३, २२, ३४,
३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ६२, ८०, १०३, ६४, ६५, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१,
७२, ७३, ७३, ७४, ७५, ७५, ७६, ७७, ८३, १२१, १३६, १४४, १४५,
२४४, २४८, १३२, १३९, १४४, २२०, २२१।

२. बालरामायण पृ० १९, २४, २७, २८, ५२, ५८, ५२, ५२, २८, ५१, ८५,
८८, १०५, १२५, १५१, १७८, १७८, १७९, १८०, १८०, १८२, १९२,
१९९, २२१, २२५, २२६, २२७, २२८, २३३, २३४, २५२, २५३, २७५,
२७९, २८३, २८४, २८५, २८६।

के कलह को लेकर चलता है। महाभारत पर आधारित होने पर भी कथानक नाटककार के समसामयिक युग की समस्या में मग्न प्रतीत होता है। स्थिति यह थी कि महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्र—महीपाल और भोज द्वितीय—में राज्यारोहण के लिए मर्घ्य छिड़ गया। बालभारत की प्रस्तावना में इस गृह-बलह का अग्रत्यक्ष संकेत है। वस्तुतः कौरव-पाण्डवों के व्याज से महेन्द्र-पाल के दोनों पुत्रों के बीच उत्पन्न द्वन्द्व की ओर ही बालभारत में संकेत किया गया है। फिर भी नाटक की अपूर्णता के कारण राजशेखर अपने प्रभिप्राय का पूरी तरह निर्वाह न कर पाये।

कथानक इस नाटक के राधावेध नामक प्रथम अंक का प्रारम्भ नान्दी से होता है, जिसमें शिव की स्तुति है। नल्पश्चात् सूत्रधार 'बालभारत' अथवा 'प्रचण्डपाण्डव' के विजय का परिचय देता है। यही नाटककार का परिचय भी प्राप्त होता है। प्रस्तावना के अन्तर्गत व्यास एवं वाल्मीकि के संवाद से नाटक की पूर्वकथा ज्ञात होती है। प्रमुख दृश्य में युधिष्ठिर भीमसेन आदि ब्राह्मण का वेश धारण कर स्वयंवर के मण्डप में उचित स्थान ग्रहण करते हैं। स्वयंवर मण्डप महर्षियों, ब्राह्मणों एवं राजाओं से भरा है। द्रौपदी स्वयंवरोचित सज्जा करके अपनी सखी के साथ मभामण्डप में जाती है। उसके असामान्य सौन्दर्य से पाँचों पाण्डव अत्यन्त प्रभावित हो जाते हैं। सामान्य औपचारिकता के पश्चात् बन्दी घोषित करता है कि जो मत्स्यवेध करेगा, द्रौपदी उसी का वरण करेगी। दुःशामन, शकुनि, जयद्रथ, दुर्षोणन, वनभद्र, कामपाल, वामुदेव, मात्यकि, शिशुपाल और जरामन्ध प्रमत्त करने पर भी जब मत्स्यवेध में असमर्थ सिद्ध होने हैं तब एकाएक भीषण कोनाहल से वातावरण गुंज उठता है। ब्राह्मणों की मण्डली से एक युवक वार्मुक पर नजर गड़ाये हुए आगे बढ़ता दिखाई देता है। वह चारों ओर गर्व से दृष्टिपान करता है और एक ही प्रयास में मत्स्यवेध करके सबको चकित कर देता है। द्रौपदी अत्यधिक प्रसन्न होती है किन्तु लक्ष्यवेधी के कुल और शील की जानकारी न होने के कारण मत्स्यवेध करने के पश्चात् भी द्रौपदी के वरण के सन्दर्भ में बन्दी चिन्तित हो उठता है। उपस्थित राजगण भी ईर्ष्या के कारण अर्जुन के मत्स्यवेध की सफलता पर शका प्रकट करते हैं। उसे स्वयंवर के लिए अपात्र घोषित

१ बालभारत-१-८।९ "भवदनुचरा पञ्च भ्रातरो वयम् पञ्चभिर्नाम समर्थान्तदभिनये । किं पुनरस्माकं पितृव्यपुत्रा जनं गन्ति भरतपुत्रा । ते च तदभिनैतुमिच्छन्ति न च ते शक्नुवन्ति । तन्निमित्तं च मर्दन्माभि सह वैरं वर्तते ।"

करते हैं; किन्तु धनुंन तर्कद्वारों की घबरेलता करने हुए, द्रोपदी को गैर,
राजकुमारों को चेतावनी देने हुए निरतन जाते हैं।

द्वितीय अंक में द्यूतप्रगम वर्णित है। विदुर घोर पाण्डवों के बार्ताचार्य के द्यूतश्रीश की पृष्ठभूमि का पता चला है। बाल यह भी कि राजसूय यज्ञ के समय दुर्योधन विजयान-गण्डा देखकर उमने निम्न मानाधिक हो गया था। फिर द्रोपदी ने उगाथा उपहास भी किया था। अतः उमने द्रैप एवं प्रतिशोध की भावना धरकर उठी थी। तब उमने द्यूत द्वारा पाण्डवों को पराजित करने का पर्यन्त रत्न। धृतराष्ट्र के माध्यम में उमने युधिष्ठिर को द्यूतश्रीश के नियम प्रामाणिक किया। विनयशीलता के कारण अतिच्छा में ही युधिष्ठिर ने धामन्वण स्वीकार किया।

प्रमुख दृश्य में द्यूतश्रीश का प्रदर्शन है। अना भीमनी हार पहली बार में हारने पर युधिष्ठिर श्रीश में विमूढ़ हो जाते हैं। परन्तु शत्रुनि "घातों न निवर्णैय द्यूताय च रणाय च" का स्मरण दिनाकर उन्हें खेलने के लिए विवग करता है। युधिष्ठिर हम श्रीश में वागीमता, हाथी, रथ, घोड़े घोर राज्य को दाँव पर लगाकर छो देते हैं। अतः शत्रुनि के उक्तमाने पर अपने महि घारो भाइयो घोर द्रोपदी को भी दाँव पर लगाकर हार जाने हैं। वे अन्तिम दाँव में पूर्णत पराजित होकर तेरह वर्ष के निम्न धरष्यदाग का वर्णन करते हैं। दुर्योधन की आज्ञा में, दु.शासन द्रोपदी को वेश परडकर घसीटने हुए भरी गभा में साता है, जहाँ कौरवों के साथ पाण्डव भी उपस्थित हैं। दु.शासन अमर वचनों से उमने अक्षमानित करता है घोर अन्त में उसे त्रिस्त करने का दुःप्रयास भी। किन्तु छोचे हुए स्थान पर नूतन वस्त्र के आकर्षक के कारण वह पर जाता है। द्रोपदी समस्त गुरुजनों से निर्णय की याचना करती है। उमका वचन है कि जब युधिष्ठिर ने स्वयं को दाँव पर लगा दिया घोर वे पराजित हो गए हैं, तो उन्हें उमने दाँव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं था। उसकी याचना निष्फल हो जाती है। सारी सभा जड-मूक दिखाई देती है। केवल विवर्ण द्रोपदी की दयनीय दशा से व्यथित होकर कौरव-पक्ष को त्याग देता है। द्रोपदी, दुर्योधन को शाप देती है तथा चेतावनी देती है कि भीम शीघ्र ही इस गहंणीय कृत्य का भीषण प्रतिशोध लेगे। भीम भी उत्तेजनापूर्ण शब्दों से सौ कौरवों को मारकर दु.शासन के रुधिर-गाल तथा रुधिर-सिक्त हाथों से द्रोपदी की बेणी बांधने का सखल्य करता है। इस पर शत्रुनि उन्हें वनगमन का आदेश देता है घोर अन्त समाप्त हो जाता है।

कथानक का स्रोत - इस नाटक के प्रथम अंक में स्वयंवर तथा द्वितीय अंक में द्यूतश्रीश एवं द्रोपदी-अन्त्यापहरण की कथा है। कथावस्तु का आधार व्यासप्रणीत

महाभारत है। द्रौपदी स्वयवर की घटना आदिपर्व के पाँच अध्यायों में (१७६ से १८०) है। नाटक के प्रथम अंक में राधावेध का यही आधार है। द्वितीय अंक की प्रस्तावना का आधार द्यूतपर्व (अ० ४३ से ५२) में मिल जाता है। द्यूतश्रीडा भी महाभारत के द्यूतपर्व में ही है। द्रौपदी-वस्त्रापहरण की कथा अनुद्यूतपर्व में वर्णित है। इस प्रकार प्रथम अंक आदि पर्व तथा द्वितीय अंक सभा पर्व पर आधारित है।

बालभारत एवं महाभारत की कतिपय उक्तियों में अत्यधिक समानता है। तुलनात्मक अध्ययन से हमें निम्न समताये दृष्टिगोचर होती हैं —

महाभारत	बालभारत
१ न च विप्रेष्वधिकारो विद्यते करणं प्रति । स्वयवर क्षत्रियाणामितीय प्रार्थना श्रुति । (१-१८०-८०)	१ रे रे । ब्राह्मण मुखे विप्लवमु धृत्यपंवीथी स्मर । क्षत्रस्याथ ननु स्वयवर विधावेकाधिकार स्थित । (१-८२)
२. आहूतो न निवर्तये (२-७-१३)	२ आहूतो न निवर्तये कदाचित् (११-५२-१६)
३. एको भर्ता स्त्रियो देवैर्विहित कुरु-नन्दन । ह्यय, अनेकवशा वा बन्ध-कीर्ति विनिश्चिन्ता । (२-६१-३५)	३ पञ्चाना या कलत्रम् (२-३७) हे द्रौपदि, त्वमसि कात्र पति-प्रताना किं दुष्ट पञ्चपुरया वनिता-कलत्रम्
४ महद्गनु कपंति तालमात्रम् (२-८६)	४ उत्पाटितमहाताल (१-१८०-१८)
५. जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीन् या राज-सूयावभृथे जनेन । महाक्रौ मन्त्रपूतेन मिक्ता (२-६०-२२ २३)	५ पूता या राजसूयावभृथपरिभ्रमं मन्त्रपूतं पयोनि — केशेष्व्याकृष्य माणाम् (२-३७)
६. सर्वे एवेन्द्रकल्पा गुह्यस्थेमान गुरुदेव सर्वे । तेषामग्रे नीत्सहेस्यातुमेव ।	६ कथमेकवस्त्रा भूत्वा गुरुनरेन्द्रपुरतः सचरिष्ये (२।३९-४०)
७ आठव्यमाणे बसने द्रौपद्यास्तु वि-शास्पते । तद्रूपमपर वस्त्र प्रादुरा-सीदनेकम् २।६१।४१ यदा तु वासना राशि सभामध्ये समाचिन । ततो दुःशामन ध्रान्तो धीडित समुपाविशत् (२।६१।४८)	७ यावदेक द्रुददुहितु कृष्यते वस्त्र-मस्यास्तत्स्थानेऽन्यद्भवति पिद-घतावदङ्ग ततश्च । खिन्न चर्तन्मम करतल वाससा चंप राशिस्तन्मन्येऽमी त्रिभुवनमनो-मोहिनी वेत्ति विद्याम् (२-४०)
८ भव याज्ञमेनि एकाम्बरा वाप्ययवा विवस्त्रा (२।६०।२७)	८ नन्वपनयाम्येकवस्त्रता कोटवी-करणेन (२।३९।४०)
९. कृष्णा ममेवेत्यभिभाषमाणा नृपा-सनेभ्य सहसोपतस्यु । (१-१७८-३)	९ समन्तत समुत्तरति वृन्द नरेन्द्रा-णाम् कथमहपूर्विकया सर्वे एव धनुरारोपयितु सरभन्ते । १।३३

महाभारत और बालभारत :

बालभारत के नाटककार ने महाभारत के कथानक में निम्न परिवर्तन किये हैं :—

१—महाभारत में राजपुरोहित निमन्त्रित अतिथियों का सत्कार और गूण-गान करता है।^१ जबकि नाटक में धृष्टद्युम्न इस कार्य को सम्पन्न करता है।^२

२—महाकाव्य में धृष्टद्युम्न सीमित शब्दों में अतिथियों के कुल शीत का परिचय देता है। वहीं धोषणा भी करता है।^३ बालभारत में बन्दी यह कार्य बड़े विस्तार से सम्पन्न करता है।^४

३—महाभारत में अर्जुन जब लक्ष्यवेध के लिए जाने लगते हैं तो कुछ राज-गण उनका विरोध करते हैं। कुछ उमें धनुर्विद्या में अज्ञ समझते हैं किन्तु अर्जुन नम्रता में बाण ग्रहण करके एक क्षण में लक्ष्यवेध कर देता है। प्रसन्नता में देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं।^५ बालभारत में यह घटना परिष्कृत रूप में उपलब्ध है। अर्जुन शर्व से चारों दिशाओं में दृष्टि डालते हुए भागे वदता है। उसकी बेष्टाओं से लगता है कि उसमें धनुष को चूर-चूर करने की क्षमता है। जैसे ही वह धनुष उठाता है, भीम धरा के विदीर्ण होने के भय से सम्हलने है। अर्जुन यशस्वी होते हैं।^६

४—महाभारत में द्रौपदी के सौन्दर्य से पाण्डवों के कामग्रस्त होने का वर्णन है।^७ नाटक में वे बेचल कामानुभव ही नहीं करते, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करते हैं।^८

५—महाभारत में युधिष्ठिर द्रुत शीघ्र में अपनी सम्पत्ति हार जाने के पश्चात् क्रमशः नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम को और फिर स्वयं को तथा अन्त में द्रौपदी को बाजी में लगाते हैं। लेकिन नाटक में वे सर्वप्रथम स्वयं को और फिर क्रमशः भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और अन्त में द्रौपदी को दाँव पर लगाते हैं।

६—महाभारत में प्रत्येक राजा लक्ष्यवेध के प्रयास में विफल होने पर भूमि पर अमहाय हाँकर गिर पड़ता है। बालभारत में दुःशासन धाप की ओर बढ़ता है,

१. महाभारत आदिपर्व. १७६

२. महाभारत आदिपर्व. १७६-७७

३. महाभारत आदिपर्व. १७८

४. महाभारत आदिपर्व. १७८

२. बालभारत १।२५।२६

४. बालभारत १।३२-३४

६. बालभारत १।७५।७६।७८

८. बालभारत १।२७।२८।२९।३०।३१

किन्तु तीन चार पग चलने पर लज्जित होकर लौट आता है। कुछ नरेन्द्राण चाप को स्पर्श करने में भी कतराते हैं और कुछ प्रयत्न तो करते हैं विन्तु असफल हो जाते हैं।

७—महाभारत में कर्ण को चापग्रहण क्रिये देखकर द्रौपदी कहती है कि वह सूत से विवाह नहीं करेगी।^१ परन्तु राजशेखर के नाटक में इस घटना का उल्लेख नहीं है। बन्दी कर्ण की सफलता के प्रति आश्चर्य होकर द्रौपदी को आगे बढ़ने के लिए कहता है।^२

८—महाभारत में उक्त पण को मत्स्यवेध^३ कहा है तो नाटक में राधावेध।^४

९—महाकाव्य में, कृष्ण द्रौपदी के वस्त्रापहरण के समय उनकी सहायता करते हैं।^५ नाटक में कृष्ण के स्थान पर त्रिभुवन-मोहनीविद्या उल्लेख है।

दो अरों के परवान् नाटक मधुरा छूट जाता है। यदि वह पूरा हो पाता तो हमारे सम्मुख अनेक नवीन उद्भावनायें प्राप्त हो पाती।

विद्वशात्मंजिका

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नवम शताब्दी के शक्तिशाली राष्ट्रकूट-वंश में गोविन्द चतुर्थ नामक एक कायर एवं विलामप्रिय शासक का नाम भी आता है। इस वंश की प्रतिष्ठा को बाधित करने के लिए, मत्तिपरिपद् ने उसे पदच्युत किया तथा उसके स्थान पर उसी वंश के उत्तराधिकारी अमोघवर्ष तृतीय को राज्यसत्ता प्रदान की। अमोघवर्ष तृतीय का कलचुरि वंश से वैवाहिक सम्बन्ध था, क्योंकि उसकी पत्नी कन्दुवदेवी कलचुरिनिलव युवराजदेव की पुत्री थी। इस सम्बन्ध से उत्पन्न कृष्ण तृतीय ने दस सवन्ध की ओर दुर्लभ्य कर अपने नाना युवराजदेव पर प्राप्तमण किया, किन्तु स्वल्प पराजय के परवान् युवराजदेव ने पुन आनी शक्ति दृढ़ बना ली। उनकी यह विजयवाधा क्यों तक विपुली के लोभों की जिह्वा पर बनी रही।

राजशेखर इस विजय महोत्सव के अवसर पर त्रिपुरी में ही थे। उनकी विद्वशात्मंजिका नाटिका दसों प्रसंग में रंगभूमि पर अचलरित की गई थी। राज्य-परिपद् के सम्बन्धों ने जब अपने राजा को काव्य (दृश्य) नायक के रूप में देखा तो वे मद्गद् हा गये। युवराजदेव का मनी मासमिध स्वयं को धारुरायण की भूमिका

१. महाभारत धार्ति पर्व १३८

२. बाणभारत १-३९

३. महाभारत धार्तिपर्व १३६

४. बाणभारत १-२२।२३।३२।३७

५. महाभारत ६१-८०

में उपस्थित पाकर निहाल हो गया। सारी परिपक्व "सुरबुलितिलको बतते चक्रवर्ती" इन शब्दों से गुंज उठी।

यह ऐतिहासिक घटना है जो विद्वशानभजिका नाटिका के वस्तु-सविधान में सलग्न दिखाई दे रही है। नाटककार ने ऐतिहासिक कथावस्तु को शृंगार-प्रधान सविधान में इतनी कुशलता से गुम्फित किया है कि वस्तुतः विपरीत होने पर भी दोनों घटनाओं में तादात्म्य स्थापित करने के कारण वह प्रन्त तक प्राकर्यक बनी रह सकी है।

कथावस्तु : सम्राट् विद्याधरमन्त्र के नामन्त चन्द्रवर्मा को पुत्रीरत्न की प्राप्ति तो हुई, किन्तु निष्पुत्र होने के कारण उमने दूतों से सम्राट् को पुत्रीप्राप्ति की सूचना भिजवा दी। सम्राट् विद्याधरमन्त्र का मन्त्री भागुरायण प्रतिशुशान व्यक्ति था उसने उम पुत्री को पुत्रवेश में ढँगवा लिया। पश्चात् एक विश्वस्त परिवारिका को अपने विश्वास में लेकर यह बनलाया कि यह पुत्री जिमका नाम मृगाकावली है, मृगाकावली नामक स्त्री है। उसके साथ विवाह करने से युवराज चक्रवर्ती हों जायेंगे। अतः वह सर्वप्रथम मृगाकावली को प्रिय सखी बने तथा राजा के इस कार्य को सफल बनाने में सहायता दे। विचक्षणा की स्वीकृति के पश्चात् भागुरायण ने उसे आदेश दिया कि वह मृगाकावली को भवन-भित्ति सवार-गृह में रखे जिससे राजा उसे स्वप्न में देख सके। मृगाकावली ने विचक्षणा के कथन पर विश्वास रखकर राजा के दर्शन होने ही उमें अपना कण्ठस्थित हार चढ़ा-कर उसकी अर्चना की, जिममें अनुरूप गति मिले। विचक्षणा की सम्पत्ति में धूँद पर राजा को अपने दर्शन दिये, केलिकलास नामक वासगृह की स्फटिकमय दीवालों पर अपना चित्र चित्रित कराया। पश्चात् स्फटिक की दीवाल की छाह में पुनः दर्शन दिये। अपने रूप से सर्वथा मिलती हुई शाल-भजिका निमित्त करायी। रत्न कली की धोती पर बन्दुख चीज की। अनेक विलासों का प्रदर्शन करती हुई उस सुन्दरी को देखकर राजा उस पर पूर्ण रूप से आसक्त हो गया, तथा मंत्री भागुरायण का निव्यातवे प्रतिज्ञान कार्य भी सफल हो गया।

इस नाटिका की कथावस्तु इस पद्यमन्त्र के आधार पर चार अक्षों में बंधी हुई है।

प्रथम अक्ष का आरम्भ बड़ा ही भव्य है। स्वप्नदृष्ट नायिका का स्मरण करने हुए मुन्तान्त्यय राजा विदूषक से कहता है "यदि उगता मृग है, तो चन्द्रमा की

भावश्यकता नहीं है। उसके शरीर की कान्ति की तुलना में सुवर्ण निष्कल है। उसकी भौहो के सामने कामदेव का धनुष तुच्छ है। अधिक क्या बहें? इन अनावश्यक वस्तुओं का पुन-निर्माण करने में विधाता का सृष्टिभ्रम व्यर्थ सा लगता है। विदूषक राजा को इस अपूर्व भोगावली में विस्मित हो जाता है। राजा पुन नायिका का स्मरण करता है। दोनों गवाक्ष-द्वार से प्रमोदोद्यान में प्रविष्ट होते हैं। राजा को स्फटिक भित्ति की ओर से नायिका का आभास होता है। वह हिंडोले में झूलती हुई, चन्द्र की आन्ति करती हुई दिखाई देती है। दोनों भागे बढ़ते हैं। स्फटिक की दीवारों में सावार नायिका को देखकर राजा अवाक् हो जाता है। वही शाल-भजिका में उत्कीर्ण नायिका को देखकर वह अपना मोतियों का हार नायिका के गले में डाल देता है। शालभजिका में लिखी पवित्र "विधत्ते सोम्येव कतरदिह नाङ्ग तर्णिमा" पढ़ता है। उसी समय पुन उमें नायिका की आन्ति होती है, क्योंकि वह कैलिकलास के पीछे से अस्पष्ट पद-चिह्न छोडती हुई निकल जाती है। नेपथ्य में माध्यन्दिनी के सुखरु होने की कामना व्यक्त की जाती है और राजा तथा विदूषक दोनों मद्योपायना के लिए निकल पडते हैं।

दूसरे अंक में तरणिका और कुरणिका नामक दासियों के वार्तालाप में ज्ञान होता है कि राजा के मन में (राज्यपरिभ्रष्ट चण्डगेन की दुहिता) कुवलयमाला समाई हुई है। इन मौन के घाने की आशका से रानी उमका विवाह मातुल-मुल भुगावर्मा से करना चाहती है, जिममें चन्द्रवर्मा की माना का स्नेह भी दर्जित होगा और रानी का लक्ष्य भी पूर्ण होगा। इसी प्रसंग में वह शायं चारायण का डमरुक (वधू वेश में उपस्थित चेट) में अपनी विवाह कराना चाहती है। प्रमुख दृश्य में अपनी विवाह दिखाया जाता है। मिथ्या विवाह में कुपित होकर विदूषक निकल जाता है। पुन नायिका को कटुक शोभा में मग्न दिखाया जाता है। राजा और विदूषक उम नायिका का अनुसरण करते हैं। उन्हें दिव्य तानपत्र मिलता है जिममें शोरन का वणन है जो सभी अंगों में निखार पैदा करता है, किन्तु नेत्रों में एक विशेष प्रगल्भता उत्पन्न कर देता है। नेपथ्य में भुगावली की सखी उसके परिपक्व प्रणय एव विरहजन्य व्यथा का वणन करती है। राजा को उसकी उन्मादावस्था का बोध होता है। नेपथ्य में सायबालीन मन्थ्या की सूचना दी जाती है।

तृतीय अंक में विचक्षणा एवं सुवर्णना के वार्तालाप में मन्त्री भापुरायण के रहस्य का उद्घाटन हो जाता है, तथा नायिका की पत्नी हुई विरह वेदना का भी। इस मिथ्या विवाह में चण्डगण चारायण देवी की छात्री की तरह की छानना

होता है कि 'नर्मदा नदी की सहरो से प्रतिध्वजित त्रिपुरी नगरी में केयूरवर्ध महा राज को परिचय में गणानी के उद्गम से लेकर पूर्व में ताप्रपर्णी तक, पवित्र वक्षिण प्रदेश से परिचय समुद्र तक और शकर ओ की जटाओ में गिरी हुई गग जो के द्वारा अभिनन्दित क्षीर सागर तक का चक्रवर्ती पद प्राप्त हो गया है ।

ब्रह्मा विष्णु और महेश के स्तुतिपरक भरतवाक्य में नाटिका समाप्त होती है ।

कथावस्तु की समीक्षा:—विद्याधरमल्ल तथा मृगाकावली की प्रणयकथा इस नाटिका की वस्तु है । उक्त कथा सम्पूर्ण न टुक में व्याप्त है और लक्ष्य-प्राप्ति भी इसी से सम्बद्ध है । धार्य चारायण का मिथ्याविवाह, तथा मेखना का जीवन-दान प्रासंगिक कथावस्तु है ।

नाटककार ने भुमगति के लिए नाट्य-शिल्प में विष्कम्भक एवं प्रवेशक नामक प्रयोगक्षेपको का भी विधान किया है । प्रथम अंक के 'मुषिरस्तम्भसंचार' 'वसुगुह की सूचना' विष्कम्भक द्वारा तथा द्वितीय अंक में 'तरंगिका' एवं 'कुर्षिका' के वार्तालाप में प्रतीक विवाह-प्रसंग का निर्देश, तृतीय अंक में मन्त्री भागुरायण की पद्मिनी कथा का उद्घाटन तथा चतुर्थ अंक में मृगाकावली एवं कुवलयमाला के विवाहों की सूचना प्रवेशक द्वारा प्राप्त होती है । नायिका की विरहदशा, सूर्योदय एवं चन्द्रोदय का समय पर प्रदर्शन न हो करने के कारण उन्हें 'नेपथ्य' से सूचित किया गया है । प्रहसनुमार स्वगत^१, प्रकाश^२ एवं अणवार्जित^३ का भी विन्यास किया गया है । ये समस्त उपकरण नाटिका को अभिनेय बनाते हैं । नाटिका में कार्यवस्थाओं का भी प्रदर्शन किया गया है । प्रथम अंक में नायिका के स्वप्न-दर्शन में राजा ने अकुरुित प्रणय-भावना "धारम्य" नामक कार्यवस्था को प्रकट करनी है । इसी अंक में नायिका को पहले निवृत्त में, फिर शासभद्रिका में विद्य, तत्पश्चात् मित्तिगुह की भेट में देखकर राजा का घौलुक्प उत्सरोत्तर बदला है । द्वितीय अंक में नायिका की प्राप्ति के लिए धार्य चारायण की सहायता से त्रिभे गये राजा के भारे प्रयास 'यत्न' नामक कार्यवस्था को सुदृढ़ बनाते हैं । "प्राप्यशा" का सूत्र तृतीय अंक के नायक-नायिका के मिलन-प्रसंग में दृष्टिगत होता है । चतुर्थ अंक में मृगाकावली सेनायक का विवाह एवं पश्चती पद

१. विदग्धानभद्रिका पृष्ठ २, ५, ३१, ५०, ५१, ५३, ७३, ७४, ९०, ९१, ९७

२-३ वही पृष्ठ २४, ४३, ८९, ११०

४ वही पृष्ठ ११४, ११५

का^१, रत्नावली में वामवदत्ता सागरिका वा^२ और प्रियदर्शिका में वावसदत्ता प्रियदर्शिका का विवाह नायक के^३ साथ इमलिए करवानी है कि वह चक्रवर्ती पद से गौरवान्वित हो जाय ।

२—चारों नाटिकाओं की नायिकाएँ राजकुलोत्पन्न हैं । विद्वशालभजिका में नायिका मृगाकावली लाटप्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की एकमात्र पुत्री है^४ मालविका राजकुमारी है, भाई के बन्दी हो जाने पर उसे छिपाकर लाया गया है ।^५ रत्नावली नाटिका की नायिका सागरिका मिहनेश्वर नरेश की पुत्री है ।^६ प्रियदर्शिका नरेश दृढवर्मा की पुत्री है । किन्तु नायिकाओं का यह रहस्य अन्त में ही उद्घाटित होना है ।

३—मालविकाग्निमित्र को अपवाद माना जाये तो शेष तीनों नाटिकाएँ चार अंकों की ही हैं ।

४—चारों नाटिकाओं में विदूषक राजा का अभिन्नहृदय मित्र है । विदूषक की सहायता से राजा का प्रणय-व्यापार बाधाओं का अतित्रमण करता हुआ सफलता की ओर बढ़ता है । नायिका से नायक का मिलन तथा अप्रत्यक्ष रूप में विवाह-प्रसंग विदूषक द्वारा ही सम्पन्न होता है ।

विभिन्नताएँ इन समानताओं के अनिश्चित कतिपय विभिन्नताएँ नाटिका में स्पष्ट रूप से लक्षित होती हैं—जैसे विद्वशालभजिका, रत्नावली एवं मालविकाग्निमित्र में नायिकाओं को भविष्य में योग्य पति मिलने की घोषणा मिलती है । किन्तु विद्वशालभजिका में घोषणा करने वाला व्यक्ति अन्य तीन नाटिकाओं में भिन्न दिखाई देता है । लाटाधिपति का दूत विद्याधरमन्त्र राजा की सभा में आकर मृगाकावलीके विषय में कहता है "दैवशोचित चक्रवर्ति गृहिणिभावा मृगाकावली-देया वस्य त्रिदिन्दुमुन्दरयश पूतस्य पृथ्वीपते ।"^७ इसके विषय में दैवज्ञो ने यह बताया है कि चक्रवर्ती की गृहिणी होगी ।

- १ मालविकानिमित्र-अज्जउत्तो दाणि इम पडिच्छु । ५-१८-१९
२. रत्नावली-उज्जउत्त । एव रमणावलि पडिच्छ । चतुर्थे अरु १९-२०
- ३ प्रियदर्शिका-राजा हन्त प्रमारयति, वामवदत्ता प्रियदर्शिकाहन्तभयंयति । चतुर्थे अरु १०-११
- ४ विद्वशालभजिका-लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतिनिश्च तस्य पुत्री । अरु १ श्लोक ८
५. मालविकाग्निमित्र-दायादवशगते भर्तृदारके माघवसेने तस्यामात्येनायु-भूतिनाप्रमादुश ५।१२।१३
- ६ रत्नावली-परिजनमुज्जित्वा गूढमानीनेषा परम अरु १।१०
- ७ विद्वशालभजिका ४।२०

मानविकाग्निमित्र में यह घोषणा मिद्धादेश के द्वारा मिलती है "मिद्धादेशकेन साधुना मत्नमक्ष समादिष्टा आसवल्मरमात्रमिय श्रेय्यभावमनुभूय तत शदुग्-मत्तु'गामिनी भविष्यति ।^१ परिव्राजिका मानविका का वृत्त बतलाती हुई कहती है कि सिद्धमन्त्रात्मा ने कहा था कि एक वर्ष तक दामी का जीवन बिताने के बाद यह योग्य स्वामी प्राप्त कर सकेगी ।

रत्नावली नाटिका में भी सिद्ध पुरुष भविष्य बतलाता है । यौगधरग्रहण :- "देव ! श्रूयता येम मिहलेश्वरस्य दुहिता मा सिद्धेनादिष्टा यथा योज्यां पाणि-ग्रहण करिष्यति म सावेभौमो राजा भविष्यति" । यौगधरग्रहण प्रस्तावना में ही स्पष्ट कहता है कि हम मिहलदेश की राजकन्या के विषय में सिद्ध ने भ्रातीर्वाद दिया था कि जो इसके साथ विवाह करेगा वह ममय भूमण्डन का राजा होगा ।

निष्कर्ष यह है कि मानविकाग्निमित्र और रत्नावली नाटिका में भ्रातीर्वाद देने वाला या भविष्य कथन करने वाला पात्र भी सिद्ध पुरुष है । यह दोनों नाटिकाओं में समानता है । हाँ, शिद्वशालभजिका में दैवज्ञ मृगाकावली के भावी जीवनका स्पष्टीकरण करता है ।

विभिन्नतायें : १. शिद्वशालभजिका और रत्नावली में नायिका के विषय में कहा गया है कि वे जिसमें विवाह करेगी वह राजा चक्रवर्ती पर प्राण करेगा या समस्त भूमण्डन का राजा होगा किन्तु मानविकाग्निमित्र में चक्रवर्ती पर या सम्राट का उल्लेख नहीं है । केवल नायिका की उचित वर-प्राप्ति का कथन है ।

२. इन नाटिकाओं में दूमरी भिन्नता नायिका के प्रथम दर्शन के विषय में है । नायक विद्याधरपत्न नायिका मृगाकावली को प्रथमतः स्वप्न में देखता है तथा प्रामक हो जाता है ।^२

मानविकाग्निमित्र^३ और रत्नावली^४ नाटिका में नायक अपनी नायिकाओं को

१. मानविकाग्निमित्रम् ५-१२।१३

२. सा क्वार्त्ति म्वानविधौ दृष्टा वि० म० १-१५

३. म जनां देव्या. पार्श्वगने-मानविकाग्निमित्र अंक १-३-४ ।

४. सीतावधुत्पद्मा कथयन्ती पद्मपातमधिक न. ।

मानमसुरीति केयं चित्रगना राजहनीव । रत्नावली २।३

प्रथमतः चित्र में आनिखित पाते हैं जिनके मींदर्य में मृग्य होकर उन्हें साक्षात् देखने के लिये उत्सुक हो जाते हैं ।

३. विद्वशालभजिका में मेखला जीवन दान प्रसंग तृतीय अंक में आयोजित किया है । यह विदूषक की बुद्धिशुश्रुता का नमूना है । रानी के द्वारा सम्पन्न मिथ्या विवाह में अग्रसन्न नारायण^१ देवी की धात्री की तडकी से उस अवसर पर बदला लेता है ।

मालविकाग्निमित्र नाटिका में चतुर्थ अंक में नायक तथा नायिका समुद्रगृह में मिलते हैं । रानी इरावती को यह खबर मिलते ही वह अपनी सखी निपुणिका के साथ वहाँ पहुँचती है । समुद्र के द्वार पर माँये हुए विदूषक को नाड़ी में जगती है । वह साँप साँप कहकर चिल्लाता है । यह सुनकर अन्नगृह में राजा विदूषक को बचाने के लिये निकल पड़ता है साथ ही राजा को रोकती हुई मालविका । दोनों को देखकर इरावती के क्रोध की सीमा टूट जाती है । राजा भी परेशान है । उसी समय पिगल वानर अपने पित्रे में निकलकर रोद खेलती हुई वसुलक्ष्मी को भयभीत कर देता है । वह बेहोश हो जाती है । जब यह वार्ता रानी सुनती है । वह शीघ्र ही लौट आती है । अतः वानर-प्रसंग कथानक विक्राम में सहायक होता है ।

रत्नावली नाटिका में सागरिका राजा के दर्शन के लिये अन्यन्तु है किन्तु दर्शन न होने के कारण निराश होकर चित्रपट्टी पर राजा का चित्र नूतन करती है उसकी सखी मुमगता उस राजा के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र खींचती है । चित्र दर्शन में ही सागरिका अपना मनोविनोदन करती है । उसी समय समीपस्थ वृज में राजा और विदूषक मनोरंजन करते हुए दिखाई देते हैं । सागरिका का राजा के प्रति अनुराग तथा उसे न पाकर जीवन त्याग का विचार जिसे वह मुसगता के गामने जड़ों द्वारा प्रकट कर रही थी पत्रग्रन्थ सागरिका सुनती है । उन्हीं आलापों को राजा के समक्ष दुहरा देती है राजा को सागरिका की विरहव्यथा की अनुभूति होती है । नाटिका में बीज तथा मूल कथा का आरम्भ यही से हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्वशालभजिका को गति मेखला-प्रसंग से मिलती है जबकि रत्नावली और मालविकाग्निमित्र में वही कार्य बन्दर के छूटने में सम्पन्न होता है ।

१. वि० अ० श्रीभक्तिवाहविडम्बिन्दो वडुडो वाराभणो दे पडिक् दिवविन्दो-तृतीय अंक ।

४. रत्नावली और मातृविक्रान्तिमित्र को नायिकायें मागारिका और मान-वका जन्म. राजकुमारी होने हुए भी नायक के मूल पुर में दामियों का जीवन व्यतीत करती हैं। विद्वशालभञ्जिका में स्थिति विपरीत है। इस नाटिका की नायिका मृगाकावली (पुत्र रूप में) पुत्र घोषित करके भिन्नवाई जाती है और नायक के प्रसाद में सम्मानपूर्वक रहती है। महादेवी के मन में इसके प्रति विशेष ईर्ष्याभाव नहीं है। जयकि अन्य दो नाटिकाओं में महादेवी नायिकाओं से मरती ही गृष्ट रहती है।

५. रत्नावली और मातृविक्रान्तिमित्र नाटिकाओं के नायक नायिकाओं का विवाह राजनैतिक कारण से संबन्धित है। इसे कार्यान्विन करने में मंत्रियों का प्रमुख हाथ है। वे कार्य को गहन बनाने के लिये पड़पन्न की रचना करते हैं, और यदा प्रयत्नशील रहते हैं। उनके कार्य की गहनता नायक नायिका के परिणाम में होती है। विद्वशालभञ्जिका में राजनैतिक उल्लंघन नहीं है। रानी मृगाकावली विपयक भविष्य घोषणा को मान्य करने के लिये तथा राजा को अनाशय बचवर्ती बना देने की सान्ना से स्वयं नायक नायिका को प्रणय मूख में बांध देती है।

६. दोनों नाटिकाओं में नायिकाओं का परिचय उनके देश में प्राया हुआ सेवक देता है। महादेवियाँ उन्हें दी गई वाननाओं का स्मरण करती हुई अवि-दु खित होती हैं तथा पुरस्कार रूप में नायिका को राजा के हाथ सौंप देती हैं। विद्वशालभञ्जिका में नायिका मृगाकावली के देश में दूत आता है। वह पुत्र-जन्म का शुभ समाचार देता हुआ मृगाकावली के लिये उचित वर की मांगना करता है। राजा के लिये अतिरिक्त अन्य उचित वर न मिलने के कारण रानी मृगाकावली का विवाह राजा के साथ विधिपूर्वक सम्पन्न होता है।

तुमनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि नाटककार ने हर्ष की रत्नावली एवं शिबदिका तथा कालिदास के मातृविक्रान्तिमित्र को समझ रखते हुए भी नाटिका को यथाशक्त मौलिकता प्रदान की है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक : राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी सट्टक एवं विद्वशालभञ्जिका नाटिका की रचना उपरूपको में की है। यह निर्विवाद है कि सट्टक परम्परा की नींव राजशेखर ने ही डाली है। उनके पूर्व सट्टक शब्द 'माटक' या 'शाडिक' इस विकृत रूप में भरहुतके तिलालेख में अंकित है। राजशेखर ने ही इस शब्द को (अर्थ के साथ मञ्जुल सामञ्जस्य स्थापित कर) प्रथम बार रंगमंच पर अवतरित किया।

वर्पूरमजरी की प्रस्तावना में स्थापक कहता है—“कथिद जेव छइतेहि—

“सो सट्टओ लिमगइ दूर जो णाडिआइ प्रणुहरइ ।

कि उण पवेमविकवम्मनाइ केवत ण दोसन्ति”^१

विद्वानों का कथन है कि जिम प्रबन्ध में नाटिका का पूर्ण अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक की योजना न हो उसे सट्टक कहते हैं । उपर्युक्त उदाहरण में स्थापक द्वारा प्रयुक्त ‘विद्वान्’ शब्द हमारे मान्य कवि राजशेखर के लिये है । मत स्पष्ट है कि सट्टक एक प्रकार की नाटिका है । नाटिका के सन्ध में भरत-मुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक प्रायः आचार्यों ने अपने अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं । इसमें धनजय^२ और भरत^३ द्वारा वर्णित नाटिका के लक्षणों को ही विस्तारपूर्वक दिया है और साहित्यदर्पणकार ने पूर्वपरम्परा का अनुसरण करते हुए भरत एवं धनजय के शब्दों को दोहरा दिया है । इसलिये नाटिका के विषय में ‘दर्पणकार’ का मत देना यहाँ पर्याप्त होगा । उनके अनुसार—

नाटिका कल्पवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्गिका ।

प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृप ॥

स्यादन्त. पुरसम्बद्धा संगीत-व्यापृतः/यथा ।

नवानुरागा कन्याञ्च नायिका नृपवशजा ॥

सम्प्रवर्तते नेतास्या देव्यास्त्रासेन शक्तिरत ।

देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवशजा ॥

पदे पदे मानवती तद्वशा संगमो द्वयो ।

वृत्ति. स्यात्कैशिकी स्वल्पविमर्शा सन्धय पुन ॥

अर्थात् नाटिका वह उपन्यक है, जिसका वृत्त बलिप्त होता है । उसमें स्त्री-पाल ही अधिक चित्रित होते हैं । इसका चार अंकों में समाप्त होना आवश्यक है । इसका नायक प्रख्यात राजवंश का धीर-ललित प्रकृति वाला राजा होना चाहिये । नायिका का नायक के अन्तःपुर से संबद्ध होना अथवा संगीतकला में निपुण होना, राजकुलोत्पन्न होना तथा नवानुरागवती कन्या होना अपेक्षित है । नायक नायिका का पारम्परिक रतिभाव देवी प्रथवा राजमहिषी के भय से युक्त तथा उनका समान उसके प्रधीन होना चाहिये । देवी या राजमहिषी, राजकुलोत्पन्ना, प्रगल्भा, पग पग पर मान करती हुई चित्रित की जाना चाहिये । इसमें ‘कैशिकी

१ वर्पूरमजरी १-६ ।

२. दशरूपक . धनजय ३ ४३ ४८ ।

३ नाट्यशास्त्र : भरत १८।५७-६१ ।

वृत्ति का प्राधान्य रहना चाहिये । विमर्शसन्धि के अंगमात्र से सन्धि-चतुष्टय की रचना होना चाहिये ।

कर्पूरमजरी की रचना करते समय राजशेखर के मस्तिष्क में नाटिका के उक्त सभी लक्षण विद्यमान थे किन्तु 'नाटिका' को 'सट्टक' का नेपथ्य-परिधान कराने के लिये उन्होंने जिस सामग्री की सहायता ली, वे ही भाषे चलकर सट्टक की निजी विशेषतायें बन गयीं ; जैसे—

- (१) नाटिका में प्रयुक्त 'धक' के स्थान पर 'जवतिका' शब्द का प्रयोग ।
- (२) नाटिका के नाम पर ही सट्टक का नामकरण ।
- (३) नृत्य का अनिवार्य रूप से प्रयोग ।
- (४) सम्पूर्ण पात्रों द्वारा मात्र प्राकृत भाषा का व्यवहार ।

राजशेखर के परवर्ती नाट्यकारों तथा आचार्यों ने उनके द्वारा दी गई 'सट्टक' की परिभाषा का समीक्षण करते हुए अपने अपने ढंग से उसे साहित्य में प्रतिष्ठित किया ।

आचार्यों में अभिनवगुप्त, हेमचन्द्र, शारदातनय एवं विश्वनाथ ने सट्टक के विषय में विचार किया है । अभिनवभारतीकार अभिनवगुप्त के मतानुसार सट्टक, कोहल आदि द्वारा लक्षित 'स्रोटक' एवं रासक के समान ही नाटिका का एक भेद है ।

“उक्त व्याख्याने तु कोहलादिलक्षितस्रोटक सट्टकरासकादिसङ्ग्रह फलं नाटिकाया उदाहरणत्वादिति । अतएव न दशसम्याविभागार्थो येन सट्टकादीनां त्यागः स्यात् ।

हेमचन्द्र ने केवल प्राकृत में ही लिखी गई दिव्यम्भक एव् प्रवेश-रहित नाटिका को सट्टक माना है—

'सट्टकञ्च कैश्चिन् । दिव्यम्भक-प्रवेश-रहितो यत्स्वेकभाषया भवति अमरहृतप्राकृतया सट्टको नाटिका-प्रतिमः ।'

शारदातनय सट्टक-विषयक विवक्षित विचार प्रणाली के समर्थक हैं । राजा की भाषा के विषय में परवर्ती आचार्यों में भेदभेद हो गया था । इसकी प्रतीति शारदातनय के 'नवदेत् प्राकृती भाषा राजेति कनिचिज्जगु' शब्दों में की जा सकती है ।^१ उक्त उद्धरण में शारदातनय ने सट्टक से

१. नाट्यशास्त्र भाग २ पृ. ४०७ ।

२. काव्यानुशासन हेमचन्द्र पृ० ४३२ ।

३. भावप्रकाशन शारदातनय नवम प्रकाशन पृ० २६९ ।

समस्त सन्धियों को बहिष्कृत कर दिया है । मगरलन्धी के चित्तारो ने सट्टक नाटिका का ही प्रतिरूप है । इसमें 'कैशिकी एव भारती' वृत्ति प्रधान होती है । उगने रोद्र, बीर, भयानक एवं वीभत्स रम, तथा प्रवचन सन्धि का अभाव होता है ।^१ भरु के स्थान पर यवनिना मध्व प्रयुक्त किया जाता है । शौरसेनी, प्राच्या और महाराष्ट्री के माध्यम में पात्र वाग्ब्यवहार करते हैं । राजा-प्रावृत्त-भाषी होता है और स्त्री-भात्रो का बाहुल्य होता है ।

“सट्टकं नाटिका-भेषो मूलवभेदान्तकं भवेत् ।
 वैशिकी भारतीयुक्तहीन-रोद्ररगादिकम् ॥
 सर्वसन्धिविहीनश्च नाटिका-प्रतिरूपम् ।
 मूरसेनमहाराष्ट्र-प्राच्य-भाषादिकल्पितम् ।
 भरुस्थानीयविच्छेद-चतुस्रंयवनिनान्तरम् ॥
 छादनस्यस्यध्रान्तिनिह्ववादेरामवात् ।
 न बदेत प्रावृत्ती भाषा राजेति कतिञ्चिद्गु ॥
 मागध्या शौरसेन्या वा वदेद्राजेति केचन ।
 नाटिकाप्रतिरूपं यद्विशेषो रणकस्य तत् ॥
 सट्टकं तेन तस्याहू भाषा ता प्रावृत्ती परे ।
 राजयोगर-बन्धुस्त तद् यथा बर्पूरमजरी ॥

अन्यवनिनान्तर यथाऽङ्के यवनिरुभावच्छेदा भवति तथात्तापि । शौरसेनी-प्राच्यामहाराष्ट्रीयुक्तम् । स्त्रीवद्राज्ञोऽपि प्रावृत्तपाठ यद्यपि बादरायण प्रभृति-मिस्त्रं राज्ञं सस्कृतपाठ । कर्पाव् प्रावृत्तपाठ । तत्र रूपकमिवेदकार्यमिति राजाऽपि प्रावृत्तपाठ कर्तव्य । सट्टके स्त्रीप्रधानत्वाद्रूपकस्यानुरोधेन नृप स्त्रीवत्प्रत्येय पाठस्य नियतो विधि ।^२

विषयनाथ भट्ट ने सक्षिप्त सारगमिन शब्दों में सम्पूर्ण सट्टक परम्परा के लक्षणों को उद्धाटित किया है । उनके अनुसार उक्त साहित्यशास्त्रियों के प्रतिरिक्त धनश्याम, रद्रदास, नयचन्द्र, विश्वेश्वर और माण्डेय ने भी बर्पूरमजरी के धारण पर क्रमशः 'प्रानन्दमुन्दरी' 'चन्द्रलेखा' 'शु मारमजरी' 'रमामजरी' एवं 'बिलासवती' की रचना की है ।

१. नाटक रत्नकोष—मगरलन्धी पृ० १३३-१३४ ।

२. नाटक रत्नकोष मगरलन्धी, पृ० १३३-१३४ ।

क्योंकि नायिका से राजा के मिलने का समाचार पाकर रानी उसी घोर भाती है । कुन्द, कामन, किरान, कर्णवर और सौविदल्ल शोर मचाते हैं । नायक-नायिका चले जाते हैं ।

चतुर्थ जवनिका में राजा शीष्म की प्रवण्डता घोर काम की प्रश्ररता में व्यथित दिखाई देता है । वह शीष्म शत्रु की सेवनीय वस्तुओं का वर्णन करता है । उसे ज्ञात होता है कि बर्पूरमंजरी को भी कारागार के कठोर नियंत्रण में रखा गया है । और दरवाजों को पत्थरों से नीरुद्ध करके ढँक दिया गया है । पूर्वदिशा में पाँच खँवर डुलाने वाली, चमकती तनवारों से युक्त, हजार पैदल सिपाहियों के साथ रक्षा के लिये नियुक्त की गई है । उसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में क्रमशः पाँच सैरिन्द्रियों और हजारों धनुष भाते घोर डान तनवारों से लैम पैदल सिपाहियों समेत नियुक्त की गई है । इन सबका अध्यक्ष पद पाँच कुमारी परिवारिकाओं ने, जो कि हाथ में सोने के डण्डे लिये हुए हैं, सम्हाल रखा है । राजा को रानी की घोर से वटगाविली महोत्सव देखने का निमन्त्रण मिलता है । कैलिबिमान पर चढ़कर राजा और विदूषक इम धवमर पर प्रायोजित खँचरोनुत्सव देखते हैं । पुनः एक बार भैरवानन्द आते हैं । इस समय वे गौरी-प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा कराते हैं । रानी द्वारा दक्षिणा के लिये प्रार्थना करने पर भैरवानन्द दक्षिणा के रूप में पनसारमंजरी का राजा के साथ विवाह माँगते हैं । रानी विमो द्गरी बन्या की धनसारमंजरी समझकर विश्वास रखती है, किन्तु पनसारमंजरी बर्पूरमंजरी ही होती है । पन रानी धन में पड़ती है । कारागार में जाकर देखती है तो उसे बर्पूरमंजरी बँटी दिखाई देती है । बामुग्दा के मंदिर में भी वही स्थिति है, अन्त में भेद खुल जाता है । राजा और बर्पूरमंजरी का विवाह हो जाता है । उसे पच बर्तों पर भी पनावास मिल जाता । धानवासन के साथ बधा की समप्ति होती है ।

बधावस्तु—बर्पूरमंजरी में खण्डमान एव बर्पूरमंजरी को प्रथम बधा व मिल । वे दोनों पनमोक्षा है । विचशाना एव विदूषक की बाल्यगोष्ठी, जो कि प्राणिक बधा के रूप में रखी गई है, प्रथम जवनिका के पान तत्र चली है । इससे गट्टक का प्रारम्भ प्रारम्भ बनाने में गृहमन्त्रा मिली है । विदूषक को उचित हि संके राजकुन का बन्धाव हो जहाँ दामो बाल्य के साथ प्रतिगर्भा करती है । तत्कालीन राजकुमों की स्थिति पर प्रकाश डालती है ।

१. बर्पूरमंजरी १-२० "हरिप्रसन्न राघवतन्म बट्ट घोटु जहि
 बेरिष्ठा बाल्यगण मय समर्पणीविधाट्ट दीगर्दि ।"

आधिकारिक कथावस्तु में पाँचो अर्थप्रकृतियों (बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी और कार्य) का निर्वाह हुआ है। फलसिद्धि का प्रथम हेतु बीज होता है। भैरवानन्द की अद्भुत सिद्धि द्वारा अद्वितीय सुन्दरी कर्पूरमजरी के अवतरण से राजा चण्डपाल अत्यन्त विस्मित है। 'चिने निहृज्जदण वस्स वि सजमनी'^१ (यह नायिका किस पुरण के हृदय पटल पर चित्रित नहीं होनी)—“जेण सोसण-मोहणप्पुहदिणो विज्झति म मग्गणा^२—”। इसे देखकर कामदेव के शोषण और मोहन वाण मुझे व्याकुल कर रहे है—राजा के इन उद्गारों से “बीज” अर्थ-प्रकृति की स्थापना हो गई है। इसके पश्चात् बीज उत्तरोत्तर विकसित होता है। नायक (राजा) नायिका का पारस्परिक पूर्वानुराग, दशनाभिलाषा इत्यादि द्वितीय एव तृतीय जवनिका के अन्तिम दृश्य तक अविच्छिन्न बनी रहती है। यहाँ तक कथावस्तु के बिन्दु का प्रसार लक्षित होता है। चतुर्थ जवनिका में नायिका के कारावास से मूल प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है, किन्तु भैरवानन्द के सफल प्रयास से सट्टक का मुख्य लक्ष्य नायिका (कर्पूरमजरी) की प्राप्ति एवं परिणय-सिद्ध हो जाता है।

पाँच कार्यावस्थाओं—आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एव फलागम—से पाँचो अर्थ-प्रकृतियों का मयोग होता है। मुख्य फल की सिद्धि के लिये उत्पन्न को “आरम्भ” कहते हैं। प्रथम जवनिका में बीज अर्थप्रकृति के साथ ही “आरम्भ” की अवस्था भी प्रारंभ हो गयी है। द्वितीय जवनिका में नायिका का प्रणयपत्र कि “अपने से प्रेम करने वाली हसिनी को कुकुमराग से सजाकर पुन भूल में ही उसे चक्रवाकी समझाने वाला हस्त उसे छोड़ देता है। यह मेरे दुःखद पापों का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें देख नहीं पाती हूँ” इस अवस्था को और भी प्रस्फुटित करता है। इसी मदर्भ में “यत्न” की अवस्था का भी प्रारंभ है। नायक के यत्न में विदूषक एव नायिका के यत्न में विचक्षण फलागम के लिये प्रलाशील है। तृतीय जवनिका में विचक्षण एव विदूषक के प्रयास द्वारा नायक एव नायिका के मिलन के ‘यत्न’ की अवस्था फलागम की सीमा को स्पष्ट करती प्रतीत होती है। इसी समय रानी को वस्तु स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वह नायिका को कठोर नियंत्रण में रखती है। प्राप्त्याशा का यह सही रूप है। फल प्राप्ति की सम्भावना घूनि घूर्णित होती है। किन्तु भैरवानन्द द्वारा माँगी हुई गुरुदक्षिणा ‘नियताप्ति’ की दशा का आरम्भ सूचित करती है।

१ कर्पूरमजरी १-२७।

२. वही १-३२।

नियताप्ति गूढ है । 'जब तक दर्शक कर्पूरमञ्जरी को रगमञ्ज पर नहीं देख लेते, घनसारमञ्जरी उनके लिये पहिली बनी रहती है । विदूषक की यह उक्ति कि— "प्रिय मित्र मैं दुपट्टे में गाँठ बगाना हूँ, तब तक अपने हाथ से कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़ो" नियताप्ति को स्पष्ट कर देती है । चतुर्थ जवनिका का अवसान फनागम से होता है । राजा को कर्पूरमञ्जरी तथा चक्रवर्ती पद की प्राप्ति रूप फनागम सुख से सम्पन्न हो जाता है ।

उपर्युक्त पाँच धर्म प्रकृतियों एवं पाँच कार्यावस्थाओं का क्रमिक संयोग पंचसन्धियों को उद्भूत करता है ।

कर्पूरमञ्जरी की प्रथम जवनिका में नायिका के दर्शन में लेकर नायिका के प्रणयपत्र द्वारा प्रणयनिवेदन पर्यन्त 'भुजमन्धि' का विस्तार माना जा सकता है । द्वितीय जवनिका से तृतीय जवनिका तक 'प्रतिमुख' सन्धि का निर्देशन है क्योंकि नायक और नायिका परस्पर मिलन के लिये प्रयत्नशील हैं । चतुर्थ जवनिका के प्रथम दृश्य में नायिका के बन्दी होने का वर्णन है । यह 'गर्भमन्धि' है । भैरवानन्द द्वारा नायिका को बन्धनमुक्त कर विवाहपोढिका पर आमीन करने के प्रयाम-पर्यन्त 'अवमशंसन्धि' तथा वहाँ में नायक नायिका के विवाह तक निबंधन सन्धि की व्याप्ति मानी जा सकती है । कथानक का कार्यावस्था, धर्म-प्रकृति एवं सन्धियों में उचित गुम्फन राजशेखर के शिल्प कौशल का प्रमाण है ।

निष्कर्ष : केवल बालरामायण के कथानक में अनावश्यक विस्तार मिलता है जो वस्तु-सविधान में शैलिन्य उत्पन्न कर देता है । इस सृष्टि की उद्देश्य की जाय तो राजशेखर वा वस्तु-सविधान सभी कृतियों में अन्तर्लक्ष्य है । शास्त्रीय पद्धति पर होने के कारण उसमें तत्संबन्धी सभी विज्ञेयतायें यथास्थान मिल जाती हैं ।

राजशेखर के रूपकों में चरित्र-चित्रण:—कथानक पात्रों की महायत्ता से अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है । अतः रूपक का दूसरा तत्व चरित्र-चित्रण भी अवलोकनीय है ।

अन्तपुर की प्रणयलीलाओं वा उद्घाटन करने वाली राजशेखर की दो कृतियों कर्पूरमञ्जरी एवं विद्वज्जालमञ्जरी के पात्रों की मध्या एवं उनके कार्य भी भिन्न नियत हैं । राजा, राजाका सहचर विदूषक, राज्य शासन के कर्मचारी मन्त्री, सदेगवाहक दूत, तथा स्त्री पात्रों में महादेवी एवं दूती, प्रतीहारी, परिचारिका ने ही घटनाचक्र को घागे बढ़ाया है ।

बालरामायण : राम-व्याधिन नाटक होने के कारण राम के जीवन में गवन्धिन मर्त्य लोभ में स्वर्ण पात्रों की सृष्टि दिखाई गई है । बालरामायण के

पात्र आदर्श होते हुए भी मानवीय घरातल पर चलते हैं । वे जन मानस के समीप प्रतीत होते हैं । इसीलिये ६७ पात्रों से युक्त यह नाटक 'पात्रों का जंगल' प्रतीत नहीं होता । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रधान पात्र राम, रावण तथा सीता हैं । इनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण नाटक में बिखरा हुआ है । पात्रों का बहुल्य इस नाटक की विशेषता है । इन तीन पात्रों को छोड़कर शेष पात्र सहायकों की कोटि में रखे जा सकते हैं । नाटक के समस्त पात्रों का वर्गीकरण मानुष एव दिव्य श्रेणी में किया जा सकता है । दिव्य पात्र यदि मर्त्य लोक में अवतरित होता है तो उसे दिव्यमर्त्य कहा जा सकता है तथा यदि मर्त्य मृत्यु के परचात् या कारणवश दिव्य लोक में जाता है तो उसे मर्त्यदिव्य । इस आधार को ध्यान में रखकर पात्रों का विभाजन निम्नानुसार किया गया है ।

		पात्र			
द्विज			दिव्य	मर्त्यदिव्य	दिव्य मर्त्य
	स्त्री	पुरुष			
जटायु			पुरन्दर	दशरथ	
सुवेग	सीता	शुन शेष	चित्रगुप्त	कैकेयी	नारद
चित्र- दालद	प्रतीहारी	मायामय	यमपुरुष		
	हेमप्रभा	रावण			
	सौदामिनी	प्रहस्त			
	प्रमज्निका	जनक			
	सिन्दूरिका	शशानन्द			
	दुर्षणखा	मृगिरीटि	पुरुष		पुरुष
	कैकेयी	जामदग्न्य			वन्दी
	सुमित्रा	भाठर	सुग्रीव		करकक
	कौशल्या	ऋचीक	विभीषण		ककालक
	गया	पुलस्त्य	अगस्ति		कुम्भकर्ण
	यमुना	विश्वामित्र	तिहनाद		चारणमिथुन
	त्रिजटा	राम	वशिष्ठ		कपित्थ
	लका	लक्ष्मण	भरत		दधित्थ
	अलका	माल्यवान्	शत्रुघ्न		हनुमान्
	लोपामुद्रा	मान लि	सुमुख		
		सुमन्त्र	दुमुख		
		वामदेव	समुद्र		
		कर्पूरवण्ड	उपाध्याय		
		चन्दनवण्ड	भयभूति		
		प्रतीहारी	कोदल		

नायक : इस नाटक के नायक राम हैं । नायक के समस्त गुण उनमें विद्यमान हैं । वे आत्मश्लाघा की भावना से रहित हैं । क्षमाशील अत्यन्त गभीर, दुःख सुख में प्रकृतितल्प, स्वाभिमानी किन्तु विनीत हैं । उनका हृदय फोमल है । वे मृत्यु भ्राति के भ्रवसरो पर अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं । ऐसे भ्रवसरो पर कोई उनकी स्तुति करे यह उन्हें सहन नहीं व्यक्ति की स्तुति तो तभी उचित है जब कोई अपना पराक्रम दिखाये । अतः वे रावण-वध तरु अपनी स्तुति पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं ।^१ आत्मश्लाघा के प्रति उनकी विरिक्त इस प्रसंग में दृष्टिगत होती है । नम्रता तो उनके रोम रोम में विद्यमान है । रामधर्म होते हुए भी वे समुद्र से मार्ग देने की अभ्यर्थना करते हैं । परन्तु जब वह मार्ग न देने की घृष्टना कर, उनकी नम्रता को अवहेलित करता है तब विवश होकर उन्हें शस्त्र ग्रहण करना पड़ता है ।^२ परन्तु समुद्र की क्षमा याचना पर वे उसे क्षमादान ही नहीं करते, अपनी ओर से भी उससे क्षमा माँगते हैं ।^३ इस प्रसंग में उनकी विनम्रता, स्वाभिमान, और क्षमाशीलता की चरम सीमा दीख पड़ती है । राम मृदुत्वों के प्रति थदा रखते हैं । यही कारण है कि परशुराम से अघिक शक्तिशाली होने पर भी वे उनके क्रोध के सम्मुख नतमस्तक होकर क्षमा याचना करते हैं ।^४ फिर भी जब परशुराम अहमन्यता नहीं छोड़ते तो वे द्रुमुद्ध के लिये परशुराम को ललकारते भी हैं । इस प्रकार राम में कोमलता एवं कठोरता का उचित मिश्रण है । रामायण के नायक राम की पितृभक्ति की तुलना में बालरामायण के नायक राम की भक्ति कही अघिक है । दशरथ का वेश धारण किये यज्ञ की भी वे अवहेलना नहीं करते और चल पड़ते हैं । यह पितृ-भक्ति की पराकाष्ठा है ।

राम में समस्त गुणों की विद्यमानता देकर राजशेखर ने उनके नायकत्व एवं धार्मिक चरित्र को पुष्ट किया है किन्तु राम का परिवर्ण नाटक में अत्यन्त विलम्ब से दिया गया है । दर्शक उनके गुणों का श्रवण प्रथम अंक में के प्रारम्भ से करते हैं किन्तु उनका प्रत्यक्ष दर्शन चतुर्थ अंक में ही हो पाता है ।

खलनायक : रावण का चित्रण खलनायक के रूप में किया गया है ।

१. बालरामायण अध्याय ७।१८३-ननु रामदेवेन निषिद्धमात्मोपवर्णनमावसरथ स्वर्गारोहणश्रुते रादशकृष्णवन्दम् ।
२. वही अध्याय ७ पृ० १८४-स्मृत्वा तदेहि सगर च भगीरेव च, दृष्ट्वापि वा गग धनुश्च शिलीमुखाश्च ।
३. वही अध्याय ७ पृ० १८९-सगौरव भगवान् रत्नाकर नमस्ते नन्वह प्रशास्यं भगवतः सागरस्य तदेकवारमभिनयो नयो वा क्षम्यता रामस्य ।

नायिका सीता के प्रति अनुराग और उसके भावी पति अर्पान् नायक से स्थायी शत्रुता रावण के खलनायकत्व का प्रमाण है । हमरा सारा व्यापार सीतानुराग पर आधारित है । द्वितीय अंक में सीता का स्मरण तृतीय अंक में सीता स्वयंवर गर्माङ्क में सीता के प्रति उत्सुकता एवं वरण करने वाले के प्रति विद्वेष उमरी इसी भावना को पुष्ट करता है । प्रतिद्वंद्वी राम को देखकर उसका घुन खीन उठता है । सीता के लिये वह घोर अपमान भी सह सकता है ।^१ यह बात वह स्वयं अपने मुख से कहता है ।

सीता के विरह में वह पागलों की तरह प्रताप करता है । प्रकृति की रमणीयता उसे सीता के सौंदर्य का आभास दिनाती है । यन्त्र-जानकी को वास्तविक समझकर वह उसमें प्रणयनिवेदन करता है । यन्त्र-जानकी का रहस्य उद्घाटित होने पर वह मनोविनोदन के लिये पद्मकुम्भों का आधर लेता है किन्तु उसकी विरहवेदना त्रिगुणित होती जाती है । सीता हरण के विचार मदा उसके मरितपक में धूमने रहते हैं । राम के अवरोध को मदा के लिये नष्ट करने की भावना भी उसके मन में स्थायी रूप से बनी रहती है । मेनुपन्थ में सीता के छप मन्त्र का फैलने का उद्देश्य भी यही है । रावण अत्यन्त बीर है । वह यथाधर्मों का अधिष्ठाना है । उसे अपने पराक्रम एवं प्रभुता का अभिमान है ।

अन्य जनों को वह तुच्छ समझता है । "अविमृश्यचारिता हि पुम परं परिभवरथातम् ।"^२ यह उसका आदर्श वाक्य है । ब्रह्मा उसकी सामान्य प्रकृति है । अपने स्वार्थ के लिये अपने ही परिवार को बर्ष देने पर भी वह बेचन रोकर ही सन्नोष कर लेता है । वह खलनायकत्व की बसोटी पर धरा गिरा होता है ।

सीता : नायिका सीता नाटक के पहले पाँचवें और फिर दसवें अंक में रामायण पर दिखाई देती है । वह भी अद्वितीय सुन्दरी है । ब्रह्मा ने मानो गारे सगर के सौन्दर्य को निष्ठांकर सीता में उद्देन दिया है ।

"मगारगारनिषयेन विधानं वेद्या"^३

रावण उसके घुनवें सौन्दर्य को देखकर मूग्ध हो जाता है । सीता को देखकर उसकी

१. आनन्दमाला अध्याय १ पृ० २६—यदा सीता स्नेहो मगारगारो वदन्ती
दम्बन्त ईदुगला वक्षसा मोहा ।

२. आनन्दमाला अध्याय १ पृ० २१—मानुषेण रावण-पराक्रमेण इत्यतो गुणार्णवम्

३. आनन्दमाला अध्याय १ पृ० २३ ।

४. आनन्दमाला अध्याय २ पृ० ४३ ।

वाणी मुखरित हो उठती है । इनकी निरूपण रूप-सम्पदा नाटकीय सघर्ष के मूल में है । प्रथम अंक में स्वयंवर के समय चक्रवर्ती राजशेखर को देखकर वे भय से काँप जाती हैं । शिवधनुष की ओर रावण को बढते हुए देखकर पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं कि इसमें पहले कि रावण धनुष बढाये, वह उसे अपने भीतर समा ले । स्त्रीभुजभ स्नेह में मीठा परिपूर्ण है । विदाई के समय वह रो पडती है, तथा पिता से माण्डवी श्रुतकीर्ति आदि को भी साथ भेजने का अनुरोध करती है । वनगमन प्रसंग में उसके गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ होता है । पथिक बधुएँ उसे शिक्षा देती हैं ।^१ फलों का भोजन, पत्ते जगल में निवास, मृग-चर्म की शय्या पर शयन उनकी दैनन्दिनी चर्या है ।

त्वक्तारवी निवमन मृगचर्म शय्या
गेह गुहा विपुलपद्मपुटा घनाश्रय ।
मूल दल च कुगुम च फल च भोज्य ॥^१
पुत्रस्य जातमटवी गृह मेघिनस्ते

वे पति परायणा एव गृहजनों के प्रति श्रद्धालु हैं । रावण-बध के पश्चात् अग्नि-परीक्षा में निष्कलुष भिन्न होने के पश्चात् अयोध्यागमन के समय उन्होंने भिन्न भिन्न देशों के दर्शन किये किन्तु स्वयंवर प्रसंग में उन्होंने भिन्न-देशीय राजाओं की जो विशेषताये बतलाई हैं वे न केवल उनके राजनीतिक ज्ञान का दर्शन कराती हैं, अपितु सम्पूर्ण देश के जन-जीवन एव उनकी राजनीतिक हानचलो से उसका सुपरिचय व्यक्त करती है ।

जामदग्न्यः परशुराम को भवतारणा द्वारा राजशेखर के नाटक को वीर रस पूर्ण बना दिया है। पहली बार परशुराम का रावण के साथ तीव्र सघर्ष होता है। और दूसरी बार वे राम के साथ सघर्षरत दीर्घ पड़ते हैं। रामायण में वर्णित परशुराम के गुण नाटकीय परशुराम में भी विद्यमान हैं। प्रसंगानुसार इनकी जीवन घटनाओं यथा—पिता की आज्ञा में माला का शिरच्छेद,^२ इककीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करना^३, कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का बध^४ आदि का उद्घाटन किया गया है। वे आजन्म वैद्यानस हैं।^५ वे 'श्रुत्यर्षवीधीगुह'^६ उपाधि से विभूषित हैं।

१. बालरामायण अध्याय ५।३६

२. बालरामायण ६-४० ।

३. वर्ता मातृवर्षनस बालरामायण । २।१३-५० ३२ ४. वही ३।१३-५० ३२

५. त्रिमश्रावधि वंशिता धिनिभुजा २।१३-५० ३२

६. क्षितिभुजामाजन्म वैद्यानस म सकलश्रुत्यर्ष वीधीगुह २।१३-५० ३२ ।

७. " वही

२।१३ ५० ३२

८. स बल महद्विभूत्वा समरसमारम्भ-महापहगुहीत । ४।०-१

वे नित्य धनुर्धारी है। धनुर्दशविद्याओं के मध्येता एव अध्यापक हैं, किन्तु राम द्वारा शिवधनुष के भंग होने की खार्गा मुनेते ही वे समस्त अध्यापन कार्य स्थगित कर देते हैं और युद्ध की तैयारी करते हैं।

दशरथ : वे मशहूरी साम्राट् हैं जो इस जीवन ही में स्वर्ग-लोक की यात्रायें करते हैं, तथा मरणोपरान्त स्वर्ग में रहकर भी मयंलोक की सम्पूर्ण गतिविधियों से मपक बनाये रखते हैं।

दशरथ को सर्वप्रथम पतुयं भ्रंर में राम-सीता-विवाह के परवान् मिथिला में दियाया गया है। पच्छ भ्रंर में दियाया गया है कि उनकी स्वर्ग यात्रा के समय नवली दशरथ राम को निर्वासित कर देते हैं। भ्रत वे इन महान् दुष्कर्म में बलवित नहीं है। राम वनगमन का समाचार सुनकर भी वे जीवित हैं परन्तु सीताहरण का समाचार सुनकर वे सगम में जाकर प्राण त्याग कर देने हैं। परम वीर दशरथ की जीवित्वावस्था में ही सीता-हरण जैसी दुःखदायी घटना हो गई और उनमें क्षत्रियोंचित वीरत्व के स्थान पर असह्य उत्पीडन क्यों जागा ? 'धनु-धनु' बहकर वे चुप क्यों बैठ गये ? लगता है कि नाटककार तत्कालीन पुरपत्वहीन, भ्रवमंष्य चरित्रों को दशरथ के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे, किन्तु यदि यही कारण है तो क्या वे उसे ग्रन्थ उचित व्यक्तित्व के द्वारा अभिव्यक्त नहीं करा सकते थे ? रामायण में दशरथ का स्थान गौरवास्पद है। नाटक में ऐसे पात्रों को इतना गर्हणीय दिया जाना सगत प्रतीत नहीं होता। मातवे भ्रंर में दशरथ की मृत्यु का उल्लेख है। नवम भ्रंर में वे दिव्य रूप में राम-रावण-युद्ध का दर्शन करते हैं।

जनक : नाटक में जनक की भूमिका अत्यल्प है। सीता स्वयंवर एव सीता विवाह प्रसंग में ही वे दिखाई देते हैं। शान्त, दान्त एव विरक्त होने पर भी वे रावण द्वारा की गई शिवधनुष की भ्रवज्ञा से क्रुद्ध होकर शस्त्रग्रहण करने एव उमका निवारण करने के लिए जाप देने तक को तैयार हो जाते हैं। इसका कारण है शिव के प्रति अगाध श्रद्धा और सीता के प्रति अपार स्नेह। सीता को विदाई के समय वे रो पडते हैं।

शतानन्द : शतानन्द और जनक एक-दूसरे पर आश्रित हैं। नाटक में दोनों एक साथ आते और जाने दिखाये गये हैं। सीता स्वयंवर एव सीता विवाह में जनक के कार्य भार को हलका करने की प्रवृत्ति शतानन्द के व्यवहार से प्रबट होती है।

घण्टा : कुलगुरु दक्षिण को केवल प्रथम और अंतिम बार राज्याभिषेक के समय दिखाया गया है ।

नाटक में रामायण युद्ध प्रसंग से संबन्धित जिन पात्रों की गणना की जा सकती है, वे हैं—हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण, दधित्य, कपित्थ, मुमुख, दुर्मुख, सिंहनाद, कुम्भकर्ण, कंकालक एवं करक ।

हनुमान् के चरित्र में राम के प्रति भक्ति-भावना की धर्मव्यक्ति है । त्रेतु-निर्माण तथा सेनासंगठन के प्रति वे अत्यन्त उद्योगशील हैं । सेनापतियों को आदेश देते हैं कि वे पर्वत उठाकर लायें । इनका युद्धों के संचालन में विशेष योगदान है ।

सुग्रीव एवं विभीषण भी राम के सहायक रूप में दृष्टिगत होते हैं । दधित्य एवं कपित्थ दो बानर हैं । जिनका त्रेतु-निर्माण में विशेष महत्त्व है । मुमुख एवं दुर्मुख राक्षस-पक्ष के दूत हैं, जो विजया को युद्ध का समाचार देते रहते हैं । करक और कंकालकदसी कार्य के लिये नियुक्त हैं । वे राक्षसराज को युद्धवार्ता से परिचित रखते हैं ।

सिंहनाद और कुम्भकर्ण राक्षसपरिवार के प्रमुख सदस्य हैं । सिंहनाद रावण का पुत्र है । वह राम तथा लक्ष्मण को खलकारता है । किन्तु शीघ्र ही इसके दण्ड का दान हो जाता है । वह राम के द्वारा मारा जाता है । इसी प्रकार कुम्भकर्ण और मेघनाद की मृत्यु क्रमशः राम और लक्ष्मण द्वारा बतलाई गई है ।

कनिष्य पात्र घटना-निर्देश के रूप में दिखाये गए हैं । प्रथम अंक में शून्य शेष एवं तापस की अवतारणा, द्वितीय अंक में भृंगिरिटि तथा नारद का प्रवेश, तृतीय अंक में मृध्मिद्युन सुवेग तथा चित्रशिखण्ड का प्रदर्शन, चतुर्थ अंक में उपाध्याय शिष्य का दिग्दर्शन, पंचम अंक में मायामय की योजना, छठे अंक में धामदेव, सुमन्त्र एवं रत्नशिखण्ड का प्रवेश, सातवें अंक में मुमुख, दुर्मुख की अवतारणा, नवम अंक में यमपुरुष का अवतरण, तथा दसवें अंक में अलका एवं लंका का मानवीय चित्रण कथानक में समन्वय या सार्थकता की दृष्टि से किया गया है ।

परिचरक वर्ग के अन्तर्गत प्रहरत, प्रतीहार आदि आ सकते हैं । कर्पूरचण्ड तथा चन्दनचण्ड वंशज हैं जो प्रहरों की सूचना आश्रयदाना के यशोगान के साथ देते हैं । बन्दी-नाध्मन्दिन गन्ध्या गद प्रजाति की सूचना देता है । माठर शूचीक एवं पुस्तस्य, विद्यास्नातक हैं ।

इस नाटक में स्त्री पात्रों का बाहुल्य है। सीता की दो नामरहित सखियाँ, उनके साथ रहती हैं। हेमप्रभा भी उनकी अभिन्नहृदया है। सौदामिनी चामर-धारिणी है। सिन्दूरिका यन्त्र-जानकी की सहेली है। प्रभञ्जिका रावण की परिचारिका है।

राजशेखर ने गंगा और यमुना का तथा लंका के मानवीकरण द्वारा जमश. उन्हें समुद्रपत्नियों एवं दशकण्ठपत्नी के रूप में दिखाया गया है। लका दशकण्ठ की मृत्यु पर शोक प्रदर्शित करती हुई आत्महत्या के लिए उद्यत होती है किन्तु अलका उसे मानवना देती है।

कैकयी—कैकयी के चरित्र की विशेषता उसके निर्दोष चित्रण करने में है। राम वन गमन से वह अतिदुःखी है। अपने को कोसती रहती है। राम की माता के रूप में सुमित्रा और कौशल्या का भी चित्रण किया गया है।

त्रिजटा—राक्षसी होते हुए भी त्रिजटा सीता के प्रति सद्भाव रखती है। वह सदा सीता का हित चाहती है। वह सुमुख तथा दुर्मुख की सहायता से नरातक वध, कुम्भकर्ण-जागरण आदि के समाचार सीता को पहुँचाती है। रावण वध के पश्चात् त्रिजटा सीता के साथ पुष्पक पर चढ़कर अयोध्या की यात्रा करती है।

शूर्पणखा—रावण की बहिन है। वह राजवायु की सपादयित्री भी है। सीताहरण के लिए वह भूमिका बनाती है। कैकयी के वेश में वह मफलतापूर्वक राम-निष्कासन की योजना का क्रियान्वयन करती है। इस नाटक में शूर्पणखा की सक्रिय भूमिका है।

लोपामुद्रा—राम अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के आश्रम में दो मिनट के लिए जाते हैं। आशीर्वाद लेकर पुन लौट आते हैं। लोपामुद्रा साध्वी है तथा सौजन्य की भूति बतलाई गई है।

राजशेखर ने 'बालरामायण' के पात्रों की विशेषतायें अनेक पूर्ववर्ती राम-वाक्यों से चुनी हैं। नवीनता को उद्भूत करने के लिए उन्होंने कतिपय पात्रों में एक विशेषता बतलाई है जैसे रावण के चरित्र में शृंगारिक भावनाओं का प्राधान्य, दशरथ में अपौरुष, कैकयी का निर्दोषत्व, आदि।

विद्वद्दालभजिका :

नेता—प्रमुख पुरुष पात्र राजा विद्याधरमन्त्र है। यह धीरललित नायक है। धीरललित नायक निश्चिन्त होता है। कलाभो में उसकी धासक्ति रहती है।

१ निश्चिन्तो मूढरनिष्ठ कलापरो धीरललित. स्यात् । साहित्यदर्पण परिच्छेद ३-३३।३४

वह मुखौ तथा मृदु स्वभाव का होता है। राजा विद्याधरमल्ल, राज्य की चिन्ता में मुक्त है। राज्य का सारा भार उसने अपने योग्य मंत्री भागुरापण को सौंप दिया है। निश्चिन्त होकर वह अपना अधिकांश समय प्रमोदोद्यान में वनमन्त्रीप्रादि ऋगुणों की चर्चा करता हुआ, विविध मीठाभोजन में रूचि लेता हुआ व्यतीत करता है। वह नायिका मृगाकावली के सौन्दर्य का रातदिन स्मरण करता है, किन्तु अपनी रानी को भी दुःखी नहीं देख सक्ता। वह उसे भी मयाशक्ति प्रमत्त रखने का प्रयास करता है। विद्याधरमल्ल कर्ताप्रेमी है, अद्वारह विधियों का ज्ञान है। "राज्य में माम्नीयं, एव छन्दो-रीति-गुणों का विन्यास" उसे शीघ्र ही प्रभावित करता है।

दशरूपकवार ने मृदु का अर्थ—शृंगार-प्रधान एव मुकुमार सत्वाचार बतलाया है—“शृंगारप्रधानत्वाच्च मुकुमारसत्वाचारो मृदुरिति खलितः।”^१ राजा विद्याधरमल्ल अत्यधिक शृंगारी है—उसके अन्त पुर में हजारों राणियाँ हैं तथापि स्वप्न-श्रुति नायिका के लिए वह दुःखी है।

“अन्नेऽग्निवासाहस्मपरिवारस्म महारास्म किं तीए विशा विमूरदिति ?”

चण्डमहासेन नामक कुम्भलनरेश की कन्या कुम्भलयमाता स्नान करके निकली ही थी कि राजा ने उसे देखा और उस पर मुग्ध हो गया।

“चण्डमहासेनो नाम रामा—सस्म दुहिषा कुम्भलयमाता नाम गम्भदा-भञ्जशृतिष्णा देवदिहा हिम्रम्र च मे पविटा।”

नाटिका के विषय में धनञ्जय एवं विश्वनाथ का कथन है “अन्तपुर में नायिका को देखने सुनने से घ्राहृष्ट हुआ नायक नायिका से छिपकर डरता-डरता प्रेम करता है”—विद्याधरमल्ल के विषय में वह बात प्रिलुप्त मध्य है। वह नायिका का रातदिन चिन्तन करता है किन्तु नायिका जैसे ही उसमें मिनने आती है और उसे नटारानी के आने की सूचना मिलते ही, वह तुरन्त वहाँ से चल देता है।

विभ्रमल्लेता विद्याधरमल्ल की प्रधान महिषी है। वह ज्येष्ठा प्रणल्पा तथा नृपवशका है। राजा के शृंगारी स्वभाव को जानकर वह कुम्भलयमाता का विवाह राजा से कर देती है। परन्तु वह मानवती भी है। राजा के मुग्ध में दम्प्याभावित और अशानुदित विषय सबोधन सुनकर अन्त पुर को चल देती है।^२ स्नेह पात्र राणियों के सम्मान का भी वह ध्यान रखती है। विद्रूपक द्वारा मंथला का मजाह उदासि जाने पर श्रुद्ध हो जाती है।^३

१ दशरूपक प्रकाश-१-२।३

२ विद्वशालभजिवा-१-१८।१९

३ विद्वशालभजिवा अंक १-२

बात जानने का प्रयत्न करता है। राजा भी उसे भ्रान्ता रहस्य प्रकट कर मन हल्ला कर देता है।

विदूषक !—अहो अस्म हिअभक्षेत्रो ता कि णु मु एदं—

ता जयात्तुंयुय भ्रापकत्र—तो वज्जरहस्सेण मभावेदु म पिअवभ्रत्तो ।
राजा—अये चारायण । सये । कथं न कथमाभि, तपूभत्मुहत्तचारित्तरहस्य हि
चेत सनिभक्त्तचिन्ताभारमिव भविष्यति ।^१

वह भी राजा को सदा निष्पन्न सलाह देता है। राजा के अनागरिकत्व में पीड़ित रानी भ्रमसन्न होकर चली जाती है। राजा उसकी स्थिति पर ध्यान नहीं देता तब विदूषक स्पष्ट शब्दों में उसकी भ्रमंता करता है। रानी के प्रति उसके मन में आदर है किन्तु जब रानी पशपात करती है तब वह उसके क्रोधित होने की या रौने की भी पर्वाह नहीं करता।

चारायण जानि का ब्राह्मण है। वह सदा यज्ञोपवीत और हाथ में वज्रदण्ड धारण किये रहता है।

एक दासी विदूषक को दुर्वासा कहती है जिसमें उसके भोत्री होत का तथा मलिन वस्त्र धारण करने का भवेत् मिलता है। संभवतः चारायण विरूप होगा। राजा और विदूषक के कथन से इसकी पुष्टि होती है—

राजा—मये । त्वमंपोऽभिलिखित ।

विदूषक—वाह जाणितो आनिहि दुं । ब्रह्मणी जाणादि जविदनोह, सा मा
भणदि तुमं पच्छक्खो कामदेवात्ति ।

राजा—अए रिमुअवने सुको वदति ?

विदूषक—कि विअ ?

राजा—अस्ति भवान् देव. कि पुनर्भुंगिरिटि ।

विदूषक.—को दुज्जणअयगाण कण्ण देद ।

वह भी एव भोजनभट्ट है। मोरत उसे अधिक प्रिय है—एगो सिक्किण अदद्धाहि मोरार्गहि नाम उपगिमत्तमि^२ — । वह उपमायें भी भोग्य पदार्थों की देता है। मिन्दुवार पुण्य उमे भात, शशाक के मुच्छ नव-निर्मित घृत, वामली पुण्य ममूर तथा नवमल्लिका दधि के रामान दिपती हैं। “मंवाग्धि जणशुत्थ भुज्ज विपि दिद” ।^३

१ विद्वशालभजिका-१-१४१५

२ कर्पूरमजरी १-२६, २७, २९, ३२, ३३

वह भीरुता की व्याधि से भी ग्रस्त है। उसे सन्ध्या के समय निर्जन चौकी के पास ब्रह्मराक्षसों की बोली सुनाई देती है। सन्ध्या भूत-पिशाचों का आवास स्थान है। इस धारणा से वह अत्यधिक परेशान दिखाई देता है।

इस नाटिका से भागुरावण नामक मन्त्री को निकाल दिया जाय तो इस भाटिका का आरम्भ और अन्तान प्रस्तावना के साथ ही साथ हो जायगा। मृगाकावली तथा राजा के पारस्परिक अनुराग के लिए उचित वातावरण का निर्माण भागुरावण ही के माध्यम से होता है। अतुल्य इस प्रकार यह राजसन्धि का दायित्व निभाता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि मृगाकावली में विवाह करते ही राजा अन्यायम चक्रवर्ती बन जायगा। अन्त में वह इस कार्य में सफल होता है। यह बुद्धिमान और नीतिज्ञ है। उसकी नीतिमत्ता से ही पश्चिम में मगध के उद्गम में लेकर पूर्व में ताक्षणी तक का साम्राज्य कमचूरितिलक के अक्षरवर्ष के अधीन हो गया।

चेटीश्वर—नायक नाटिका एवं देवी की परिचर्या का कार्य चेटीश्वर करता था। मृगाकावली की महायिका विलक्षणा है। राजा की परिचारिका का काम मेखला परती है। कुरगिका, तरगिका और सुतादाणा सन्धेन-बहन में निपुण है। नाटिका में विलक्षणा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

अन्य पात्र—नन्देशवाहक प्रतीहारी, जेधवाहक कुरगक, विदूषक पत्नी ब्राह्मणी एवं कुबलयमाला कुछ समय के लिए रगमच पर दिखाई देते हैं।

कुबलयमाला कुन्तलराज चण्डमहासेन की पुत्री है। राजा उस पर आसक्त है, किन्तु कुबलयमाला को हम केवल विवाह के अवसर पर ही रगभूमि में देखते हैं।

कर्पूरमंजरी :

दृश्य काव्य में कथानक का सौन्दर्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में निखरता है। इन नाटकों में एक भी पात्र अनुपयुक्त या अनावश्यक नहीं है। राजा चण्डपाल, राजा विभ्रमलेखा, नायिका कर्पूरमंजरी, विदूषक कपिल, भैरवानन्द, विचक्षणा, आदि की गणना प्रमुख पात्रों में की जा सकती है एवं मुखलक्षणा प्रतीहारी को गौण पात्रों में।

नायक : चण्डपाल का स्वामी चण्डपाल इस नाटक का नायक है। वीर मल्लिह नायक के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। वह सौन्दर्य प्रेमी है। वमन का

प्राकृतिक सौन्दर्य उसमें नूतन उत्साह का संचार करता है। वसन्त-विषयक उसके उद्गार देखिए—

पिए विभ्रम नेहए—एकको अहं बड्ढावधो तुज्ज । विभ्रममग्वप्प-
अट्टाविभ्रं तरुणीणं, यहावभ्र मलयभाहृदं दोलिदाणच्चणीण, चारु-
प्पपचिद पचम, कलअठि कठकंदलेसु कदलिअकदप्पककोअड दडडडिद
चडिमं, सिणिद्वधुं वसुधरा पुरधीरविसारिअप्पसिदिप्पमाणे प्रच्छिणी
महुच्चव अहिच्छ पेक्खदु ।

प्रिय विभ्रमलेख । वसन्त वर्णन से मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूँ ।

तरुणियों में विलास और गर्व को उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं में लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचानेवाशा, कोचिलो के कण्ठ समूह में पचम स्वर प्रेरित करने वाला, नव प्रादुर्भूत कामदेव के धनुष के दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रिय-सदधी कोप को दूर करने वाला, दन्धु-दान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला, वसुन्धरा स्त्री रमणी का यह वसन्तोत्सव अपनी आँखों को हथेली बराबर फैलाकर इच्छानुसार देखे ।

वह सुन्दरी नायिका के प्रथम दर्शन में ही उस पर अनरक्त हो जाता है और "अहह अच्चरिअ अच्चरिअ" कहकर प्रशासात्मक विस्मय व्यक्त करता है ।

वह कला का भी पारखी है। मित्र विदूषक और विलासना के कवित्व की रसानुकूल सराहना तथा अवसर आने पर तुटियों का सकेत उसकी मर्मज्ञता को प्रकट करता है। शृंगारिक वर्णनों में उसने जिन छन्दों का प्रयोग किया है, तथा जिस शैली को अपनाया है वह उसकी विद्वत्ता की छौतक है। वह विनोदी एव विलासी है। प्रारम्भ से अन्त तक हम उसे प्रमोदवनों, लताकुञ्जों, या रत्न-चतुरिफुका में पाते हैं। नायिका के दर्शन न होने से विरह वेदना की अनुभूति करने वाला यह नायक वास्तव में शृंगारी है।

विभ्रमलेखा : विभ्रमलेखा प्रधान महिषी या पट्टरानी है। स्वकीया मध्या नायिका से सारे गुण इसमें विद्यमान हैं। मध्या नायिका विचित्र रति-सीनाओं में निपुण होती है। उसकी काम रिपासा बड़ी हुई दिखाई देती है। उसका यौवन विकसित रहता है। प्रणयालाप में उसे विशेष हिचक नहीं होती और न उसे रति में अधिक लज्जा का अनुभव होना है। वसन्त के प्रति उसके उद्गारों में प्रतीत होता है कि वह काम की क्षुधा से पीड़ित है। वह कहती है—

कराने में उसका प्रमुख हाथ है। वह तीखे व्याप्यो से शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। राजा-रानी को बटु शब्द गुनाने में भी बगर नहीं रखता किन्तु अबसर आने पर उस विषमता को भूलकर मित्रता स्थापित कर लेता है।

विदूषक—ईरिम रामउल दूरे बग्जीमदि, अहि दामी बम्हणेण मम पडिप्यदा करेदि ।—गुण आगमिस्स अण्णे को वि पिम्वद्यस्सो अण्णेमीधदु—

इन बचनों के उपरान्त विदूषक चला जाता है। किन्तु भैरवानन्द के आगमन पर सारा क्रोध भूलकर फिर लौट आता है। क्रोध में वह ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करता है, जो ग्राम्य से प्रतीत होते हैं, किन्तु वह उच्चस्तरीय सवाद में भी दक्ष है। यह बात राजा के साथ प्रेमविषयक चर्चा के प्रसंग एवं निदाघ में उपयुक्त सामग्री के महत्व प्रसंग में दिखाई देती है।

ब्राह्मण होने के कारण वह राजपुरोहित का काम सम्हालता है। उसकी उक्तियाँ सट्टक में हास्यरस उत्पन्न करने वाले तत्वों में प्रमुख हैं।

भैरवानन्द : यह पाखण्डी चरित्र सट्टक में सोद्देश्य अवतरित किया गया है। सट्टक के प्राण इसी के हाथों में है। अभिसन्धि-प्रवीण भैरवानन्द नायिका को लाता है और नायक से विवाह करवाता है। वह दम्भी, आत्मबचक और एक प्रकार से नास्तिक है। उसके सिद्धान्त जनगण के लिए घातक हैं—

रडा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं मस पिज्जए छज्जए अ ।
भिक्षा भोज्ज चम्मखड च सेज्जा
कोलो धम्मो वस्स णी भादि रम्मो ॥

रण्डा, चण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को पत्नी रूप में ग्रहण करने की शिक्षा देने वाले एवं मद्यपान को प्रोत्साहन देने वाले सम्प्रदाय का वह अनुयायी है। तथापि इस सट्टक की कुजी भी वही है। यदि भैरवानन्द न होता तो नायिका का वही पता ही न चलता। वस्तुतः नायक नायिका का प्रणय ही इस सट्टक की केन्द्रीय वस्तु है। इस दृष्टि में पाखण्डी एवं दम्भी होत हुए भी भैरवानन्द नाटक के लिए अत्यन्त उपादेय पात्र है।

अन्य गौण पात्रों में विचक्षणा, सुलक्षणा, सारंगिका की गणना की जा सकती है। विचक्षणा एवं सारंगिका रानी की सखियाँ हैं। विचक्षणा राजा एवं कर्पूरमञ्जरी की भी सहायिका है। कर्पूरमञ्जरी के प्रत्येक कार्य में वह सहायता करती है।

कर्पूरचण्ड और रत्नचण्ड बन्दी है, जो समय समय पर सन्ध्या, माध्यन्दिन एवं चन्द्रोदय आदि की सूचना देते हैं।

इस मटक के सभी पात्र अपना अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य लिये हुए हैं। इन पात्रों की सहायता से कथानक चक्र अपने लक्ष्य को प्राप्त करता दिखाई देता है। राजशेखर की चरित्र-सृष्टि के भ्रम पर दृष्टिपात करने पर हम देख सकते हैं कि उनके पात्र या तो परिस्थितियों को बनाते हैं या परिस्थितियाँ उन्हें गड़ती हैं। इनमें विद्वशालभजिवा का मन्त्री भागुरायण एवं कर्पूरमजरी का भैरवानन्द प्रथम श्रेणी में आते हैं। उक्त कृतियों के नायक नायिका द्वितीय श्रेणी में। यद्यपि इन कृतियों के विद्वपक एवं महादेवियाँ ऐसे पात्र हैं जो बने बनावे चौखटे में ठीक बैठ जाते हैं तथापि राजशेखर की प्रचुर पात्र-सृष्टि सरम और सनु-लित है।

राजशेखर के रूपकों में रस-परिपाक :

राजशेखर की कृतियों में नवरसों की अभिव्यजना मिलती है। 'बालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होंने "धीराम्बुतप्रायरगप्रबन्धे" कहकर उक्त प्रबन्ध में वीर और अद्भुत रस को प्राथमिकता दी है तथापि उसमें अन्य रसों का भी परिपाक दिखाई देता है। उनकी अन्य दो कृतियाँ 'कर्पूरमजरी' एवं 'विद्वशालभजिवा' शृंगार रस में परिपूर्ण हैं। अतः हम कह सकते हैं कि इनकी कृतियों में प्रमुख रूप में जिन रसों की अभिव्यजना है—वे हैं शृंगार वीर और अद्भुत। इनके अतिरिक्त प्रमानुमार वरुण, वीभन्स, भयानक, रोद, हास्य और शान्त रस भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

शृंगार . शृंगार के दो पक्ष होते हैं—सयोग और वियोग। सयोग में नायक-नायिका का मिलन सुखात्मक अनुभूति प्रदान करता है। वियोग में प्रिय के अभाव में हृदय तीव्र वेदना में सतप्त रहता है।

बालरामायण नाटक में धन्वनायक रावण आरम्भ से धन्व नरु सीता के विरह में व्याकुल है। धन उमकी वेदना एवं विनाय विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति करते हैं। सीता के प्रथम दर्शन में ही वह कामपीडित हो उठता है। फलतः उसके अभाव में प्रकृति के ये उपादान जिनमें सीता के अगों का माम्य उसे दिग्गता है, उगे सीता जैसे ही प्रतीत होते हैं।

कारणों में उसका प्रमुख हाथ है। यह तीखे व्यंग्यो से शीघ्र ही उन्नेजित हो जाता है। राजा-रानी को कटु शब्द सुनाने में भी कसर नहीं रखता किन्तु अचभर घाने पर उस विपमता को भूलकर मित्रता स्थापित कर लेता है।

विदूषकः—ईरिस रामउल दूरे बज्जीअदि, अहि दामी बम्हणेण मम पहिप्पद्धा करेदि ।—गुण आगमिस्स अण्णे को वि पिअवअस्सो अण्णेषीअदु—

इन वचनों के उपरान्त विदूषक चला जाता है। किन्तु भैरवानन्द के आगमन पर मारा क्रोध भूलकर फिर लौट आता है। क्रोध में वह ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करता है, जो ग्राम्य में प्रतीत होते हैं, किन्तु वह उच्चस्तरीय सवाद में भी दक्ष है। यह बात राजा के साथ प्रेमविषयक चर्चा के प्रसंग एवं निदाघ में उपपुत्र सामर्थ्य के महत्व प्रसंग में दिखाई देती है।

ब्राह्मण होने के कारण वह राजपुरोहित का काम सम्हालता है। उसकी उक्तियाँ सट्टक में हास्यरस उत्पन्न करने वाले तत्वों में प्रमुख हैं।

भैरवानन्द . यह पाखण्डी चरित्र सट्टक में सोदेश्य अक्षरित किया गया है। सट्टक के प्राण इसी के हाथों में है। अभिसाधि-प्रवीण भैरवानन्द नायिका को लाता है और नायक से विवाह करवाता है। वह दम्भी, आत्मवचक और एक प्रकार से नास्तिक है। उसके सिद्धान्त जनगण के लिए घातक हैं—

रटा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं मम पिज्जए खज्जए अ ।
भिक्षा भोज्ज चम्मखड च मेज्जा
कोलो धम्मो वरस णां भादि रम्मो ॥

रण्डा, चण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को पत्नी रूप में ग्रहण करने की शिक्षा देने वाले एवं मद्यपान को प्रोत्साहन देने वाले सम्प्रदाय का वह अनुयायी है। तथापि इस सट्टक की कुञ्जी भी वही है। यदि भैरवानन्द न होता तो नायिका का वही पता ही न चलता। वस्तुन नायक नायिका का प्रणय ही इस सट्टक की केन्द्रीय वस्तु है। इस दृष्टि से पाखण्डी एवं दम्भी होने हुए भी भैरवानन्द नाटक के लिए अत्यन्त उपादेय पात्र है।

अन्य गौण पात्रों में विचक्षणा, गुणक्षणा, शारंगिका की गणना की जा सकती है। विचक्षणा एवं शारंगिका रानी की सखियाँ हैं। विचक्षणा राजा एवं कर्पूरमञ्जरी की भी सहायिका है। कर्पूरमञ्जरी के प्रत्येक क्षण में यह महायत्ना करती है।

यथा—

इय भू गश्रेणी न पुनरलकानां विरचना ।

इद हेमाम्भोज विकसति न सीता मुखमिदम् ॥^१

अर्थात् यह भ्रमरपक्ति है सीता की प्रलकरचना नहीं । यह सुवर्णकमल खिला है, सीता का मुख नहीं—

सारग-दृष्टिलसिते कलभापिते च ।

पुस्कोकिल-स्मितसरोरुहसौरभे च ॥^२

मृगनयनों में दृष्टि की कान्ति, कोकिलकण्ठ में कलभापित एव सरोरुह के मोरभ में स्मित की छटा देखकर उसे यत्किंचित सतोष मिलता है, लेकिन—

इयं सता कापि निरन्तरच्छदा ।

प्रसूनगन्धाहृतपट्टपदावलिः ।

अहो दधाना हरित नवाशुकम्

न मैथिली नीलदुकूलगुण्ठना ॥^३

नील-परिधान पहनने वाली मैथिली कहाँ ? यह तो भू गो से भावृत लता है । हृदय को धीरज दिलाने वाली भ्रान्ति नष्ट हो गई, विरस और तीव्र हो रहा है । इस प्रकार रावण की सारी उन्मादावस्था एव प्रलाप विप्रलम्भ शृंगार की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति कर रहे हैं ।

बालरामायण के नायक रावण, कर्पूरमजरी के नायक चण्डपाल और नायिका कर्पूरमजरी तथा विद्विग्णभजिका के नायक वियाधरमल्ल और नायिका भृगाकावली को विरह की समस्त दशाओं में गुजरना पड़ता है । देखिए, स्मृति की दशा—

न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता स्वस्था नितम्बस्वली

स्तोकोद्वेल्लवली-तरगमुदरं कण्ठस्तिर्यक् स्थितः ।

वेण्या पुनराननेतन्दुभ्रमणे लब्ध स्तनालिगनम् ॥

जातास्तस्या इत्तुविधा तनुलता निध्याययत्या माम् ॥^४

उन्माद की अवस्था भी दर्शनीय है—

आत्थानीजनलोचनाना बहना लावण्यवल्लोलिनी—

लीलाविभ्रमहासयासनगरी सौभाग्यपारस्थिता

१. वा० रा० ५।६४ २. वा० रा० ५।६५

३. वा० रा० ५।७२ ४. क० म० २।१

नेत्रेन्द्रीवर्दीभिरा मम पुन शृंगारमञ्जीवनी
संजाताय मन्मथेन धनुषि तीक्ष्ण गरः पुद्गिधतः ॥ १

व्याधि का चित्र द्रष्टव्य है—

तागोम्भः प्रगृतिम्भः प्रचयवान् वाप्य प्रणालोचितः
ध्यासाः प्रेङ्गितहारपटिलतिनाः पाण्डिन्नि मन्मं वपुः ।
किं धान्यन् कथयामि रात्रिमथिला तन्मायंवातायने
हस्तच्छत्रनिवारितेन्दु मटमस्तस्याः स्थितिकेतेने ॥१

चिरह में भीतल चन्द्रमा भग्नि-सा दाहक प्रतीत होता है । देखिए नायिका
मृगाशावली की दशा—

'सोष्ठादुद्भिजते त्यक्त्युपवनं द्रष्टि प्रभामेन्दवी ।
धारात् सस्यति चित्रेनेनिमदगो वेत्त विष मन्वने
धारते केवलमग्निनीरिगतवप्रकारकम्पातने
सहस्योत्तनमसादाहविरमापतेन चित्तेन मा ॥१

मृगाशावली महल में रहने में उद्भिगत होती है । जानन को छोड़ देनी है ।
चित्रोत्तल कामरु पागपूह में भी वह बहूत दुःखी है । यन्त्राभूषण को भी विष सम-
सायी है । नायक को बन्धना में घोसी हुई वह कमजिनी के पत्नी पर पडी रहती है ।

वह चन्द्र को बोलने हुए बहती है कि हे अग्रम चन्द्र ' त्रिय की चिरहाग्नि में
पागल मेरे शरीर का स्थान बिनोदार्थ भी मत कर ।

त्रियविषहृष्टोत्पात मर्मगमदगरेणा
मयि ह्यव द्रियोत्ता । मा ह्युम श्रीदगार्ज
इह हि तव सुदन्त प्लोदरीडो भद्रने
दक्षरदमुतापीराणमुष्ठा मद्रुता *

चिरहाधा के भगद्व होने पर वह सोने लगती है । नायिका का यह वदन
चिरहाधा में नार का पुट बनता है ।

नायिका हनुमन्वरी की अग्रधिका किन्तनीय दगा मद्रो रीण पानी है—

मद्रु चिरमन्तिगारि रीणा तगदगडा
मा मन्विणान्ति कागदगा मन्वि ।
मद्रु मद्रु विधेण मीध उन्विचिदिगु
मद्रु मद्रु मद्रु मद्रु मद्रु मद्रु मद्रु ॥१

धर्मात् विरह मे दिन और रात जितने लम्बे हो गए हैं वह उतनी ही लम्बी-
बासी गायें छोड़ रही है। वृषता इतनी अधिग्रहण गई है कि मत्तन धरने वाले
धार्मुओं के गाय मणिवरण भी गिर रहे हैं। धार क्या कहें, शरीर की बनी हुई
दुबलता के साथ उमकी जीवितशा भी घटती जा रही है।

विप्रमम्भ भृगार का चितना मधुर परिपाक है? विरह की अनिम दशा मृत्यु
को रक्षण करने की धोर धरार हो रही है।

वरण-रम : राजशेखर वरण रम के आविष्करण मे भी मिद्रहृत हैं। वरण
रम के अनुभावों का चित्रण निम्न पद्य में रितना मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी है।

राजप्रमादो मे पत्नी हुई योमताभी सीता अयोध्या से बाहर तीन चार पग ही
चलती है कि दबकर राम से पूछती है कि 'अभी धोर वितना धनना है।' पत्न
राम का हृदय द्रवित हो जाता है। धार्मों से धार्मुओं की शडी लग जाती है। नि ना
दारण प्रमग है—

'सद्यः पुरीपरिमरेऽपि शिरीषमृद्वी ।

गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता ॥

गन्तव्यमस्ति रिमदित्यगृद्भ्रुवाणा ।

रामाश्रुणः कृतवती प्रयमावतारम् ॥ १

महाकवि तुलसीदास ने इस पद्य का छायानुवाद इस प्रकार किया है—

पुरते निवसी रघुवीरदधू धरि धीर दये मग मे डग डू,
झलकी भरि भालवनी जलकी पट सूख गये धधराधर वै
पिरि ब्रूति है चरुनो अत्र वेतव पर्णकुटी वगिर्हवित हूँ
सिय की लखि आतुरता पिय की अंधिया अति चार चली जल र्वै ।

सीता की विदाई के अवसर पर सासारिक विषयों मे विमुक्त विश्वामित्र की
भी दशा धाकुल हो जाती है। धार्मों से अश्रु की अविरलधारा बह चलती! —

मासारिक वचोभिरते सीताविश्लेषजग्मिः ।

द्रवतीव मनो वाष्पैर्विश्वामित्रमुनेरपि ॥२

रादण के हृदय मे भी शोक की अनुभूति द्वारा वयि मे वरण रस की चम्पारी
व्यजना की है।

स मरत परिचार के दिनाश से रावण को असह्य दुःख होता है। वह बारबार
मूठित हो जाता है और चेतना आने पर साधारण ध्यवित की तरह अन्यन करने
लगता है।

रावण—मालव—

मूर्च्छानिमग्णवज्रगुह्यमवरोक्तमिव ।
स्वदन्तिदन्तवलयं कृतकद्रुणधी ।
यामूलतो मदनुजस्य भुजोभुजग ।
भीमाकृतिर्गतिरिति हा नुगरेण लून ।^१

इति मूर्च्छति—

रावण—हा बला । का बला दशकण्ठेन गीतोऽस्ति ।

इति रोचति—

मूर्च्छा, चेतना एवं अन्दन का यह क्रम किस कठोर हृदय को द्रवित नहीं करता ?

गीता को अग्नि में प्रवेश करने देश रावण-पत्नियों के हृदय दलित हो गए । रावण की मृत्यु के पश्चान् शोकाभिमूढा लला वन प्रत्याग करण रण की चरण सीमा आम्बित करता है ।

वीररम—राजसेखर ने वीररम का सजीव वर्णन किया है । वीरो का गर्वोक्ति-गर्वन, अस्त्रों का दाकार, म्यन्दनों की खनघनाहट और बाणों की सन-गनाहट ये सब हमारे सामने युद्धभूमि का मञ्चा चित्र उभरान्वित करते हैं ।

युद्ध में पूर्व राम लक्ष्मण को अन्तिम बार चेतावनी दे रहे हैं—

‘भो लक्ष्मणेश्वर दीपना जगज्जा राम स्वयं यावने
कोऽपि ते मनिविधम स्मर नय तादासि त्रिविद्गणम् ।
सैव सेतुं पश्यदूषणत्रिशिखरा लज्जाम्बुजा पटविव ।
पत्नी नीर सहिष्यैः मम धनुर्ग्राह्यवन्धुपुत्र ॥’

अर्थात् भरे लक्षणां । गीता को र दो । यह राम तुमसे स्वयं यावना कर रहा है तुमसे यह वीरा अथ हो गया है । नीति मार्ग का अनुसरण करो । अभी भी कुछ शिक्का गरी है । अन्वयत गर-दूषण और त्रिशिखा के मन्दिर में निपत धनुष की इस पर पड़ा हुआ काग इन रहत नहीं कर रहेगा । रावण को लक्ष्मणेश्वर के प्रति कती गई यह अन्तिम वीररम के परिभाष का मुन्दर उदाहरण है ।

इसी प्रकार सिंहनाद और राम, राम और परशुराम तथा रावण और परशुराम के संवाद वीररस से पूर्ण हैं ।

हास्य : राजशेखर ने अपनी नाटिकाओं में अनेक स्थानों पर हास्य रस का पुट दिया है । इनके हास्योत्पादन का पात्र विदूषक चारायण और कर्पिजन है । दोनों ब्राह्मण जाति के होते हुए भी निरक्षर भट्टाचार्य हैं । दोनों की विरपता हास्य का कारण बन जाती है ।

भद्रमुत्त : योगी भैरवानन्द द्वारा नायिका का अघतारण, सीता के मायावी मस्तक का क्षेपण एवं विविध अस्त्रों का प्रयोग भद्रमुत्त रस की व्यञ्जना करता है ।

वीभत्स : ताडकावध प्रसंग वीभत्स रस को पुष्ट करता है ।

युद्ध की विभीषिकाएँ, भयानक, रस, परशुराम एवं राम का वार्तालाप रौद्र रस को तथा आश्रम का पावन वातावरण शान्त रस को पुष्ट करता है । इस प्रकार राजशेखर की रचनाओं में रस का यथावसर प्रसंगानुबूल परिपाक दृष्टिगत होता है ।

राजशेखर का प्रकृति-चित्रण :

राजशेखर की नाटिका एवं सट्टक में अन्तःपुर की प्रणयलीला का चित्रण है । इसलिये सामान्यतः उसका वातावरण प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्रसे भिन्न है । प्रकृति के केवल उनी रूप का दर्शन हमें मिलता है जिसे में उसे स्वच्छन्द विकास का अवसर नहीं और जो मालियों द्वारा नियंत्रित होकर राजोद्यान तक ही सीमित है । यह प्रकृति राजा के प्रेम-व्यापारों की उद्दीपिका एवं प्रेम को क्रीडास्थली है ।

राजशेखर कुशल शिल्पी हैं । उनकी कुशलता का परिचय निम्न सूत्रस्त-वर्णन देखिये—

लोम्राण लोम्रणोर्हि मह कमलवण अद्भुतं कुणतो
मुचतो तिब्बभावो मह महरिस माणिणीमाणसेर्हि
मजिठ्ठा रत्तमुत्तच्छविकिरणचमो चक्रुवाएकमित्तो
जादो अत्याचलरथो उवह दिणमणो पक्कणारगणो ॥१

अर्थात् मजिठ्ठा रस से रंजित मूत्रों की तरह कान्तिमान, किरणों को धारण करने वाला, चक्रवाक पक्षियों का परममित्र, तथा पकी हुई नारंगी के समान लाल और

पीला मूर्धे खोगों की छावों के माथ माथ कमरबन को निमीरिन मा करता हुआ मानितियों के भान के माथ माथ धगने तेज को घटाया हुआ एरुम घन्गाचन की घोर जा रहा है ।

प्रकृति के प्रभाव घोर सौंदर्य वा स्वाभाविक विचित्र उक्त श्लोक में हुआ है तथा प्रकृति के माध्यम में चण्डगान एवं कर्पूरमजरी के वियोग वा गहन भी ।

राजशेखर को मेरुनी तुमिरा की भानि उद्देश्यों के सजीव विर धारण में समर्थ है । वनप्रदेश वा वर्णन देखिये—

ताम्रूतीनद्धमुग्धममून-तरुनप्रमनरे तानुगामि
 पायं पायं कन्वापीठतवदभदन मारिसेनीकन्वाग्भः ।
 मेध्यन्ता ध्योमयाद्राश्रमजलजयिन मन्वमीमन्निनीमि ।
 शंस्पृह-स्यूहनेली-मन्निन-सृष्टुहारावरान्ता वनान्ता ॥^१

धर्मान् गान की बेलों से घिरे हुए गुफारी के वृक्षां के नीचे पड़े हुए शिखरों के ऊपर बैठकर बेलों के पत्तों के दोने बनाकर शक्तिगत के पत्तों वा पानी की पीकर ताज में मिथिला तक धाराश मार्ग में बरी गई यात्रा के कारण उत्पन्न परीने को गुफा देने जाने घोर कौघो की बीजा के काँव काँव से गुंजते हुए गुन्दर वन प्रदेशों वा उपवास हमारी सेना की महिलायें अपने गह्वरों के माथ करे ।

यहाँ वन प्रदेश की प्राकृतिक सुगमा अत्यन्त सादक है वन शणपत्रीका वा उदीगन कर रही है ।

राजशेखर द्वारा प्रकृति के मूकम निरीक्षण वा चित्र चन्द्रोदय के एक वर्णन में लीजिये—

अन्धकार के लगातार धडने से भूमण्डल मरितन और वृक्ष की तरह नीला दिखाई देता है । तब पूर्व दिशा चौदनी के कारण नये भोजपत्र के समान पीली पड गई है । मुचुतुन्द वृक्ष की बेसर के समान शोभा वाली किरणों को वर्गात्ता हुआ चन्द्रमा धीरे धीरे अपनी कलाभो से पूर्ण हो गया है ।^२

मृगोले तिमिराणुवन्धमनिने भूमिहरे ख टिटडे ।
 सगदा णवभुज्जपिजरमुही जोण्टाद पुज्वा दिमा ॥
 मुचतो मुचुकुदकेसरिगहासोहाणुकारे करे ।
 धदो एकरजतामभेय म मदो मपुण्णविवतण ॥

बुकुम से रहित, चन्दनविहीन दशो दिशाग्रो को सजाने वाली, कङ्कणरहित, बिना कुण्डल की, सप्तार की शोभा लोको को तृप्त एव मुग्ध करने वाली कामदेव की अस्थभूत चन्द्ररश्मियाँ आकाश में झवट्टी हो रही हैं ।

अकुंकुममचदणं दम दिगा बहूमङ्गणम् ।

अक्कणमकुडल भुवनमङ्गलीभूगणम् ॥

अगोसणममोहण मङ्गरलक्षणस्साउह ।

मिअक्किरणावली णहअलम्मि पुजिज्जदि ॥^१

मेघों से बरसती, उन्मुक्त धाराग्रो की भाँति चन्द्रमा की किरणें दिशारूपी मुन्दरियो के मुख पर कपूर के पूर्ण का लेप करती हुई सी दिखाई देती हैं । सारे सप्तार के मन को प्रसन्न करने वाली चन्दन की तरह स्वच्छ और चिकरुण चाँदनी फैल रही है । ये चन्द्रकिरणें तीनों लोको में काम वा उद्दीपन कर रही हैं ।

दिसअवघसो नहमरट्ठो ।

णिहुअणवदो वट्टइचन्दो ।^२

मडले समहरस्स गौरए दत्तपज्जरविलासचोरए ।

भादि लाएणमओ फुरत्तओ केलि कोइलतुलं धरत्तओ ॥^३

चन्द्रमा की रश्मियों ने आलोकित पूर्व दिशा के लिये भोजरत्न के समान पीत होने का आरोप, दिशाग्रों के लिये मुन्दरी का उपमान, आकाश में सरोवर एव चन्द्र पर लाञ्छन भृगु एव केलि कोयल का आध्यारोप बलि की व्यापक कल्पनाशक्ति को व्यक्त कर रहा है ।

विविध ऋतुग्रो का भी अत्यन्त चित्रात्मक, रम्य और कल्पनात्मक वर्णन राजशेखर ने किया है । स्थानाभाव के कारण हम केवल यहाँ उनके द्वारा वर्णित वसत ऋतु के बलिपय प्रसंगों को उद्धृत करना ही पर्याप्त समझते हैं क्योंकि वसन्त वा वर्णन गृ शरीर बलि की रत्नि और रागात्मकता के साथ ही उनसे सूक्ष्म निरीक्षण का भी व्यवहार करता है ।

तरणियों में विलास और गर्व को उत्पन्न करने वाला, मनयाचन की हवाओं से सहराली हुई लतारूपी नर्तनियों को नचाने वाला, कोरिणों के कण्ठममूह में पचम स्वर को प्रेरित करने वाला, भय जाग्रत कामदेव के धनुष दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रियमदग्धी कोष को दूर करने वाला, बन्धुबान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला,

१ कर्पूरमजरी ३-२६

२. कर्पूरमजरी ३-२९ ।

३ कर्पूरमजरी ३।२९

यसुन्दरराष्ट्री रमणी का यह वसन्तोत्सव छायां को हृद्येती के घरामर फँसा-
फँसाकर देखने योग्य है ।

इस ऋतु में कुकुम्भ राग गये हुए महाराष्ट्र की स्त्रियों के कपोलो की तरह
चम्पा छून पीना प्रौर बाज हो गया है । किंचिन् विलोये हुए दुग्ध की तरह सुन्दर
मल्लिका भी छित उठी है । मूय भाग में कारोवनं का तथा अग्रभाग में भौरो से
युक्त पलाश कुमुम ऐसा लगना है जैमे कि इसके दोनों ओर दो भौरे बँडे हो प्रौर
इसका रमणन कर रहे हों ।

वसन्त ऋतु में पाण्ड्य देश की रमणियों के कपोलों को रोमांचित करने वाली,
काशी देश की कामिनियों के त्रिव सन्धी प्रणयकोप को साथ प्राप्त भंग करने वाली,
चोय देश की अमल नारियों को समीप के लिये प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश
की स्त्रियों के केशपाज को गिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों कां अरने
आँसुगन पाश में बांधती हुई मलयाचल की ठण्डी हवायें चल रही है ।

वसन्त में मलयाचल की हवाये लका नगरी के बहिर्द्वार पर स्थित माराश्री को
हिलाती हुई, अगस्त्य ऋषि के प्राथम में अर्षान् दक्षिण दिशा में मन्द मन्द हिलती
हुई, चन्दन प्रौर कर्पूर की लताओं के सौरभ से युक्त ककोली लताओं को कंपाती
हुई, ताम्बूलवन्तियों को मन्द मन्द लचाती हुई प्रौर ताम्रपर्णी नदी के जल का
स्पर्श करती हुई हवा बह रही है ।

यह वर्णन जितना सजीव है उतना ही यथार्थ प्रौर उतना ही सुरगामी एव
सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक भी ।

प्रकृति का मानवीकरण

राजसेखर ने प्रकृति में भी मानवीय भावनाओं का आरोपण किया है ।
रावण सीता के विरह में दुःखी है । इस शोक में उसने अरने चारों ओर की
विशाल प्रकृति को भी सम्मिलित कर लिया है । उसने प्रत्येक पशु-पक्षी तथा
वृक्ष-पत्ता को मानवीय समझकर उससे चर्चा की है ।

राग भी जब मार्ग न देने के कारण समुद्र पर बाणों की दृष्टि करने हैं तो बाणों
से आहत हुआ समुद्र पुरुष रूप धारण कर गया प्रौर समुद्र इन दो पत्तियों सहित
धमा धाकना करता है । रावण का अग्र हो जाने पर लका, जो रावण की पत्नी
मानी गई है, विधवा हो जाने के कारण शोक प्रकट करती है प्रौर उत्तकी सखी
मलका उसे धोरन बँधाती है । महाँ अन्का प्रौर लका नारियों का मानवीकरण
दर्शनीय है । जटायु पक्षी होकर भी सीता का करुण चन्दन मुनकर रावण से

नायिका के सौंदर्य ने चम्पा, हरिद्रा, वाचन और केसर का मेल ही नहीं बँट पा रहा है। प्रसिद्ध उपमानों का निरस्कार कर राजशेखर ने प्रतीप अस्कार के माध्यम से नायिका के सौंदर्य की रमणीय व्यंजना की है। कल्पित भावकारिकों ने इसे आशेष का उदाहरण माना है—

नायिका के सौंदर्य का प्रस्तुत उदाहरण भी दृष्टव्य है—

दन्तुलिप्ता इवाञ्जनेन जडिता द्रष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्भानाक्षिमेव विद्रुमलता शशमेव हेमद्युति ।
पारुष्यं कलया च कौकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतम्
सीताया पुरतश्च हन्तं विखिना वर्तनं सगर्हा इव ॥^१

अर्थात् सीता के मुख के सम्मुख चन्द्रमा भागों कालिन्ध-मुक्ता लय रहा है। उसके नेत्रों के सम्मुख हरिणियों की दृष्टि जड़-सी हो रही है, आँठों की भाषी के आगे विद्रुमलता की अरणिमा उड़ गई-सी जान पड़ती है और मोने की क्यति अगशोभा के मगध वाली पड़ गई है, उरली मीठी बोनी के आगे कोयल को क्रूर ऐसी लगती है जैसे ककंशना ने भर उठी हो और कंग के समक्ष मोर के पंख ऐसे लगने हैं जैसे किंगी काम के न हो।

यहाँ सीता के भ्रग के अनिश्चय सौंदर्य को सूचित करने के लिये चन्द्रिका, हरिणियों की दृष्टि, विद्रुमलता, सोने की काति, कौकिल वधुओं के वण्ड और मूर-मखों की निन्दा द्वारा सौन्दर्यातिरेक को व्यक्त किया गया है। यहाँ अप्रस्तुतप्रशमा का उचित विन्यास हुआ है। कल्पना के चित्रों की विविधता के लिये राजशेखर ने दृष्टांत अस्कार का प्रयोग किया है। कल्पनाओं के सहारे वे दृष्टांतों की लड़ी जोड़ते चले जाते हैं। इन अस्कारों को स्पष्ट करने के लिये केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

यत्र पानव्या ज्योस्त्वा भूतभुवनगर्भाप्रि तृपिते—

मृणाला तन्तुभ्य मिचयरचना कृत्त भवतु ।

यत्र वा पार्यामेवो यत्र वकुलदान्ता परिमल

कर्वं स्वप्न साक्षात् कुवलयद्ग कल्पयतु ताम् ॥^२

अर्थात् भुवन के अन्दर ईनी चाँदनी को प्यासे कहीं पी पाने हैं ? कल्प नाक के तन्तुओं में दम्बर-रचना बर्हा हो सकती है ? मौपगिरी के पुष्पों की गन्ध कहीं नापी या तीनी जा सकती है ? स्वप्न साक्षात् कैसे हो सकता है ? इसी तरह उम गूदरी कमलनयनी को प्राप कल्पना मान कर सकते हैं।

१ बालरामायण १-८२ ।

२ विद्वत्तानभक्ति १-२० ।

उपप्राक्तराप्र प्रहिणु नयनेतर्क्य मनाक्
 अनाकाशे कोऽय गलितहरिषः शीतकिरणः ।
 समाबद्धप्रासेरुपवन-चबोरैरनुसृतः
 किरञ्ज्योत्सनामच्छं गवनवलिपाकप्रणयिनीम् ॥^१

अर्थात् तनिक चारदीवारी पर दृष्टि डालो । जरा सोचो, यह कौन सा चन्द्र है । न आकाश में स्थित है, न अरक में मृग को धारण किये है । देखो उपवन के चबोर प्रास रोक कर उसही धोर झाड़ूट्ट हो रहे है और उमने स्वच्छ ज्योत्सना छिटक रही है ।

नायिका के मुख को मृगहीन चन्द्रमा कहकर कवि ने अपनी मूढ का परिचय दिया है । नायिका के मुख की इम प्रशंसा में प्रतिशयोक्ति का सौंदर्य दर्शनीय है ।

नायिका यौवनावस्था में पदापेण कर रही है । यह बात पर्यायापकार के माध्यम से अत्यन्त कुशलतापूर्वक व्यक्त की गई है—

शोभोबन्धस्यजति तनुता मेव्यते मध्यभाग
 पद्भ्या मुक्तास्तरलगनय सधिता लोचनाभ्याम् ।
 धत्ते वक्ष. कुचमत्रिवतामद्वितीय तु वक्त्रम्
 तद् गात्राण्य गुणविनिमय कल्पितो यौवनेन ॥^२

शोभ में इसका अधनस्थल अत्यधिक क्षीण था । अब उसकी क्षीणता मध्यभाग ने ग्रहण कर ली । शोभ की चंचल गति अब नयनों में आ गई है । पहले इसका वक्ष एकांगी था अब उमने कुचों में मित्रता धारण कर ली है । और वदास्थल की अद्वितीयता मुख ने ग्रहण कर ली है ।

शु गाररस से मिकन विविध व्यापार करने वाली नितवन का कितना सुन्दर मालकारिक वर्णन है—

न्यश्चतुश्चितमुन्मुष हसितरत्नाकृतमाकेकरम् ।
 व्यावृत्त प्रभरत्प्रसादि मुहुल सत्प्रेग कम्प्रस्थिरम् ॥
 उद्भ्रुभ्रान्तमपाद्गवृत्ति-विवक्ष मञ्जतरगाकुलम्
 चक्षु साधु च वन्ति रमवशादेकैकमन्यक्रियम् ॥^३

तिरछी, बुद्धित, उन्मुख, उल्लसित, भावभरी टेडी, धलप्याई हुई, फैली हुई, सम्मिल, अक्षमूंदी, प्यार भरी, कम्पित, स्थिर, उद्धतित, मलवाली, विचरी, विवर्तित, गड़ी

१ विद्वशालभजिका १-३१ ।

२ वालभारत १-२८ ।

३. बालरामायण २-१९

हुई, तरंगित और भजन चित्रवन एक है पर शृंगार रस में डूबी होने के कारण उसके व्यापार प्रभेद है ।

मनुचन्ध प्रलदार पर आघातित नेत्र वा यह व्यापार-वैविध्य दर्शनीय है ।

विद्वशाखभजिवा के नाग्यो श्लोक में भी गई वामलोचनाओं की प्रशंसा में व्याघात की लटा द्रष्टव्य है—

दृशा दग्धं मनमित्र जीवयन्ति दृशैव याः ।

विस्थास्य जयिनीस्ता. स्तुये वामलोचना ॥^१

अर्थात् विरपाक्ष की दृष्टि में जना दिये बड़े काम को अपनी दृष्टि से ही पुनः जीवित कर शहरजी को परास्त कर देने वाली उन वामलोचनाओं की ममस्वार है ।

प्रवन्ति की रमणियां ही रतिवर्म में निपुण होती हैं, केवल इतना कह देने पर अकण्ठ-रमणियों की निपुणता की प्रतीति पाठक को नहीं हो जाती किन्तु "चन्द्रिका के पान में चकोरियां ही चतुर होती हैं" यह कथन घात को प्रामाणिक बना देता है । प्रतिवन्तूपमा अलंकार को यही उपादेयता है—

चकोर्यं त्व चतुराचन्द्रिकापानकर्मणि ।

आवन्य एव निपुणा सुदृशो रतवर्मणि ॥^२

उत्तरोत्तर उत्कर्ष का एक उदाहरण देखिये—

पृथिवि स्थिरा भव भुङ्गवाम धारयन्ता

त्वं कूर्मराज तदिदं त्रिनय दधीषा ।

दिवकुजरा । कुहन तद्वितये दिधीषा

देव करोति हरकामुसु भाततज्यम् ॥^३

राम शिवघनूप चढ़ा रहे हैं । घट पृथ्वी को सचेत किया जा रहा है और शेषनाग और दिग्गजों को समस्त अपने पूर्ववर्तियों को सम्हाल रखने को कहा जा रहा है । उत्कर्ष की इस श्रृंखला में राम के पौरुष का महत्त्व स्वयं सूचित होता है ।

नीच श्लोक में विरही नायक की दशा बितने प्रभावपूर्ण ढंग से व्यजित हुई है—

पर जोष्टा उष्टा गरलमरिसो चदणरतां

खरखारो हारो रमणिपत्रणा देहनवणा ।

मुगाली वाषाली जलदं भ्रजलददा तणुलदा

वरिदुदा ज दिह्वा समलवप्रणा सा मुगघ्रणा ॥^४

१. विद्वशाखभजिवा १-२ ।

३. मानरामायण १-२८ ।

२. बालरामायण १०-८२ ।

४. कर्पूरमञ्जरी २-११ ।

अर्थात् जब से उम गुनचना को देखा है तभी से चांदनी गमं मालूम पड़ती है, चन्दन का लेग विष भी तरह प्रतीत होता है और हार घाव पर नमक की तरह लगता है एवं रात्रि की टण्डी हवायें भी शरीर को झुलवाती हैं । कमन नग्न बाणों की तरह लगते हैं । स्नान करने पर भी शरीर जलता ही रहता है ।

बिरही राजा का एक अन्य चित्र भाग रूपक के माध्यम से साकार हो उठा है ।

एगो पिम्पवस्तो हगो विष विमुक्तरमानसो, करी विष
ममकरवामो मुणालदनदंभो विष घणघम्ममिलाणो दिपदीण्णा ।
वीयो विष विषनिमच्छामो पमारपुण्णिमाचन्दो विष
पडुरपरिकरवीणा चिट्ठदि ॥^१

विद्योगी नायक की सतप्तदशा, मलिनता, घटावट आदि के लिए मानमरोवर मे विलम्ब हुए हैंस, प्रवण्ड सूर्यानेप मे झुलते हुए कमलताल, कान्तिहीन दीपक, प्रभात-कालीन चन्द्रमा इत्यादि का सादृश्य उपस्थित करने मे जितना सटीक और सजीव चित्र उपस्थित हो गया है । एक स्थान पर कवि ने लिखा है कि—

सह दिवसगिणसार्हि दीहरा सासदण
सह मणिलएहि बाहधारा मलनि ।
तुह मुहम विघोए तीम्र उब्बिबिरोए
सह अ तणुलदाए दुब्बला जीविदासा ॥^२

बिरहानुल नायिका को दिन रात बड़े लम्बे प्रतीत होते हैं । उतना ही दीर्घ उसाव वह लेती है । वाष्पधारा और मणिकरण नाय साम गिर रहे हैं । जितना उतना शरीर दुर्बल हो रहा है उतनी ही जीवितांशा भी घटती जा रही है । सहोक्ति के उक्त प्रयोग से विद्योगिनी नायिका का यह चित्र और अधिक ममंस्पर्शी हो गया है ।

राजशेखर ने प्रकृति के चित्रों को अधिक सजीव और सक्षम बनाने के लिये विविध धलकरणों का प्रथम लिया है । मध्याह्नकाल का एक दृश्य देखिये—

घत्ते पद्मनता दलेप्पुरपरि स्व वणंताल द्विप
शप्यस्तम्बरमान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्ड शिर ।
मिष्वालीड्मृणालकोटिरभसाद् दद्दुडुडुर शूररो
मध्याह्ने महिषश्च वाच्छति निजच्छायं महावदंभम् ॥^३

१. कर्पूरमञ्जरी २।९ ।

२. कर्पूरमञ्जरी २।९ ।

३. विद्वशालभजिका ३।२६ ।

प्रथत् पदमयता को ढलने का इच्छुक हाथी, दोपहर की गर्मी में ध्याकुल होकर अपने ऊपर अपने बड़े बड़े कानों को चला रहा है । शामो के रसास्वादन को त्यागकर मयूर अपने पंखों के प्रन्दर छिप रहा है । सुप्रर ने कमल की जड़ को खोदकर घाना बन्द कर दिया है और भ्रमा अपने शरीर पर लेप करने के लिये गहरे कीचड़ को इच्छा कर रहा है ।

यहाँ कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से स्वभावोक्ति का कुशल निरूपण हो गया है । चन्द्रकिरण वर्णन में कवि की कुशलता सराहनीय है—

द्रकुनुममचदण दमदिसावहूमडण
 प्रकवणमकुडल भुवणमडलीभूसण ।
 असोसणमभोहण मअरलछणस्साउह
 निप्रचकिरणायली प्हुअलम्मि पुजिज्जदि ॥

पर्यान् कुनुम से रहत, चन्दनविहीन, वरों विषासों को सजाने वाली, कंकणरहित, बिना कुण्डल की, लोगों को तृप्त एवं मुग्ध करने वाली कामदेव की प्रसन्नभूत चन्द्ररश्मियाँ आकाश में इकट्ठी हो रही हैं ।

यहाँ चन्द्ररश्मियाँ काम के आयुध हैं किन्तु शोषण-भोहन-हीन । बिना कारण के ही कामदेव के अस्त्रों का कार्य करने वाली ये चन्द्ररश्मियाँ विभावना से भल्लूत हो उठी हैं ।

वस्तुतः राजशेखर द्वारा प्रयुक्त किसी भी अलंकार की सूची बहुत दूर तक बढ़ाई जा सकती है । यहाँ हमारा उद्देश्य उनके प्रत्येक अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत करना मात्र नहीं है । हमने केवल कुछ अलंकारों को लेकर उनकी अलंकार-योजना का प्रदर्शन किया है । उनकी अलंकारसृष्टि भावोपयोगी एवं सूक्ष्म निरीक्षणपूर्ण है । उनके अलंकार प्रयोग की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे एक ही चित्र में कई अलंकार सफलता से गुँथ सकते हैं जैसे नायिका के रूप चित्रण के लिये उन्होंने प्रतीप, अत्रस्तुतप्रशमा एवं अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है । विरहावस्था की दशा वर्णित करने में विरोध, रूपक एवं सहोक्ति की सृष्टि को है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि राजशेखर के अलंकार प्रयोग में उनके पाठित्व एवं सूक्ष्मनिरीक्षण की छाप है । फलतः उनकी अलंकार-योजना स्वाभाविक सहज और सृष्टि हो गई है ।

छन्दोविधान

राजशेखर के काव्य में प्रयुक्त शार्दूलविश्रीडित छन्द की उत्कृष्टता देखकर क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ "सुवृत्ततिलक" में यही तक कह दिया था—

शार्दूलविश्रीडितैरिव प्रशस्यते राजशेखरः ।

शिखरीव परं वक्रं सोल्लेखं हृच्चमेखर ॥

यद्यपि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में २३ छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु समग्र रूप से उनके छन्द विधान की ओर दृष्टि डालने पर भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि "शार्दूलविश्रीडित" छन्द का प्रयोग ही उन्होंने प्रचुर परिमाण में किया है। यदि "शार्दूलविश्रीडित" को ही राजशेखर के काव्यों का बल्लेवर-विधायक छन्द कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उक्त छन्द के पश्चात् हम भाव-आवृत्ति एवं छन्दो-वैविध्य की दृष्टि से जिन छन्दों से उनके काव्य को सुशोभित पाते हैं वे हैं—वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, स्रग्धरा, मन्दाश्रान्ता, मालिनी, आर्या, पृथ्वी, रशोद्धता, इन्द्रवज्रा, वनस्थ, उपजाति, पुष्पिताषा, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, शालिनी, शिखरिणी, हारिणी, प्रहर्षिणी शशिवन्दना, हचिरा, गीति, उपगीति एवं हरिगीति ।

राजशेखर की छन्दोयोजना के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि उन्होंने विभिन्न प्रसंगों, ऋतुओं तथा भावों के लिये भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। निम्न तालिका में उक्त योजना को विशद रूप में प्रस्तुत किया गया है—

विषय

प्रयुक्त-छन्द

नान्दी	.. शार्दूलविश्रीडित, पुष्पिताषा, आर्या, स्रग्धरा, मालिनी, पद्मावतत्र एवं शिखरिणी ।
भरतवाक्य	.. शार्दूलविश्रीडित स्रग्धरा, स्वागता ।
मञ्जन वन्दना	.. शार्दूलविश्रीडित शिखरिणी, स्रग्धरा ।
रामस्तुति	} .. शार्दूलविश्रीडित ।
उपदेश	
भागीय	} .. वसन्ततिलका ।
स्नेहाभिव्यक्ति	
चन्द्रोदय-वर्णन	.. शार्दूलविश्रीडित, पृथ्वी, स्रग्धरा, मन्दाश्रान्ता मात्रिक हरिगीतिका शिखरिणी ।

पद्मवृत्त—

वसन्त	.. शार्दूलविश्रीडित, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, मन्दाश्रान्ता आर्या, मालिनी
-------	--

राजशेखर

किशिर	.. सग्धरा, पय्यावक्त्र ।
श्रीपद्म	.. शार्दूलवित्रीडित ।
वर्षा	.. सग्धरा, पुष्पिताम्रा ।
शरद	.. शार्दूलवित्रीडित, वसन्ततिलका ।
हेमन्त	.. सग्धरा, श्यामा ।
नायिका वर्गन—	
शौच्यचित्रण	.. शार्दूलवित्रीडित, शिखरिणी, वसन्ततिलका, उपजाति, मालिनी, वनस्थविल ।
विरहिणी	.. मालिनी, सग्धरा, शिखरिणी ।
दोलात्रीडा	.. श्यामा, मन्दाक्रान्ता, सग्धरा ।
चञ्चरी नृत्य	.. उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता ।
रम—	
१. शृ गार	शार्दूलवित्रीडित, शिखरिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, हरिणी ।
२. वीभक्त	वसन्ततिलका, सग्धरा ।
३. करण	वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, पय्यावक्त्र सग्धरा ।
४. अद्भुत	वसन्ततिलका ।
५. वीर	शार्दूलवित्रीडित ।
६. रौद्र	शार्दूलवित्रीडित ।
७. ज्ञान	शार्दूलवित्रीडित, मन्दाक्रान्ता ।

राजशेखर की एक और विशेषता है निरन्तर एक ही छन्द द्वारा किमी विषय की अभिव्यक्ति । "अर्थानुसङ्ग-छन्दस्त्वम्" की उक्ति उनके लिये सार्थक प्रतीत होती है ।^१

काव्य-दोष

प्रायः सभी घनकारिकों ने काव्यदोषों का विस्तृत विवेचन और वर्गीकरण किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अथर्वय मह बहुर दोषों की उपेक्षा की है कि उन्होंने महर्षी मुन्दर सूक्तियों से अपने को उम्बन किया है, ऐसे महात्माओं के दोषों का उद्घाटन करना आलोचकों के लिये दोषपूर्ण है—

तनु सूक्तिमहत्या द्योतिममना महात्मनां दोषोद्धोषणमात्मन एव
दूषण भवन ।^१

१. राजशेखर के ग्रन्थों में प्रयुक्त विविध छन्दों की तालिका परिशिष्ट में देखिये ।

राजशेखर के ग्रन्थों से, अलंकारों ने दोषों के जो बहुत से उदाहरण लिये हैं, उसका कारण उनकी लोकप्रियता है। हम यहाँ राजशेखर के ग्रन्थों में पाये जाने वाले प्रमुख दोषों पर विचार करेंगे।

वाक्य-दोष

१. अभवन्मत सवन्ध — वह दोष है जहाँ किसी पद का अभिप्रेत सवन्ध अथवा अन्वय उत्पन्न न हो सके। जैसे—

चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तिकेयो विजेय।
शस्त्रव्यस्त सदनमुदधिभूरिय हन्तकारः।
अस्त्येवैतत् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठ-बाधा
वद्धस्पर्धस्तव परशुना सज्जते चन्द्रहास' ॥

भागव परशुराम ! माता का गला काटने वाले, तुम्हारे इस परशु का स्पर्श करने में मेरा यह वृषाण लज्जित हो रहा है, अन्यथा ! यहाँ भागव परशुराम की निन्दा के प्रकाशन के लिये प्रयुक्त मातृकण्ठ के छेदन के कर्तव्य के साथ परशु का सवन्ध स्थापित नहीं हो सकता। अतः 'अभवन्मतसवध' का यहाँ निर्देशन हो रहा है।

वस्तुतः यहाँ परशु की निन्दा के द्वारा भागव परशुराम का अधिकाधिक तिरस्कार किया जा रहा है। अतः इसे दोष न कहकर कवि-कौशल कहा जाना उपयुक्त होगा। साहित्यदर्पणकार और उनके अनुयायियों ने इसे कवि-कौशल कहा भी है।

२. भग्नप्रक्रमत्व — बिना कारण के किसी क्रम अथवा परिपाटी को छोड़ देना भग्नप्रक्रमत्व दोष कहलाता है। जैसे—

उदन्वच्छत्रा भू स च पतिरपा योजनशतम् ।^१

यहाँ यदि 'मिता भू पत्यापा स च पतिरपाम्' कर दिया जाय तो भग्नप्रक्रमत्व दोष दूर हो जायगा और अर्थ की अपेक्षित ऐक्य-प्रतीति निविष्ट रह्येगी।

अर्थदोष : अर्थ दोष के एक भेद अस्थानयुक्तत्व का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। अस्थानानुयुक्तत्व वह अर्थदोष है जिसमें वाक्यार्थ अनुपयुक्त स्थान पर समाप्त हो जाता है, जैसे—

प्राज्ञा शत्रुशिखामणि-प्रणयिनी शास्त्राणि चधुर्नव,
भक्तिभूतपती गिनाकिनि पद सकेनि दिव्यापुरी ।

उत्पत्तिर्द्रुहिषान्वये च तदहो नेहृग्वरो लभ्यते

स्याच्चेदेय न रावणः क्व नु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः ।^१

रावण के लिये कहा गया है कि जिसकी आज्ञा मुकुट-मणि की मति इन्द्र को भी गिरोधाय है, जिसके लिए शास्त्र दिव्यदृष्टि का काम करते हैं, जिसकी शिवभक्ति सर्वविदिन है, जिसका दिव्य स्थान लकापुरी के नाम से प्रसिद्ध है और जिसका जन्म प्रह्ला के महान् वश में हुआ है भला उसके समान अन्य वर वहाँ मिल सकता है । हाँ, बात केवल एक है कि वह रावण है और सब गुण सर्वत्र रहते ही कहाँ हैं ?

यहाँ 'स्याच्चेदेय न रावण' पर ही वाक्य समाप्त हो जाना चाहिए, क्योंकि रावण पद से रावण का वर रूप में निषेध किया गया है किन्तु "पुन सर्वत्र सर्वे गुणाः" यह उक्ति तात्पर्य के विपरीत कथन पुष्ट करती है । अतः यहाँ अस्थानुयुक्तत्व दोष है ।

अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि : "क्व न पुन सर्वत्र सर्वे गुणा" में रावण के समस्त गुणों की अनुपादेयता ध्वनित होने के कारण 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य-ध्वनि' भी लक्षित हो रही है ।

अनौचित्य क्वि जब भावविभोर हो जाता है, उस समय किञ्चित् अभावधानी भी अनौचित्य को जन्म दे देती है ।

(क) प्रवन्धानौचित्य या वृत्त का अनौचित्य इतिहास-सम्पन्न तथ्यों के विपरीत वृत्त का अनौचित्य प्रकट करता है । सीता-स्वयंवर में सम्मिलित राजम-पति रावण की यह उक्ति देखिये—

यत्पावंतीहृत्पुचग्रहणे प्रवीणे पाणो स्थित पुरभिद शरदा मह्यम् ॥
गीर्वाणगारवणनिमित्त-गात्रमत्र तन्मैषिलीशयधन धनुराविस्तु ॥^२

रावण ने कहा कि मैषिली को शरीर देने का मूल्य वह धनुष वहाँ प्रत्यक्ष होवे । इसे गुनकर जनक कहते हैं—“आविस्तु समगर्भमभवया गीतया” स्वयं उन्भूत जानकी के साथ वह धनुष प्रगट हो” जनक के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे राजागर्भ रावण को जानकी देना चाहते हैं । किन्तु राजमराज को गीरीप-मूर्खी बन्धा का दान प्रवन्धानौचित्य का निर्माण करता है ।

(घ) अभावधानौचित्य . एनी प्रकार शीरकण्ठ राम द्वारा ताडना को ताडना देना तथा बिनके बानों के पाग के बेज बने हो रहे हैं ऐसे परशुराम के साथ मूढ टंडना अवरधानौचित्य का सिद्धान्त करता है । देखिये—

‘ज्यायान् धन्वी नवधृतधनुस्ताम्रहस्तोदरेण
धनुक्षोदप्यतिकरपटुस्ताडकाताडनेन ।

कर्णाभ्यणंस्फुलितपलित क्षीरकण्ठे न सार्धं

योद्धुं वाञ्छन् कथममुना लज्जते चन्द्रहासः ॥’

धनुर्धारियो मे सर्वश्रेष्ठ, क्षत्रियो के विनाश करने में मसाम, जिगके बानों के पाम के केश श्वेत हो रहे हैं (अर्थात् जो बुढ़ापे की धोर अश्रम हो रहे हैं) ऐसे महाबली परशुराम, नये नये धनुष धारण करने के कारण जिनकी हथेली लाल हो रही है, जो ताडका का विनाश कर सके हैं, इतना ही नहीं जो अभी तक क्षीरकण्ठ बहे जा सकते हैं, ऐसे रामचन्द्र के साथ युद्ध की दृष्टा रखते हुए स्वयं ही लज्जित क्यों नहीं हो रहे हैं ।

क्षीरकण्ठ राम की अवस्था एव वाढंशपलितकेग, परशुराम की अवस्था का अत्यधिक अन्तर अवस्थानोचित्य को पुष्ट कर रहा है ।

(ग) रसबोध - अनुचित विशेषणों से राम के पोषण में बाधा होनी है। जैसे—

नाने शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्धारिषे ।

अश्वत्थङ्गभुजङ्गचन्दनरौ श्रीडोषघाने श्रियः ।

आनाने अयमुज्जरस्य मुद्गा कन्दर्पदपे चिरम् ।

श्री दुर्योधनदोषिण विप्रमघने लीन जगन्नन्दनि ॥’

अर्थात् महाराज दुर्योधन का पराक्रमशील बाहु, वीरत्वरूपी कमलिनी का नान-दण्ड है, युद्धरूप ममुद्र का बांध है, अश्वत्थ रूपी भुजगमों के लिये चन्दनवृक्ष है, राज्य-श्री का श्रीडोषघान है, विजयकुजर को बाधकर रखने वाली शृ खला है और मृग-लोचनाओं के लिये कामदेव का दर्प है । उसकी छाया में विधान्त यह मारा सत्तार परमानन्द को प्राप्त करे ।

इस पद्य में दुर्योधन की भुजा के लिये कठिन विशेषणों के बीच कमलनाल जैसे कोमल शब्द का प्रयोग अत्यन्त अनुचित है । क्योंकि वीर राम के पोषण में यह बाधक है । अतः राम में विरसता उत्पन्न हो रही है । वाक्यगत धर्तोरित्य भी उदात्त हो गया है ।

एक और उदाहरण देखिये—

एतस्याः स्मरत्यग्बरं वरननस्यर्गं परीश्यो न यः

मिन्धेतादि जनेन दाहमयत प्रव्यमय पायगाम् ।

निर्वीर्यीकृत-चन्द्रनीपधविधौ तस्मिन्तद्वत्कारिणो ।

ताजस्फोटममी स्फुटन्ति मणय सर्जुपि हारन्वजाम् ॥^१

इस श्लोक में प्रमुख रम विप्रलम्भ शृ गार होने के कारण माधुर्य का होना आवश्यक है । किन्तु 'तद्वत्कारिणो ताजस्फोटममी स्फुटन्ति' के प्रयोग से ओजगुण उत्पन्न होने के कारण अनौचित्य का संचार हो गया है ।

रावण के प्रति परशुराम की इस उक्ति में सम्प्रदानानौचित्य है—

तद्वाच्य स दशाननो मयगिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही ।

तुभ्यं ब्रूहि रमातलात्त्रिदिवसो निर्जित्य कि दीपताम् ॥

पदांशगत भ्रवाचकत्व दोष बालरामायण के रामराजनीय अंक में परशुराम के प्रति रावण की इस उक्ति में भ्रवाचकत्व दोष है—

चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी वानिकेयो विजये

शस्त्रव्यस्त मदनमुर्धधर्मूरिय हन्तकार ।

अन्त्यैवैन्त् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठवाधा

बद्धम्पदंस्तव परजुना सज्जने चन्द्रहास ॥^२

यहाँ 'विजय' इस पद में यत् प्रत्यय 'त्' प्रत्यय के अर्थ में प्रयुक्त है जो भ्रवाचक है । अतः यहाँ भ्रवाचकत्व दोष स्पष्ट दीप्त पड़ रहा है ।

अर्थान्तरैकपदता दोष : रामचन्द्र के माय सीता को बनवान के लिये छोड़ जाने पर मुमन्त्र दशरथ को समाचार दे रहे हैं—

ममूणचरणपात गम्यता भू मदर्भा ।

विरचय मिचयान्त् मूर्ध्नि धर्मं बठोर ।

तदिति जनतपुत्रीलौचनेरधुगर्भ ।

पयि पदिनचघृभिर्वीक्षिता जिक्षिता च ॥^३

यन जाने समय राटगीरो की (साथ चलने वाली) स्त्रियों ने छायां में छाया भरकर जनरतनया को देखा और गमनाया कि दर्मा-भरी भूमि पर हनुके हनुके पैर रखकर चलो । धूप तेज हो रही है इगलिये गाडी का पन्ना मिर पर डाल लो ।

यहाँ 'तदिति में तद्' शब्द दोषपूर्ण है । 'तद्' शब्द 'धर्म. बठोर तत् मिचयान्त् विरचय' इस प्रकार का हेतु रूप पूर्वार्ध में प्रयुक्त होना चाहिये । किन्तु केवल इस एत पद का प्रयोग उत्तरार्ध में किया गया है इसलिये यह अर्थान्तरैकपदता दोष को अभिप्रेत कर रहा है ।

विशेष-परिवृत्ति दोष : नाथिका मृगांकावली के वियोग में आनुर उषा विद्याधरमत्सदेव आकाशभाषित के रूप में सेवको को 'भो' शब्द में संबोधित कर रहे हैं—

श्यामा श्यामलिमानमानयत भो सान्द्रैर्मपीकूचकै-
मन्त्रं तन्त्रमुत प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलाना श्रियम् ।
चन्द्रं चूर्णयत क्षणाच्च कणश कृत्वा शिलापट्टके
येन द्रष्टुमहं क्षमे दश दिशास्तद्वक्त्रमुद्राङ्किताः ॥१

हे सेवको ! गहरी काली स्याही की कूचियों से रात्रि को काला कर दो और चन्द्रमा को पत्थर की शिलापर रखकर कण कण में पीस डालो जिम्मे में दसो दिशाओं को उसकी मुख मुद्रा से अंकित देख सकूँ ।

यहाँ रात्रि के लिये केवल 'श्यामा' शब्द का उपयोग उपयुक्त नहीं है । यदि चन्द्र है तो चाँदनी रात का उल्लेख होना चाहिये । किन्तु यहाँ श्यामा शब्द से अंधेरी रात्रि का बोध इष्ट होने के कारण विशेष परिवृत्ति दोष भासित हो रहा है ।

रसदोष . वर्णन प्रकृत रस के परिपाक का पोषक होना चाहिये अन्यथा अनवकीर्तन नामक रस-दोष होता है ।

कर्पूरमजरी की प्रथम जवनिचा में राजा और रानी वमन्त के सौंदर्य का वर्णन करते हैं जो प्रसगानुकूल है । किंतु बीच में ही उन मूल प्रसंग को छोड़कर चारण द्वारा वर्णित वमन्त-वैभव की प्रशंसा करने लगते हैं । यहाँ प्रकृत रस के अनपकारक का विस्तृत वर्णन सदाँप है ।

ध्याकरण-दोष : प्राकृत प्रत्यय 'इल' का प्रयोग केवल महासप्ती में होना है किंतु राजशेखर ने भाषा की परम्परा के विरुद्ध 'बालरामायण' में शौरसेनी में 'कोदूहलिल्ल' का प्रयोग किया है जो दोषपूर्ण है ।

उपर्युक्त दोष राजशेखर की विज्ञान ग्रन्थ-सम्पदा की तुलना में अत्यल्प है । गुणोत्कर्ष के समुद्र में ये दोष जल की कुछ मीठी बूदों के समान विभीन हो गये हैं ।

काव्य-सौन्दर्य

काव्य के उपकरण शब्द और अर्थ है । मनोरम वर्ण-योजना एवं शब्दों का उत्कृष्ट चयन काव्य में सौष्ठव उत्पन्न करते हैं । शब्दानुवार भी काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं । आन्तरिक सज्जा का मन्त्रध अर्थ के साथ रहना है जिसका साधारण शब्द-शक्ति और उक्ति-वैचित्र्य है । कवि स्वानुभूति को अभिव्यक्ति-योग्य के

माध्यम से व्यक्त करता है । छन्द काव्य को गेयता प्रदान करते हैं । ये सभी मिलकर काव्य सौष्ठव का निर्माण करते हैं । प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं विषयों पर विचार किया जायगा ।

नादसौन्दर्य या अर्थध्वनन : राजसोखर की पद-सरचना अभीष्ट अर्थों की ध्वन्यना तथा उसकी प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करती है । झूला झूलती नाविका का एक शब्दचित्र देखिये—

रणतमणिर्णज्जर झणक्षणतहारच्छड
फलकर्णदकिर्णिणी मूहरमेहनाडवर ।
चित्तोल्लवलप्रावली जणिदमजुमिजारव
ण वन्म मणमोहण मप्तिमूहीप्र हिंदोलण ॥^१

मणिनूपुरों के झकार से युक्त, हारावली के शन झन शब्द में पूर्ण, तरघनी की छोटी छोटी घण्टियों के मधुर शब्द से युक्त यह चन्द्रमुखी का झूला झूलना किमके मन को मोहित नहीं करता ?

यहाँ 'रणतमणिर्णज्जर' 'झणक्षणत' 'कणकणिम मजुमिजारव' आदि पदों की वर्ण-मैत्री बानों को तो सुखद लगती ही है, साथ ही इनकी ध्वनि ध्वन्दोलित झूले का साक्षात् चित्र भी उपस्थित करती है । झूला झूलन का एक अन्य चित्र देखिये—

'गामन गोवअवहूपमपेधिसामु ।
दोनामु विम्भमवदीमुणिविद्विद्विटी
ज जादि छजिदतुम्भरहो रिणमो ।
तेणव्व होति दिमहा मइदीहदीहा ॥^२

गाती हुई गोपियों के चरणों में ध्वन्दोलित एव मन को हरण करने वाले झूले पर गुरु की दृष्टि लगी हुई है, जिसमें उसके घोड़ों की गति मस्त-व्यस्त हो जाती है, और एव विचम गति में बढ़ता है । इसी कारण दिन अधिक लम्बे हो जाते हैं ।

इस पद्य में ग गुरु धर्णों की सम्युक्त ध्वनिर्णयानों गोपियों के चरणों के धनु-रूप तात् दे रहीं हैं । यह विमर्शण वर्ण-भौन्दर्य का निदर्शन है ।

इस प्रकार राजसोखर ने ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा अपनी अभिव्यक्ति को न केवल धर्णपट्टण की दृष्टि से सगितु गभीर की दृष्टि से भी समर्थ और मनोरम बना दिया है ।

शब्द-सौन्दर्य : राजशेखर ने यद्यपि शब्द-शक्ति के संबन्ध में धरता कोई सैद्धांतिक मत प्रस्तुत नहीं किया, तथापि इतना निश्चित है कि शब्द के व्यापार संबंधी तथ्यों में वे भलीभांति परिचित थे । यही कारण है कि वे अपनी रचनाओं में वाचक शब्दों द्वारा भी उच्चकोटि के सौन्दर्य की सृष्टि कर सके हैं । उदाहरणार्थ ग्रंथ चन्द्र के लिये—भगवान् त्रिलोचन जिने शीर्ष पर धारण करते हैं (जं भग्रवं तिलोक्षणो सीसे समुच्चहृदि)^१ ; मुखचूर्ण रूपप्रसाधन के लिये—प्रशोक तरु जिससे शोहृद प्राप्त करता है—(जेष समोभनह दोहनहृदि)^२ ; कान के लिये—‘जुहिट्टिल जेट्ठभाभरणामधेय भग’^३ तथा उत्तरासाङ्गपुरस्तर शब्दप्रयोगमधेय भग जुपलद, हाथ के लिये—“उत्तरकण्ठोपुस्तरणकृत्तजगामनेभं भग”^४ आदि शब्दों का वाच्यार्थ-सौन्दर्य इतना मृगदित हो रहा है कि इनके स्वान पर अन्य समानार्थक शब्दों का रखना काव्य के सौन्दर्य को नष्ट करना होगा ।

शब्दालंकार : शब्दालंकार में धनुप्रास, यमक और श्लेष धरतार ही ऐसे हैं जो भाषा-सौन्दर्य में विशेष रूप से वृद्धि करते हैं । धनुप्रास में भाषा के धर्मांत चमत्कृति उत्पन्न होती है । राजशेखर ने अपनी रचनाओं में रस-व्यञ्जना के लिये इन तीनों का ही आश्रय लिया है । परन्तु इन में भी उनका सर्वाधिक लगाव धनुप्रास के प्रति है । यही कारण है कि उनकी अधिकांश पंक्तियों में इस धरतार की छटा दीख पड़ती है ।

तब च शरनिकरवर्षणे, क्षितिताननिषर्षणे सुभटवर्षणे, वातर मनोषर्षणे परस्पर प्रतिहनिभर्षणे कीलातपवर्षणे, लोमहर्षणे च महारम्भे गमरगरम्भे ।^५

यहां पद के अन्त में वर्षणे, षर्षणे, वर्षणे, षर्षणे, भर्षणे ऋषणे, हर्षणे रम्भे आदि शब्द मधुर संगीत की सृष्टि कर रहे हैं ।

मूलेमूले पथि विटपिनां मेदिनी दीर्षमान्ते

शुष्यात्पण्डी पिबति सतिन निर्दरे निर्दरे च ।

जातप्रासा निमिषनि हृण वन्दरे वन्दरे च

स्थाने स्थाने वर्ति च मति बद्धवागाभिनाया ॥^६

उक्त श्लोक के प्रथम पद्य में ‘मूले’ द्वितीय में ‘निर्दरे’ तृतीय में ‘वन्दरे’ और चतुर्थ में ‘स्थाने’ की धावृत्ति हुई है । यही धनुप्रास का प्रयोग कोमलता एवं मृदुम सौन्दर्य को प्रभावशाली रूप में धरना करना है ।

१. क० म० १।२०-२१ खेरी की उक्ति । २. वही १-२० खेरी की उक्ति ।

३. वही १-२०-२१ विद्वत्संक्षिप्त ।

४-६. वही १-२०-२१ विद्वत्संक्षिप्त उक्ति ।

राजशेखर के यमक अलंकार की छटा भाषा को रमणीयता प्रदान करती है।

देखिये—

हृष्टुट्टहोर्दण्डमण्डोदुडमर पुरूपनराण्डकोष्ठप्रकोष्ठम् ।
 स्फारस्फिक् पृष्ठपीठोहठदलितशिराकन्धराकाण्डमण्डम् ॥
 मन्मम्भ धवडिम्भ चटदिनिविचटन्मुण्डपिण्ड प्रचण्ड ।
 चण्डीशाञ्चण्ड-दण्डाणकच दृढ दव चन्द्रहामस्तुण्डे ॥१

यहाँ मुण्ड, रिण्ड, चण्ड, दण्ड, खण्ड में ण्ड की, कोष्ठ, प्रकोष्ठ में ठ की; मन्मम्भ डिम्भ में म्भ की और चटत्, विचट में चट की आवृत्ति न केवल युद्ध की बाह्य ध्वनि को प्रकट कर रही है बल्कि युद्ध की भयकरता को भी सूचित कर रही है।

राजशेखर अनुप्रास एवं यमक के समान श्लेष अलंकार का भी कुशलता से प्रयोग करते हैं। वानर मेतु-ग्रन्थ के लिये जिन माधनों का चयन कर रहे हैं, वे हैं—

देव देवद दाव—रहमुम्मूलिदतमानमान, महन्ममामिदपहरणमञ्जमञ्ज
 गमुहागदहिल्लानतान कूल्नामिदकुमुमराडलपाडल गप्रणन्दोलिदविमालमान
 रङ्गमुच्छनिदपटन्केमरकेमर गहिदमव्वगमरगमरग लोनिदकुमुमदणमदण
 पञ्चदृष्ट्यरिदमद्व-मञ्जमपद्वदरुकरवन्दिदरनामरातम करङ्गुधलवन्धरधवमव
 उल्लपीपदपीपन निमगादरिणरकरङ्गरकर णरुपहाङ्कग्राहपन्धरपन्धर
 पहरणीरुदादल्लगण्ड-गण्डमेन्न मम्महोच्छुदिद परहाङ्गपडल वाणरबलम् ।

उक्त उदाहरण में गञ्ज, मान, पाडल, मान, केमर, मञ्ज, मदण, मञ्ज, म, पनाम, पीपल, ककर, पन्धर आदि शब्द श्लेषयुक्त हैं। यज्ञ कवि का वाग्वेदम्य वाच्य-मौढ्य को सुष्ट कर रहा है।

उक्ति-वैचित्र्य : "प्रष्टस्योऽगौ पटीपानिह भगितिगुणा विद्यते वा नवेति ।

उक्ति-वैचित्र्य उनमें शब्द का मञ्ज अंग है। हमारे भास में वह धार या जाती है जो व्यंग को तीव्र बनाने में सहायता प्रदान करती है। यहाँ वैचित्र्य मन्त्र में हमारा अभिप्राय भगितिगुण या उक्ति-रम-बौधन-जन्म शब्दार्थवाला है कि इसके लिये परवर्ती आचार्य तुम्हारे ने कबला शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि राजशेखर ने उक्ति-वैचित्र्य की परीक्षा के इस प्रयोग में वह उक्तियों के विभिन्न रूपों का प्रयुक्तीकरण अनुचित न होगा।

(१) विशेषण-दशता : वियोगिनी नायिका की दशा के इस चित्रण में विशेषण-दशता का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

दाहोऽम्भ प्रसृतिम्पत्र प्रचयवान् वाप्यः प्रणालोचित ।
 श्वासाः प्रेङ्खितदीपदीप्तलतिकाः पाण्डिम्नि मग्न वपु ।
 विचान्यन् वक्ष्यामि रातिमखिला त्वन्मार्गवातायने
 हस्तच्छत्रनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ॥'

हे नायक, तुम्हारे विरह में नायिका के शरीर का दाह पानी की मुखा देने वाला है, आँसू नाली में बहने योग्य हैं, उष्ण नि श्वास हिलती हुई प्रज्वलित दीपमाया के समान है और सारा शरीर मच्छेदी में डूबा हुआ है। और मधिर क्या कहे? बह सारी रात अपने हाथ के छत्र में चाँदनी को रोके हुए तुम्हारी प्रतीक्षा में तुम्हारे मार्ग की ओर वाले झरोखे में बैठी रहती है।

यहाँ दाह, वाप्य, श्वास और वपु इन विशेषणों के साथ 'अम्भ. प्रसृतिम्पत्र' 'प्रणालोचित' 'प्रेङ्खितदीपदीप्तलतिका' और 'पाण्डिम्नि मग्नम्' विशेषणों के प्रयोग में अत्यधिक चापला बढ़ गई है।

(२) शब्दवक्रता उक्त उदाहरण में 'प्रसृतिम्पत्र' शब्द प्रसृति वक्षति इति इस विग्रह के अनुसार प्रसृतिपूर्वक पञ्चातु से 'परिमाणे पत्र' सूत्र से सप्त प्रत्यय और 'खिल्यनख्ययस्य' में मुष् का घागम होकर बनता है। वियोगिनी के शरीर में इतना दाह है कि यदि चुल्लू भर पानी लिया जाय तो वह क्षण भर में तप्त होकर उड़ जायगा। यहाँ प्रसृतिम्पत्र में स्वभाव सुन्दर मुष् प्रत्यय रचना की शोभा को उत्पन्न करने वाली किसी घपूर्व शब्दवक्रता को परिपुष्ट कर रहा है।

(३) वैत्तिर्वैचित्र्यवक्रता नायिका का शरीर विरहाधिक्य के कारण पाण्डुता में डूब रहा है। वियोग के दुःख में पीले पड़ जाने के विद्ये 'पाण्डिम्नि मग्न वपु' का प्रयोग कितना शोभनीय है। यह वृत्त वैचित्र्यवक्रता को स्पष्ट कर रहा है।

(४) लिङ्गवैचित्र्य दशता : भिन्न-भिन्न लिङ्गों के सामानाधिकरण्य के प्रयोग में उत्पन्न शोभा कुछ घपूर्व होती है। इसे साहित्यशास्त्री लिङ्गवैचित्र्य-वक्रता कहते हैं।

रावण के बचनों में यह वचनता दीख पड़ती है—

मत्पारोपणकर्मणापि बहवो वीरव्रतं त्माजिता ।

कार्यं पुञ्जितबाणमीश्वरपनुस्तदोभिरेभिर्ममा ।

स्त्रीरत्न तदगभंसमवमितो तभ्य च लीलामिता

तेनैषा मम फुल्लपद्मजवनी जाता दृशा विभ्रति ॥१

जिसके आगेपण के व्यापार ने ही बहुतों को वीर व्रत में मुक्त कर दिया है, उन्हीं धनुष पर मुझे अथवा उन भुजाओं में बाण चढ़ाना है जिसमें मुझे प्रयोजनात्वा स्त्रीरत्न की प्राप्ति होगी । अतः ये मेरी शीमां आँखें खिन्ने हुए बचनों के समूह के समान सुगोभिन हो रही है ।

यहाँ 'दृशा विभ्रति' के निर्वीचिज्ञ और फुल्लपद्मजवनी के नपुंसकनिष्ठ होने तथा उन दोनों का समानाधिकरण प्रयोग होने में निष्ठवैचित्र्यवचनता का बोध हो रहा है ।

नमस्वना लामिनकल्पवती प्रबालबालभ्यजनेन तस्य

उरस्थलेऽकीर्णं दक्षिणेन सर्वाभ्यद सौरभमगराज ॥२

बाबु के द्वारा कल्पित कल्पवती के बालबालव रूप व्यजन में दक्षिण पवन ने उसके उरस्थल पर सर्वाभ्यद सूरभिवाला अजरग बिभेर दिया ।

इस श्लोक में 'सर्वाभ्यद सौरभम्' नपुंसकनिष्ठ और 'अजरग' पुल्लिङ्ग का समानाधिकरण प्रयोग निष्ठवैचित्र्यवचनता को पुष्ट कर रहा है ।

(५) वर्णविश्राम वक्रता : मञ्जुद वर्णविश्राम द्वारा बाबु में चारुण प्रस्फुटित होता है । सीमा श्वपथर के अथवा पर मिथिनापुत्री आने हुए रावण के मनापनियों को दिये हुए आदेश में वर्णविश्रामवचनता दीख पड़ती है—

नाम्बूमीनदमुद्यत्सुरतस्तत्प्रमत्ते मानुसाभि

पाप पाप कान्तोवृत्तवदनदल नारकेलीकान्ताम् ॥

मेव्यन्ता व्योमयावाभामजलज्वित संन्यमोमन्निनीभि

दंभुद्गु इभूहेकेनीकनित कुहकुहागवहान्ता वनान्ता ॥३

यहाँ पाप पाप, कदनदल, दम्भुद्गुहेकेनीकनित कुहकुहागवहान्ता, वनान्ता आदि में दो दो अक्षरों के एक साथ द्विव्यास में बचनता उत्पन्न हो गई है ।

वर्णविन्यास से उत्पन्न सौष्ठव का दूसरा उदाहरण भीमा की प्राप्ति न कर सकने के कारण उन्मत्त रावण की चकोरो को सम्बोधित कर कही गई उक्ति में लक्षित होता है—

अयि पिकत चकोरा वृत्तस्त्रमुन्नाय कण्ठान्,
 प्रमकवलनचञ्चच्चन्द्रकान्तीरमिश्रा ।
 विरह्विधुरिताना जीवितत्राणहेतो
 भवति हरिणवदमा येन तेजो ददति ।

इस छन्द में वृत्तम्, उन्नाय कण्ठान्, चञ्चच्चन्द्रकान्तीरमिश्रा, त्राणहेतो हरिणवदमा आदि पदों की एक साथ योजना में वर्ण-विन्यास जन्म सौंदर्य की सृष्टि होती है ।

(६) वचनवैचित्र्यवक्रता : "मैथिली तस्य दारा ।"

यह रावण की उक्ति है । यहाँ मैथिली एक वचन और दार बहुवचन में प्रयुक्त है । इसीगिये यह वचनवक्रता या प्रत्ययवक्रता का उदाहरण है । इसी प्रकार मैथिली शब्द स्त्रीलिङ्ग और दार पद पुलिङ्ग होने के कारण लिङ्गवक्रता की भी प्रतीति हो रही है ।

(७) प्रकरण-वक्रता : जहाँ एक नाटक के भीतर दूसरा नाटक प्रयुक्त होकर गाने प्रबन्ध की सर्वस्वभूत अलौकिक वक्रता को पृष्ठ करता है उसे शारङ्ग-कार प्रकरण वक्रता कहते हैं । राजशेखर द्वारा बातगमापण नाटक में सीता-स्वयंवर नामक नर्तक की स्थापना प्रकरण-वक्रता का उदाहरण है ।

राजशेखर के उचिन-वैचित्र्य के अध्ययन में स्पष्ट है कि उन्होंने हम तन्व या घपनी रचनाओं में जिस वीक्षण के साथ निर्वाह किया है वह उन युग के किसी अन्य कवि में नहीं मिलता । ये प्रयोग न केवल शास्त्रीय दृष्टि में विशेष हैं बल्कि साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि में भी महत्वपूर्ण हैं ।

राजशेखर में हम नाद-सौंदर्य, शब्द-सौंदर्य, शब्दों की अलङ्कृति एवं वक्रोक्ति का उचित विन्यास यत्न-तत्न पाते हैं । यह उनके औचित्य-विशेष का ही प्रदर्शन नहीं करता प्रयुक्त वाक्य-सौंदर्य को भी शिथिल कर देता है ।

राजशेखर की भाषा

राजशेखर 'रत्नराज' में । उस समय कविराज की उपाधि में रती विभूषित हो मन्ना था जो कवि विभिन्न भावधरो विभिन्न प्रवृत्तों को अभिव्यक्त करने में

काव्य-निर्माण करने में समर्थ होता था।^१ राजशेखर की कृतियों में देखकर उनकी 'कविशेखर' उपाधि की स्थापना स्वयंसेवक हो जाती है। वे मगध के प्रसिद्ध पण्डित थे। उन्होंने न केवल शास्त्रियों में अपनी धारणाएँ मगध की साहित्यिक परम्परा की सभ्यता बनाये रखा, साथ ही धर्मशास्त्र समस्त शास्त्र धारण प्राप्त भाषा की सृष्टि नाम उपकरण के प्रतिबन्ध पर पूर्णतया साहित्यिक रूप दे दिया। उनके युग में विभिन्न प्राचीन भाषाएँ भी प्रचलित थीं। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्राचीन भाषाओं के शब्दों का भी समान्य प्रयोग किया। इस प्रकार राजशेखर की भाषा में मगध, प्राकृत एवं देशज शब्दों का समन्वय हो गया है।

राजशेखर की ससृष्ट राजशेखर की ससृष्ट व्याकरण-परिनिष्ठा, परिभाषित एवं प्रौढ़ है। इनके द्वारा प्रयुक्त मगध शब्द-शक्ति एवं वृत्त-शब्द-संघर्ष निर्माण करने की क्षमता रखती है। एक शब्द के लिये अनेक पर्यायों का प्रयोग उनके समुद्र शब्द भाण्डागार का सूचक है। उदाहरणार्थ शिव के पर्यायवाची शब्द, जिनका प्रयोग राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है, इस प्रकार है— नीललोहित,^१ इन्द्रमोहिनि,^२ भृगुनि,^३ पिताही,^४ गिरीश,^५ पावनीनि,^६ भीरुश,^७ महेश्वर,^८ इन्द्र,^९ शिवादि,^{१०} हर,^{११} महादेव^{१२} भग,^{१३} इन्द्रशेखर^{१४} शम्भु,^{१५}

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० ६५ यन्तु तत्र तत्र मायाविषयेषु तेषु तेषु प्रबन्धेषु तस्मिन्तस्मिन्भ्रसे स्वतन्त्र ग कविशेखर ।
२. बालरामायण अ० १ पृ० १२, अ० ३ पृ० ८१, अ० ४ पृ० १०२, अ० ६ पृ० १०७ । ३. वही अ० १ पृ० १६, अ० २ पृ० ४२, अ० ३ पृ० ६१ ।
४. वही अ० १ पृ० १०, २६ । ५. वही अ० ६ पृ० ९२, ९८ काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ६४, अ० ११ पृ० ६० । ६. बालरामायण अ० ४ पृ० ८१ ।
७. बालरामायण अ० ३ पृ० ०६ । ८. वही अ० १ पृ० १८, अ० २ पृ० ६० ।
९. वही अ० १ पृ० १९, २१, २६ । १०. वही अ० १ पृ० १८ । ११. वही अ० २ पृ० ४३, ४८, अ० ३ पृ० ६५, अ० ४ पृ० ९४ । १२. वही अ० १ पृ० २१, अ० २ पृ० ३१, ३२, ३६ । काव्यमीमांसा अ० १०, ८९, अ० १५ पृ० ८५ । १३. वही अ० २ पृ० ४१, अ० ३ पृ० ८२ । १४. वही अ० १ पृ० २२, २९; अ० २ पृ० ४५, अ० ३ पृ० ६२, ७८ । १५. वही अ० १ पृ० २३; काव्यमीमांसा अ० १२ पृ० ६३ ।

पशुपति,^१ चण्डोश,^२ उमापति,^३ अर्धनारीश्वर,^४ जम्भारि,^५
 गिरीशपति,^६ घूर्जटि,^७ चन्द्रशेखर,^८ छण्डेन्दुचूडामणि,^९ शितिकण्ठ,^{१०}
 मृगाकचूडामणि, त्रिनयन,^{११} भवानीपति,^{१२} रथागु,^{१३} विद्याधर,^{१४} ह्यम्बक,^{१५}
 त्रिलोचन,^{१६} नीलकण्ठ,^{१७} भवानीवल्लभ,^{१८} शशिशेखर,^{१९} वृषभध्वज,^{२०}
 वृषभध्वज,^{२१} त्रिपुरप्लोषी,^{२२} वृषलाहन,^{२३} मधेन्दुमौलि,^{२४} पार्वती-प्राण-
 नाथ,^{२५} इन्दुमौलि,^{२६} चन्द्रचूडामणि,^{२७} वृषभलाहन,^{२८} व्रैयध,^{२९}
 सदाशिव,^{३०} भाललोचन,^{३१} व्रैयनाथ,^{३२} ईश्वर,^{३३} परमेश्वर,^{३४} प्रीतेन्दुमौलि,^{३५}
 शूलपाणि,^{३६} त्रिपुरान्तकर,^{३७} भवानीसन्धा,^{३८} वृषाक,^{३९} शकर,^{४०} कृत्,^{४१} श्यामकण्ठ,^{४२}
 दिगम्बर,^{४३} दिग्वासस्,^{४४} शूली,^{४५} चन्द्रचूड,^{४६} मूढ^{४७} ।

१ बालरामायण अ० १ पृ० २५, अ० २ पृ० ४४, ४८, ५१, काव्यमीमांसा
 अ० १२ पृ० ६३ । २ वही अ० १ पृ० २७, अ० २ पृ० ४६, अ० ३ पृ०
 ८०, ८२ । ३ वही अ० २ पृ० २९; अ० ३ पृ० ७७ । ४ वही अ० १० पृ०
 २८८, कर्पूरमञ्जरी १, २८, २९ । ५ वही अ० २ पृ० २९ । ६ वही अ० २
 पृ० ३२ । ७ वही अ० ३ पृ० ८० काव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७२ ।
 ८ वही अ० ३ पृ० ७३, अ० ४ पृ० ९६ । ९ वही अ० २ पृ० ३७ ।
 १० वही अ० ४ पृ० ८८ । विद्वशालभजिका अ० ४, १४, १५ । ११ वही
 अ० ३ पृ० ५३ । विद्वशालभजिका अ० ४, २७ । १२ वही अ० २ पृ० ४३,
 ४५; विद्वशालभजिका अ० १, २२ । काव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७६ । १३ वही
 अ० ४ पृ० ८७ कर्पूरमञ्जरी ३ २०, २१; काव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७२ ।
 १४ वही अ० २ पृ० ४१, अ० ३ पृ० ६५, ८१; अ० ४ पृ० ८६ । १५ वही
 अ० २ पृ० ४३ । १६ वही अ० २ पृ० ५१ । १७ वही अ० २ पृ० ७८ ।
 १८ वही अ० ३ पृ० ८० । १९ वही अ० ३ पृ० ८२ । २० वही अ० ४
 पृ० ८८, ९२ । २१ वही अ० ४ पृ० ८८ । २२ वही अ० ४ पृ० ९१ ।
 २३ वही अ० ४ पृ० ९३ । २४ वही अ० ४ पृ० ९५ । २५ वही अ० ४
 पृ० १०० । २६ वही अ० ४ पृ० १०९ । २७ वही अ० ४ पृ० ११६ ।
 २८ वही अ० ४ पृ० ११९ । २९ बालरामायण अ० ८ पृ० २५३ ।
 ३० वही अ० ९ पृ० २६१ । ३१ वही अ० ९ पृ० २६१ । ३२ वही
 अ० १० पृ० २९० । ३३ काव्यमीमांसा अ० १६ पृ० ८६, ८७ । ३४ वही
 अ० १३ पृ० ७२ । ३५ वही अ० ११ पृ० ६० । ३६ बालरामायण अ० २
 पृ० २९ । ३७ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ । ३८ बालरामायण अ० ३
 पृ० ९७ । ३९ वही अ० ३ पृ० ७९ ।

राजशेखर के ग्रन्थों में सीता के भी अनेक नाम मिलते हैं । जैसे पृथ्वीपुत्री,^१ कमलाक्षी, मृगाक्षी, सलिताङ्गी, वृशाङ्गी,^२ जनकनन्दिनी, रामगृहिणी,^३ वैदेही,^४ मैथिली,^५ जनकराजपुत्री,^६ जानकी,^७ जनकतनया,^८ धरणी-सुता,^९ जनकात्मजा,^{१०} जनकराजकन्या,^{११} अर्गभंसम्भवा,^{१२} और सीर-ध्वजात्मजा ।^{१३}

रामचन्द्र के भी अनेक नामों की जानकारी बालरामायण से प्राप्त होती है । यथा-रामभद्र,^{१४} राम,^{१५} राघव,^{१६} दाशरथि,^{१७} रघुनन्दन,^{१८} सीतारनि,^{१९} रघुपति,^{२०} जानकीवल्लभ,^{२१} रघुशामणी^{२२}, मार्तण्डिककुलप्रकाशनिलक^{२३}, तैलोक्य-रक्षामणि,^{२४} रामदेव,^{२५} दशरथनन्दन,^{२६} बालनारायण^{२७}, भरताश्रज,^{२८} कोशलनरेन्द्र-नन्दन,^{२९} रघुकुलचन्द्र,^{३०} मैथिलीनाथ,^{३१} रघुभुभुज,^{३२} दशकण्ठपूदन,^{३३} कौशल्यातनय^{३४} ।

रावण की नामावली भी दृष्टव्य है—दुर्धरतपोविशेषपरितोषितारविन्दामन,^{३५} त्रिभुवनैकमल्ल,^{३६} हेलावन्दीकृतमहेन्द्र^{३७}, कपिशलोमशवाह,^{३८} अहल्याजार^{३९}

१ वही अ० १० पृ० २८६ । २ वही अ० १० पृ० २८४ ।
 ३ वही अ० १० पृ० २८१ । ४ वही अ० ५ पृ० १३९ । ५ वही
 अ० २ पृ० ५७, ६३, अ० ५ पृ० १४२ । ६ वही अ० ५ पृ० १२४ ।
 ७ वही अ० ३ पृ० ५७, ६४ । ८ वही अ० ३ पृ० ५७ । ९ वही अ०
 १ पृ० १६ । १०. वही अ० १ पृ० १९ । ११ वही अ० ५ पृ० १२३ ।
 १२ बालरामायण अ० १ पृ० १४ । १३ वही अ० २ पृ० ३२, अ० ३
 पृ० ५६ । १४. वही अ० २ पृ० ४८ । १५ वही अ० ६ पृ० १७७ ।
 १६. वही अ० ४ पृ० ११२ । १७ वही अ० ५ पृ० १४४ । १८ वही
 अ० ६ पृ० १४९ । १९ वही अ० ७ पृ० १७३ । २० वही अ० ७
 पृ० १७९ । २१ वही अ० ७ पृ० १८३ । २२ वही अ० ७ पृ० १८९ ।
 २३. वही अ० ८ पृ० २१५ । २४ वही अ० ९ पृ० २५९ । २५ वही
 अ० ३ पृ० ५७, अ० ६ पृ० १६० । २६ वही अ० ९ पृ० २७० । २७ वही
 अ० १० पृ० २९३ । २८. वही अ० १० पृ० ३०७ । २९ वही अ० ६
 पृ० १५६ । ३०. बालरामायण अ० १० पृ० २७७ । ३१. वही अ० ९
 पृ० २६१ ।

ब्रुहिस्रणप्ता,^१ लङ्केन्द्र,^२ लङ्काभर्ता,^३ निशाचरपति,^४ दशानन,^५ पुलस्त्यास्य,^६
 दशकण्ठ,^७ दशवदन,^८ पौलस्त्य,^९ दशकन्धर,^{१०} पातकैकरत्तिक, विरञ्च-
 कुलकलङ्क, लङ्कोपपति, कुबेरवरी,^{११} सप्रन्दननन्दन,^{१२} निशाचरचक्रवर्ती,^{१३}
 नक्तचिरचक्रवर्ती,^{१४} राक्षसेन्द्र,^{१५} पुलस्त्यपुत्र,^{१६} पुलस्त्यनन्दन,^{१७} राक्षसचक्रवर्ती,^{१८}
 दशमुख^{१९} और दशग्रीव^{२०} ।

पार्वती के लिये भिन्न पदों का प्रयोग किया गया है पार्वती,^{२१} हरवत्सभा^{२२}
 मृटानी,^{२३} चामुण्डा,^{२४} देवी,^{२५} हिमाद्रिमुता,^{२६} महेश्वरवत्सभा,^{२७} भवानी,^{२८}
 भगवती,^{२९} गिरिमुता,^{३०} अचलमुता,^{३१} उभा,^{३२} गिरिदुहितर^{३३} रत्नाणी,^{३४}
 गिरिजा,^{३५} गिरोन्द्रमुता,^{३६} एव गौरी^{३७} ।

इसी प्रकार परशुराम के लिये जामदग्न्य,^{३८} परशुराम, आत्रन्मर्वदानम,
 श्रुत्यर्थवीधीगुरु,^{३९} भार्गव, भर्गशिष्य, रेणुरापुत्र, गिरिशवालशिष्य,^{४०} भृगुपुत्र,

१. वही अ० ८ पृ० २१४, २५३ । २. वही अ० १ पृ० २३, अ० ७ पृ० १८३ ।
- ६ वही अ० ६ पृ० १५६ । ४. वही अ० २ पृ० ५७, अ० ६ पृ० १६० ।
- ५ वही अ० ५ पृ० ११५ । ६ वही अ० १ पृ० १५, अ० ३ पृ० ६४ ।
७. वही अ० १ पृ० २२, अ० ३ पृ० ६३ । ८ वही अ० २ पृ० ३६, ४३, ५८
- ९ वही अ० १ पृ० १२, अ० २ पृ० ३८ । १० वही अ० २ पृ० ४७ ।
- ११ वही अ० २ पृ० ४६ । १२ वही अ० २ पृ० ४२ । १३. वही अ० २
 पृ० ३६ । १४. वही अ० १ पृ० २७ । १५. वही अ० १ पृ० २० ।
१६. वही अ० १ पृ० २१ । १७. वही अ० १ पृ० २० । १८. वही अ० १
 पृ० १६ । १९ वही अ० २ पृ० ३२ । २० वही अ० १ पृ० १९ ।
२१. वही अ० १ पृ० २५ । २२ वही अ० १ पृ० २३ । २३ कर्पूरमञ्जरी
 अ० ४, १९ । २४. बालरामायण अ० २ पृ० ३२ । २५ वही अ० २ पृ० ४५ ।
- २६ वही अ० ४ पृ० ९५ । २७ वही अ० २ पृ० ४४ । कर्पूरमञ्जरी १।६।
२८. बालरामायण अ० ४ पृ० ९३ । २९ वही अ० ४ पृ० ९६ । ३०. वही
 अ० ४ पृ० ९५ । ३१ वही अ० ४ पृ० १०९ । ३२. वाक्यमीमांसा अ० १३
 पृ० ७१ । ३३ कर्पूरमञ्जरी अ० १, ३ । ३४. वही अ० १, २९, ३० ।
- ३५ बालरामायण अ० १ पृ० १७ । ३६ वही अ० २ पृ० ३२ ।
- ३७ वही अ० २ पृ० ३८, ४३, ५१, ५२, अ० ३ पृ० ८६ ।

इन्दुशेखरारिगण्य,^१ नीललोहितारिगण्य,^२ रणुकेय,^३ जमदग्निमूनु,^४ भृगुनन्दन,^५
जमदग्न्यपाय,^६ भार्गवपुङ्ग,^७ जमदग्निज,^८ जण्डीशरिगण्य,^९ रेणुकागुनु^{१०} ।

समुद्र के लिये भागीरथीबलभ,^{११} जलनिधि,^{१२} समुद्र,^{१३} पयोधि,^{१४}
अम्भोधि, अम्बुनिधि, वारानिधि,^{१५} जलधि,^{१६} अम्बुधि,^{१७} तरुगिणीनाथ,^{१८}
रत्नाकर,^{१९} अक्षि,^{२०} जलधन,^{२१} सागर,^{२२} भागीरथीनाथ,^{२३} पीयूषकर,^{२४}
यशोवन्तभ,^{२५} नदीनाथ,^{२६} अर्णव,^{२७} महार्णव,^{२८} भकरानथ,^{२९} अक्षुपार,^{३०}
वारिराशि,^{३१} महोदधि,^{३२} ये शब्द प्राये हैं ।

राजशेखर के कोप में अनुकरणात्मक शब्दों का प्रचुर है जिनके प्रयोग में
भाषा में मीन्दर्ष और अभिव्यञ्जना का समावेश हो गया है । ये शब्द हैं—विरह-
भाविरह,^१ सुप्रिनमसुप्रिन,^२ सन्दावसन्द,^३ भटमटित,^४ रम्भारम्भादल,^५
ताराताराधिप,^६ कहरहारव,^७ कोष्ठप्रकोष्ठ,^८ कोट्टाट्टट्ट,^९ भलभल्ल,^{१०}
चञ्चत्र,^{११} परलुकपरशुष,^{१२} मञ्जुल-मञ्जुल,^{१३} चतुरङ्ग-चतुरङ्ग,^{१४}
मातङ्गमातङ्ग,^{१५} स्थन्दनस्थन्दन,^{१६} अनौरसमनोह^{१७} ।

१ बालरामायण अ० २ पृ० ६० । २ वही अ० २ पृ० ६२ ।
३ वही अ० ६ पृ० ९१ । ४ वही अ० ६ पृ० ९५ । ५ वही अ० ४
पृ० ९५ । ६ वही अ० ६ पृ० ९७ । ७ वही अ० ४ पृ० १०० ।
८ वही अ० ६ पृ० १०४ । ९ वही अ० ६ पृ० १०९ । १० वही
अ० ७ पृ० १०३ । ११ वही अ० ७ पृ० १०६ । १२ वही अ० ७ पृ० १०७,
अ० १० पृ० २९८ । १३ वही अ० ७ पृ० १०८ १०९ । १४ वही
अ० ७ पृ० १०८ । १५ वही अ० ७ पृ० १०९ । १६ वही अ० ७ पृ०
११९१ । १७ वही अ० ७ पृ० ११३ । १८ वही अ० ७ पृ० ११९ ।
१९ बालरामायण अ० ५ पृ० २७ । २० वही अ० ४ पृ० २७ ।
२१ वही अ० ६ पृ० १०९ । २२ वही अ० ४ पृ० १०९ । २३ वही
अ० ५ पृ० १३३ । २४ वही अ० ५ पृ० १३३ । २५ वही अ० ५
पृ० १६६ । २६ वही अ० ६ पृ० १४५ । २७ वही अ० ७ पृ० ११९ ।
२८ वही अ० ७ पृ० २०१ । २९ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३० वही
अ० ७ पृ० २०१ । ३१ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३२ वही अ० ७
पृ० २०१ । ३३ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३४ वही अ० ७ पृ० २०१ ।
३५ वही अ० ७ पृ० २०१ ।

राजशेखर को कुछ शब्दों से विशेष लगाव है । इन्होंने इन शब्दों की आवृत्ति एव उनका उचित विन्यास किया है । ये शब्द हैं—गौष्ठीपरिष्ट,^१ पाण्मासिक,^२ मासल,^३ माञ्जिष्ट,^४ सौविदल्ल,^५ दुग्धमग्ध,^६ पाङ्गुण्य,^७ भ्रौन्नागत,^८ उपनिपद्,^९ भूर्भुव स्व,^{१०} द्विभे,^{११} कौदण्ड,^{१२} कौदण्डदण्ड,^{१३} षण्ड,^{१४} डामर,^{१५} धामणी,^{१६} और ग्राम^{१७} । राजशेखर ने कपितपय शब्दों का प्रचलित अर्थ से भिन्न रूप में प्रयोग किया है । परन्तु उनमें कहीं विमगति नहीं आने पाई । उदाहरणार्थ— सनाभि का प्रयोग समान अर्थ में, मूल का उच्च के अर्थ में, विलिन का मिथित के लिये, वन का सामान्य वृक्ष समूह के लिये, प्रणयिनी वा सुन्दरी के लिये एव परिश्रम का आति के लिये प्रयोग ।

इनकी रचनायें कतिपय नूतन किन्तु रमणीय शब्दावली में विभूषित हैं । यथा—पुराणमौक्तिकमणिच्छायै^१ समभ्रुच्छ्रष्टविश्वन्द्रमा,^२ बालविद्यान^३ परिणामस्तुटित-दाडिमी-कल^४ सीलागुह,^५ कुत्तगुह,^६ दीक्षागुर,^७ रमरलेखवाचन-केनीप्रदीप,^८ पारदरसभुम्बिन,^९ पारदरसतिक्तन^{१०} ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजशेखर की सत्कृत उनके प्रौढ़ पांडित्य से मण्डित हैं ।

१. विद्वज्जालभञ्जिका अ० १, ६, ३५-३६, अ० ६, १-२ । २ वही १।१७-२५ । ३ वही १।१२, १८, २६, ३६; ३।१६-१७ बालरामायण ४।१०-११; ७।६४-४५ । ४. विद्वज्जालभञ्जिका १।१, ३।०-१-२, बा० रा० ३।१०, २४, ८५; ५।२४, ३८ । ५ वही १।६; बा० रा० १।४०-४१, ४।५६-५७ । ६ वही १।३९, ३।८, बा० रा० ५।३८ । ७ वही १।९, ३।०-१-२; बा० रा० ५।५८-५९ । ८. वही १।३३-३४; २।३-४; ४।१-२ । ९ बा रा. ३।७-८; ४।०-१-२, २९, ६८ । १०. वही १।६१, २।२९-३०, ५० । ११. वि भ १।११-२३, बा० रा० १।६२ । १२. वही १।४१, ४७, ४३, ४५, ७०, ७३, ८३, ४।१७, २३, ७२, ७८; ५।३२, ६५८ । १३. वही १।६१, ४७, ६१; ४।२६ । १४. वही १।४६, ६१-६२; २।२९; ३।८९, ३०, ६२, ४।१९ । १५ वही १।४६; २।७, ३४, ५८, ३।३७ । १६ वही ३।१०; ४।५०-५१ । १७. वही ५।६-७, १८-३६ । १८ विद्वज्जालभञ्जिका १।११ । १९. वही १।११। २०. वही १।११। २१. वही १।१४-१५ । २२. वही १।२९ । २३. वही १।१ २४. वही १।२७ । २५. वही ३।११ । २६ वही ३।१७ । २७ वही २।१६

राजशेखर की प्राकृत

प्राकृत भाषा राजशेखर के ग्रन्थों में प्राकृत का पूर्ण विकसित रूप दृष्टिगत होता है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक की रचना प्राकृत में ही है। वासुदेवरायण के गीत पात्रों के अवाधे में तथा विद्वशात्मजिका के कल्पित पात्रों के सम्भाषण में उसी भाषा का व्यवहार किया गया है। राजशेखर का प्राकृत के प्रति प्रेम निम्न पक्तियों में ध्वनित होता है।

परमा साकिधवधा पाउदवध्वां वि ह्वांइ सुउमारो ।

पुरममहिलाण जेतिममिहत्तर तेतिम पिमाण ॥'

सम्बत भाषा में की गई रचनाएँ नीरस होती हैं, प्राकृत की रचनाएँ ही मधुर होती हैं। जिस तरह पुष्प कटोर होने हैं उसी तरह सम्युक्त रचनाएँ कटोर होती हैं। जिस तरह स्त्रिया मुकुमार होती हैं उसी तरह प्राकृत रचनाएँ मधुर और मुकुमार होती हैं।

राजशेखर ने अपनी रचनाओं में प्राकृत के शौरसेनी एवं महाराष्ट्री इन दो भेदों का ही प्रयोग किया है। इनके वाक्य में शौरसेनी मध्य के लिये तथा महाराष्ट्री पद्य के लिये प्रयुक्त है।

शौरसेनी शूरसेन जनपद के निवासियों की भाषा की बोधकाल की भाषा शौरसेनी कहलानी थी। शौरसेनी प्राकृत की प्रवृत्ति सख्त ही है।

महाराष्ट्री प्राकृत प्राकृत शब्द का प्रयोग साधारणतः महाराष्ट्री प्राकृत के लिये ही किया जाता है। इस भाषा की उल्लेखनीय विशेषता इनके स्वरवाचक्य में है। शौरसेनी भी अपनी विशेषताओं के अनिश्चित महाराष्ट्री प्राकृत पर आश्रित है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री के शब्दों का प्रयोग निम्न रूप में उदात्त है—

संस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
पद्य	पद्य	पद्य
तथा	तथा	तथा
यथा	जथा	जथा
वयम्	वयम्	वटम्
इत्	इत्	इत्

संस्कृत	श्रीगोत्री	महात्तरी
तन	तधो	तधो
इदम्	इदम्	इधम्
इति	इदि	इठ
जानानि	जानादि	जाणाइ
ददानु	देनु	देउ
भवतिन्तु	भांदिन्तु	हांई-हां
भविष्यति	भविस्सति	होइ
सभने	सहदि	सहइ
वतने	वसदि	वसई
प्रवर्तनाम्	पवतदु	पवत्तउ
तिष्ठति	चिष्ठदि	थह
हरति	हरदि	हरइ
वप्यताम्	वपिअदु	कहिन्नंउ
त्रियताम्	कारिअदु	किज्जउ
दुश्पने	दिसादि	दिसइ
भण्यते	भणिअदि	भण्णइ
कृत	किद	कअ
गत	गद	गअ
जात	जाद	जाम
हित	हिद	हिअ
भानीत	भानीद	भानीअ
स्थित	थिद	थिअ
स्थापित	थाविद	थाविअ
कलित	कलिद	कलिअ
कथित	कथिद	कथिअ
घटित	घटित	घडिअ
दमित	दडद	दहअ
पुषित	पुषिद	पुषिअ
भूत	भरिद	भरिअ
निवेशित	निवेशिद	निवेशिअ

सम्भृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
अवतीर्ण	श्रीदिल	अवडन्न
अद्भुत	अच्चप्रभुद	अम्भुअ
प्रसरित	प्रमविद	प्रमइ
प्रभृति	पहुदि	पहुड
प्राकृत	पाउड	पाउअ
संस्कृत	सक्कद	सक्कअ
मनोरथ	मनोरथ	मनोरह
भरवत	भरगद	भरग
मिथुन	मिथुन	मिथुन
गति	रदि	रड
रीति	रीदि	रीय
वाट	वाड	वाअ
तोप	तोद	तोअ
सरस्वती	सरस्वदि	सरगइ
सरित	सरिद	सरिअ
सम्पथ	सम्भअ	सम्भह
दिवग	दिवग	दिअड

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री के उन सम्भृत मूल-शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है जिनके रूप दोनों में एक ही है ।

शौरसेनी एवं महाराष्ट्री

सकृत	मुगाव
मुगाव	वेण्ट
बृग	विर्मा विष्ठा
मुगपुला	मधनाछन
मुगनाछन	रिक्क
कदा	ब्रुल
जीर्ण	बेग
बेण	मोतिअ
मोतिअ	मुगादअ
मुसाराअ	

किङ्कणी	किङ्किणी
फलक	फलिम
शृङ्खला	मिथिला
महोत्सव	महूषव
अधकार	अधआर
स्वप्नक	मिथिणम

राजशेखर की मौलिकता उनके नूतन शब्द प्रयोगों में है। जैसे विथिन के लिये दिल्ल एवं मिदिल का प्रयोग, लट्टी का श्लिष्ट प्रयोग (लता एव यष्टि रूप में) यष्टि के लिये लछिनी का प्रयोग तारुण्य के लिये लगिम राजा के लिये ठक्कुर शब्द का प्रयोग प्राकृत में नितान्त नवीन है। इन शब्दों पर कन्नौज की म्यानीय बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

व्याकरण की शुद्धता : राजशेखर की प्राकृत व्याकरण परिनिष्ठित है। दसका भाषा का मूल आधार व्याकरण है। व्याकरण की दृष्टि में शुद्धशुद्धता के प्रति राजशेखर पूर्णतया जाबद्धक है। कतिपय प्राकृत शब्दों के विवेचन में वह नयन स्पष्ट हो जायगा।

व्याकरण की दृष्टि से कुछ प्राकृत शब्दों की समीक्षा

धनुद्^१ — 'धनुपो वा'^{१७} धनुप् शब्द के प्राकृतिकरण में अत्यन्त व्यजन का ह हो जाता है।

सारिच्छो^२ — 'अत समुद्ययो वा'^{१७}—सहृषा शब्द के आदि आकार का जो हो जाता है।

णिडाल^३ — 'पक्वाङ्गार-ललाटे वा'^{३७} तथा एपवादेरत इन्ध वा भवति — मूल में ललाट का णिडाल या णडाल होता है।

झौल्ल^४ — 'उदोद्वादे'^{४७}—मूल में झार्त्र का झौल हो जाता है।

दूसह^५ — 'लुकि दुगो वा'^{१७}—दुस्मह शब्द के दुर को दू होकर दूसह बन जाता है।

१.	कपूरमजरी	२।३	१७	शब्दानुशासन	१-२२
२.	वही	२।३	२७	शब्दानुशासन	१-२२
३.	वही	४-१९	३७	शब्दानुशासन	१-४४
३	वही	२-२०	३७	शब्दानुशासन	१-४७
४.	वही	१-२८, ३-१, ४-४७	५७	शब्दानुशासन	१-८२
५	वही	४।१	५७	शब्दानुशासन	१-११५

घोर^१ — 'घ्रातकूष्माण्डी-तूणीर-कर्पूर-स्थूल ताम्बूल-गुड्डी-मूले'^{१३} सूत्र से स्मूल का घोर रूप होता है ।

तोणीर^२ — उपयुक्त सूत्र से ही तूणीर का तोणीर हो जाता है ।^{१४}

दूहव^३ — 'उत्वे दुर्भंग-सुभगे व'^{१५} सूत्र से दुर्भंग का दूहव हो जाता है ।

चिकुर^४ — 'निकप-स्फटिक-चिकुरे ह'^{१६} — चिकुर के क का इम नियमानुसार ह हो जाता है ।

बग्मह^५ — "मन्मथे व"^{१७} — सूत्र में मन्मथ के म का व हो जाता है ।

हरिप्रदु^६ — "श्चो हरिप्रदुन्द्रे"^{१८} — सूत्र में हरिप्रदुन्द्रे शब्द के श्च का प्र हो जाता है ।

धूआ^७ — "दुहितृ-भगिन्योधूआ-वहिष्यो"^{१९} — सूत्र से दुहितृ का धूआ हो जाता है ।

आदत^८ — "मनिगोभय-श्रुक्ति एप्तारब्ध-पदानेमंशलावह-निष्पि-छिषका-दत-यादक"^{२०} सूत्र में आरब्ध शब्द आदत में परिवर्तित हो जाता है ।

निष्पि^९ — "उपयुक्त सूत्र में ही श्रुक्ति शब्द का रूप निष्पि होता है"^{२१} ।

वैहलिप्र^{१०} — "वैह्यम्यवैहलिप्र"^{२२} सूत्र में वैह्य शब्द को वैहलिप्र आदेश हो जाता है ।

बाहिर^{११} — "वहिसी बाहि-बाहिरो"^{२३} बाहि शब्द का इम सूत्र में बाहिर आदेश हो जाता है ।

१ वही २।२७, ४४, ३।६।१९ १प्र शब्दानुशासन १-१२४ । २ वही २।१६ । २प्र शब्दानुशासन १-१२४ । ३ वही ३।२३ । ३प्र शब्दानुशासन १-१९२ । ४ वही २।२१ । ४प्र शब्दानुशासन १-१८६ । ५ कर्पूर मजरी २-३, १८, ३९, ३।११ । ५प्र शब्दानुशासन १-२४२ । ६ वही २-४० । ६प्र वही २-८७ । ७ वही २।१९।१९ । ७प्र वही २-१२६ । ८ वही ४-९, १-४ । ८प्र वही २-१, ३८ । ८क प १-४ ५प्र-जन्दा० २-१३८ । ९ वही १-३४ । ९प्र वही २-१३३, २-१३८ । १० वही १-३४ । १०प्र वही २-१४० । ११ वही क० प० १-१४, १८-२० । ११प्र वही २-१४४, २।२।४।१।१८ ।

घर^१ — "गृहस्य घरापती" ^{१३}—इस सूत्र पर गृहशब्द घर में परिवर्तित हो जाता है ।

पण्डिम^{१४}, तुगिम,^{१५} धवनिम,^{१६} तरणिम,^{१७} त्वस्य डिमा-त्तपो वा^{१८}

सूत्र से पण्डिम तुगिम, धवनिम और तरणिम शब्द के त्व प्रत्यय डिम में परिवर्तित हो जाते हैं ।

उपर्युक्त वर्णिय उदाहरणों में स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर की प्राकृत इतनी व्याकरण सम्मत है कि आचार्य हेमचन्द्र ने राजशेखर की प्राकृत के आधार पर शब्दानुशासन में प्राकृत शब्दों का विवेचन किया है, यह कहना अनि-शयोक्ति न होगी ।

राजशेखर द्वारा प्रयुक्त प्राकृत भाषा पर दृष्टि डालने से हमें दो बातें अवगत होती हैं । एक तो यह कि इन्होंने देशज शब्दों को उद्धारना में धननाया है ।

कन्दोट^१ रिछोली,^२ हुनबोली,^३ (हलबुन्नाफा) छडल्ल,^४ टापरवर्णा
टंटाकराल,^५ वक्कर,^६ निमिगल,^७ बुक्ता,^८ अक्कल्ल,^९ वरिल्ल,^{१०}
उन्निय्यिर,^{११} वडिल्ल,^{१२} चबरीओ,^{१३} चग,^{१४} ओमगाविम,^{१५} मरह,^{१६}

१ वही १-१६ । १म वही २।१५४ । २ वही १।३६, ३।६ ।
१म वही २।१५४ । ३. वही २।४१ । १म वही २।१५४ । ४ वही ३-१९
६म वही २।१५४ । ६ वा० रा० पृ० ६९, २०२, २४२, २५९, वि० भ०
१-१९।२० । ७ वा० रा० पृ० ६५, ६६, ७५, १९४, २०९, २४०, वि० भ०
पृ० ३।२२।२३ क० म० ३-२० । ८ वा० रा० पृ० १५०, २००, क० म०
१-४, ३-३४ । ९ क० म० १-५, ३-९ । १० क० म० १-१८, २० ।
११ वा० रा० ११, वि० भ० ३।३-४ । १२. वा० रा० पृ० ८ । १३ वा०
रा० ९। १४ क० म० १-२० । १५ वा० रा० पृ० १४१, क० म० ४-१२ ।
१६. क० म० १-१२ । १७ क० म० १-२७ । १८ वि० भ० १-४
१९. वा० रा० १२६, क० म० १-३१-३३ । २०. वि० भ० १।३३।३४ ।
२१ क० म० २-२३, ३-३० ।

‘देव पेक्षदु अणवरप्रविष्पट्णणधुमिणचुण्ण विअ धम्मर विरअअन्तं भुवणमत्तम्पन्निदं रअअमुद्दमत्तं विअ वित्थारअन्तं तिदिवदंसण-दिष्णणप्रमाण विअ धरणिमण्डलं दमअन्न विट्ठिमवमुन्धराफंमभसं रवितुरणाण उन्धलिय-धुत्तियदवगलिगीकिअभूमिमारसणेण किअमहात्तुणहं भूअणधइणो सेमस्म वीरजण दसणपिवेमिअवेसविसेसपंमुलत्तणेण अयूअमवित्थारं विज्जाहरीहि पओमविमट्टणअणअन्दोट्टमरणगिवारणदिष्णपाणि पिहिदववणत्तणेण जुउत्थिअ अण्ठराहि पष्ठाटकारणुणिअन्तकरिन्वे कणअत्तिकिणोअणकारजाणिअन्त मन्दथ हेमारवसूअजन्ततुरग कट्टिमणुणिविअणमन्नाटणिमक्ककअकार-कालजन्तधाभूक्क अणपरिअंअपडिजागिअन्तरिकखरवअमवाणर अउरअवल-अडुलअरणक्खो हसमुत्तन्निअरेणुविरअण्णीरन्धान्धअरं समरअण अट्टठ ।’

सेनु निर्माण के वर्णन के लिये ममासबहुल भाषा का प्रयोग किना उचित है । देखिये —

‘गुरुगुहाणुहरपइट्टट्टमअरा तरक्खन्धणित्तण्णमखिणिलक्खका विसमसिलाअलफूफडिदसिप्पिसपुटमुक्कमोत्तियकरिअधदणिअम्वा तत्तण्णरुड-सेवालअडिलक्खा अतनिअडपत्तण्णानिमन्दमवणण विरवीअअपमअिअकमलण-हमअट्टकुत्तसिअिगिलरअडकन्दरअन्ता उअरि गिअडन्महिहरपव्वाअल्लिअणमण्ण किअिण वृणन्ति मित्तक्खअसअया ।’

समास-बहुल भाषा के ऐसे अनेक उदाहरण बालरामायण में विचरे पडे हैं किन्तु वे सब समयानुकूल भाव-व्यञ्जन के लिये ही हैं ।

यहाँ हृदय के भाषो को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न होता है, वहाँ वे आदि (समास रहित) शैली का आश्रय लेते हैं । कौक्यी का शोक-प्रदर्शन इस आदि शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, यथा

‘कौक्यी (सकरण) अअवदि रामदसाणु सीदाजणणि वसुन्धणे रअ देहि अअं पणइअणो भागादि रहुअलवधूसमागमे पडिक्खिहा ण जीविहं परिअं । हा आद भरद अलिअदुअजसक्ककिदा कअ दे मुह दसअस हा ताद संभाविदोअमि दुक्खेण हा अम्म विअमिअदअमि हा कोसल्ले सल्लिअदअमि हा भुमत्ते सरीरमेत्ती-कअअसि (इति रोदिति?) ।’

१. बालरामायण अ० ७।६४-६५ । २. बालरामायण अ० ७।४९-५० ।
३. बालरामायण ७।१९ ।

राजशेखर यथावसर अपनी कृदन्तप्रियता का भी परिचय देते चले हैं । वर्तमानकालिक कृदन्तो का रचिर विन्यास देखिये.—

अण्णोण्णञ्जुञ्जतजलहन्विसत्त्वा करलोत्केतिणिलुक्त्तगिरिपरिण्णो
सखिञ्जततिभमेदसिधुरवधवा समुल्लसतपीऊनसेसा दीसतदेवद्दुमपादवाल-
वाला अवलोद्दञ्जतनाराअण्णभूअरसमुच्चरिदधरिणिवेडणिलुक्कणट्टाणा वित्थ-
रत्तकोत्तुहुमगीत्तमणिकरविदपाअलजवाला उज्जलतलच्छीवाताविनामुद्देमा
सापपचपचजणजण्णीसखिण्णीसणाहा ससभभभमतकच्छवडिभगम्भा
पअडिञ्जतदामोदरणिद्दाविमुद्दसअणिञ्जसेसरमणिज्जामट्टिमिगीत्तगिलिञ्जतति
मिगिला णिब्भर भरति ।^१

सकिञ्जन्त, दीसन्त अवलोद्दञ्जन्त, वित्थरत्त, पअडिञ्जन्त गिलिञ्जन्त
वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप हैं ।

भूतकालिक कृदन्तो का भगोहर प्रयोग इस वाक्यावली में देखा जा सकता
है—

अञ्जउत्त होमोद्दञ्जतहुदवहा विवरिञ्जतकथमुत्ता पठिञ्जन्त वट्टवरणा
वाणिज्जन्त धम्मसास्त्रासिण्णिवेस अन्हारीसाणा सत्तार गण्ठिणिट्टवणा ।^२

राजशेखर प्रसंगानुसार अपनी तद्धितप्रियता का परिचय भी देते हैं यथा—

‘यद्वा यस्य तंज्जोद्भव भैरवीय तीम्बुरवमोमापतमादंनारीश्वरमैन्दुशेखर
मन्तवान्तकर बालकूटीयं जम्भारिभुजस्तम्भन दक्षमद्योग्मावि मान्यय
सैपुरमन्थकानुरीयमित्यपरमप्यपरिमैय चित्र चरित्रजातमाचक्षते । तस्य भगवन्-
श्चैष्टापरीक्षाया को नाम परमेष्ठिवैकुण्ठावपि । किं पुनमुद्गिरिति ।^३

राजशेखर की रचना शैली के विविध उदाहरण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाने
हैं कि उनकी रचना शैली में वैदर्भी, पाचाली, एवं गौडी रीति का उचित विधान
हुआ है । समराण की भयानकता एवं युद्ध की विभीषिका के प्रदर्शन के लिये
उन्होंने अोजगुण युक्त कठोरवर्णों एवं दीर्घसमासों से पूर्ण गौडी रीति का आश्रय
लिया है, किन्तु हृदय को स्पष्ट करने वाले भावों के लिये (यथा-रामवनगमन
के पश्चान् बँकेयी के शोक प्रदर्शन या रावण वध के उपरान्त वैश्वयलव्या
सका की शोभाभिव्यक्ति में) उन्होंने अतिसमास या मध्यममास रचना का धरण
किया है । बालरामायण की शैली प्रायः गौडी है । विद्वत्शालभजिका एवं

१. बालरामायण ९।३४-३५ ।

२. बालरामायण ९०।५९-६० ।

३. बालरामायण अ० २-३।४ ।

'कर्पूरमञ्जरी' की मर्म रचना द्वारा वैदर्भी एवं पांचाली के समान की पूर्ति हुई है। नायिका के गोस्वयं-वर्णन में माधुर्यगुण युक्त पदरचना के द्वारा वैदर्भ भाषा का प्रगल्भ किया गया है। उन्होंने पद्यकान्तुषों में छोटे छोटे ममागों में एका 'संचारी' शैली को धारण माना है। उक्त शैलियों के प्रयोग में उनके प्रनेक वर्णन जो सम्भवतः नीम्न घोर बोलित हो गये थे, ध्वन्यन्त र्निर्गम, मर्म घोर दृश्यवादी हो गये हैं। उनकी नाट्यशैलियों में इन तीनों शैलियों का विन्वाग पाया जाता है। घोर मर्म रम वाच का भी सम्प्रक है कि वे शैलियों के दाम नहीं हैं ध्वनितु प्रगल्भक शैली ही उनका दानीय घट्टण करती है।

निष्कर्ष यह प्रकार राजशेखर की रचना शैली एवं उनके द्वारा व्ययहृत मन्वृत, प्राट्टन एवं देगज भाषा के सम्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने भाषा-मन्वधी प्राचीन परिपाटी का विनयेन कर देगजाल के उपयोगी तत्वों को लेकर मत्वाचीन प्रभाषों के साथ उनका धूर्व समन्वय करने उपादेय साहित्य की मूर्ति की है। इस भाषा प्रयोग के द्वारा प्राचीनता की रक्षा भी हो गई है और भविष्य के मन्वरी के लिये भी पथ प्रगल्भ हुआ है।

राजशेखर की नाट्यकला

नाट्यकला की दृष्टि में राजशेखर के नाटकों का समीक्षण करने पर वे कुमान बनारस निद्व होत हैं। जहाँ तर वन्तु का प्रश्न है, राजशेखर का क्षेत्र सीमित है। वालरामायण एवं वालभारत की ब्यावन्तु रामायण एवं महाभारत के प्रथित धारणान से सबद्ध है तथा विद्वज्जालभजिका एवं कर्पूरमञ्जरी की सोद्वृत पर धारणानि। प्रथम दो के विन्वाग में राजशेखर ने परम्परा के पालन के साथ ही उचित मीनरता का भी सन्निवेश किया है जिसका कथानक के प्रयोग में विवेचन हो चुका है।

राजशेखर के पात्र धृती कुणतता से निर्मित हैं। वे सामान्यत एक ही धरा-त्प पर स्थित हैं। विद्वज्जालभजिका और कर्पूरमञ्जरी दोनों की महारैवी विधम-नेषा नाम धारण करती है।

राजशेखर के मन्वरी का भी विशेष महत्व है। चाहे वार्तानाप हो या कोई दृश्यवर्णन, यह बहुत दूर तक चलता है। वही वही पर सीमा का धृति-धमण भी कर जाता है। श्रद्धा है कि यह दोष केवल वालरामायण में ही दियाई देता है।

खण्ड ३

राजशेखर का आचार्यत्व

मन्वदार्थशासनविद कति नो कवने
यद्वाद्मत्र श्रुतिधनस्य चकारि चक्षु ।
शिल्प्यस्ति यद्वचमि वग्नु नव सदुक्ति-
मन्वाभया म घुरि तस्य गिरपरिद्रा ॥

राजशेखर का आचार्यत्व

साहित्य-शास्त्र के इतिहास में राजशेखर का स्थान, उनकी अनेक मौलिक उद्भावनाओं तथा काव्य-शास्त्र को समृद्ध करने के लिये विशेष गौरवशाली है। उनके आचार्यत्व की आधारशिला उनका एक मात्र ग्रन्थ काव्यमीमांसा है। उन्होंने इस ग्रन्थ में अपने लिये राजशेखर शब्द का प्रयोग केवल एक बार "ध्याकरोत्काव्यमीमांसा कविभ्यो राजशेखर"^१ शब्द का ही प्रयोग प्रायः इस उक्ति द्वारा किया है। इस ग्रन्थ में लेखक ने लिये यायावरीय के शब्द का ही प्रयोग प्रायः हुआ है। इसलिये इस प्रश्न में उन्हें यायावरीय नाम से संबोधित करना अधिक उपयुक्त होगा।

कवि, कविता और कवित्र्य शक्ति के सर्वप्रथम वैज्ञानिक निरूपण का श्रेय यायावरीय को ही प्राप्त है। उन्होंने अद्वैतस्य नामक अधिकरण में कवि-भेदों एवं कविचर्मा का जो चित्रण किया है, उन्हीं परवर्ती आचार्यों ने आदर्श रूप में स्वीकार किया है। यायावरीय ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रदर्शित पद्य का अनुगमन, यहाँ तक कि कभी कभी उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों का यथावत् उद्धरण करते हुए भी अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा काव्य के नवीन मानदण्ड निश्चित किये हैं जो आज भी आचार्यों के पद्य-उद्देशन में सहायक सिद्ध होते हैं। वे कवि शिखा सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। यायावरीय के परचातु शोमेन्द्र, अरिभिह, अमरचन्द्र तथा देवेश्वर आदि आचार्यों ने भी उनके पद्य का अनुसरण कर, कविशिक्षा-विषयक ग्रन्थों की रचना की।

अनकारशास्त्र के इतिहास में यायावरीय ही सर्वप्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'काव्य' के अर्थ में किया है। उनकी सम्मति में साहित्य पञ्चमी विद्या है क्योंकि वह वौदिक आदि प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित चारों विद्याओं—धान्यीभिर्जी, जमी, वार्ता तथा दण्डनीति का निरूपण कर है।

“पान्थीशिवी त्रयी वार्ता दण्डीनिश्चतस्रो विद्या ।” इति कौटिल्यः ।
पञ्चमी साहित्यविद्या इति यायावरीय । मां हि चनमृषामपि विद्याना निष्यन्द ।
साहित्य के क्षेत्र में काव्यपुराण की अवतारणा एवं भुवनकोश का सजीव
चित्रण यायावरीय की निजी एवं मौलिक देन है । वाच्यशास्त्र के समस्त विषयों
को अपने ग्रन्थ में स्थान देकर समन्वय-प्रणाली से ग्रन्थ का प्रणयन यायावरीय
की नूतनता का जागृत्यमान प्रमाण है । ये मौलिक उद्भावनाएँ तथा
परवर्ती प्राचार्यों द्वारा उनका मुक्त रूप में ग्रहण अमदिग्ध रूप से यायावरीय के
प्राचार्यत्व को प्रतिष्ठित करता है ।

प्राचार्यत्व : प्राचार्य शब्द षोडशसंस्कृतपूर्वक चर्घातु में प्यत् प्रत्यय होकर
बनता है । इस शब्द का व्युत्पत्तिसम्बन्ध अर्थ—वेदाध्यापक अथवा वैदिक मन्त्रों
का व्याख्याता है ।^१ महर्षि मनु की मम्मति में जो द्विज शिष्यों को मरहस्य
वेद का अध्ययन करवाता है उसे प्राचार्य कहते हैं ।^२ रिन्दु साहित्य शास्त्र
में किसी निश्चित सम्प्रदाय अथवा सिद्धांत के प्रतिष्ठापक एवं पोषक विद्वान् ही
प्राचार्य अभिधान में सम्मानित हो सकते हैं । वाच्यशास्त्र के प्राचार्यों की
कमोटी है (१) मौलिकता, (२) सूक्ष्मदृष्टि एवं (३) स्पष्ट प्रतिपादन ।
काव्यमीमांसा में राजमोक्षर ने तीनों क्षमताओं का स्पष्ट परिचय दिया है ।
अतः उन्हें प्राचार्य कहा जाना उचित है ।

ग्रन्थ का अभिधान - उचित अभिधान का चयन, ग्रन्थकार की कुशलता का
परिचायक है क्योंकि समीचीन अभिधान पुस्तक के बन्धव्य को स्पष्ट रूप से
प्रगट करता है । काव्यमीमांसा जीय दो वातों की व्यञ्जना करता है—वाच्य
एवं मीमांसा । वक्त्र के द्वारा जो कार्य सम्पन्न हो, उसे वाच्य कहते हैं—कवेरिद
कार्यभावो वा । मीमांसा शब्द का व्युत्पत्तिसम्बन्ध अर्थ है ‘विचारपूर्वक तत्व का
निर्णय करना ।’^३ जैमिनि प्रणीत पूर्वमीमांसा में कर्मवाडों के तत्वों का विचार-
पूर्वक निर्णय मिलता है । इसी प्रकार उत्तर-मीमांसा में वेदात के तत्वों का निर्णय

१ शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०। षोड-चर्घ-प्यत्-वेदाध्यापक ।

२ वैदिकमन्त्रव्याख्याकर्ता । तत्पर्यायः मन्त्रव्याख्याकृत् ।

३ शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०—“उपनीय तु य शिष्य वेदमध्यापयेत्
द्विजः । सकल्प सरहस्य च, तमाचार्य प्रचक्षते” इति मानव ।

३. कविकल्पद्रुम—तृतीय भाग—“मीमांसा स्त्रीमान्—‘विचारे स्वार्थे मन्’
विचारपूर्वकतत्त्वनिर्णये तत्प्रतिपादकः ग्रन्थः । कर्मग्रह्याविषयमेतेन द्विवि-
धस्तः । कर्मवाडविषयमशय-निर्वाहको ग्रन्थो जैमिनिप्रणीतः स च पूर्व-
मीमांसत्वेन प्रतिष्ठः ।”

प्राप्त होता है। काव्यमीमांसा ग्रन्थ में काव्यतत्वों का सूत्रम विवेचन, ग्रन्थ आचार्यों के मतों का प्रस्तुतीकरण तथा अन्त में स्वमत का निर्णयपूर्वक स्थापन होने के कारण इस ग्रन्थ का काव्यमीमांसा अभिधान अक्षरशः यथार्थ है। दूसरी बात, यायावरीय ने जिस युग में पदार्पण किया था, वह मौनान्तको वा युग था। उनके चिन्तन पर युग की प्रतिच्छाया का होना स्वाभाविक है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति काव्यमीमांसा नाम में ही देखी जा स

काव्यमीमांसा का आधार - काव्यमीमांसा अठारह अधिकरणों का ग्रन्थ बनलाया जाता है, किन्तु अब तक इसका कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है और वही महान्यजगत में काव्यमीमांसा नाम से व्यवहृत है। इस ग्रन्थ की रचना करते समय यायावरीय ने कुछ ग्रन्थों को आदर्श रूप में अपने सम्मुख रखा है।

इसके प्रथम अध्याय शास्त्र-संग्रह की रचना कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं यात्स्थायनीय कामसूत्र पर आधारित है। तीनों में एक एतद्विषयक स्वलो के तुलनात्मक अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

काव्यमीमांसा	कामसूत्रम्	अर्थशास्त्रम्
(१) तत्र कविरहस्य सहस्रा- सप्तसमाप्तासीत्, श्रौतिकमु- क्तिगर्भः, रीतिनिर्णयं सुवर्ण- ताम. श्रौपनिपदिकं कुचुमारः इति १५	तत्प्रसंगाच्चाचार्यणः साधारणमधिकरणप्रो- वाच सुवर्णनामः साग्रप्रयोगिक कुचुमार श्रौपनिपदिकम् १५	..
(२) इत्यकारच प्रकीर्ण- त्वात् मा किञ्चिदुच्चिच्छि- दइतीय प्रयोजका (तां) शर्वती सक्षिप्य सर्वमर्थमल्प- ग्रन्थेनाष्टादशाधिकरणी प्रणीता १३	(२) एव बहुभिरावा- र्यस्त च्छासुं छण्डश. प्र- णीतमुस्तन्न कल्पमभूत् । सक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन- ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम् १४	(२) यावन्तमर्थं शास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्राय- शस्तानि सहस्रैक मिदमर्थं शास्त्रं कृतम् १५

१. काव्यमीमांसा—भायकवाड ओरियण्टल सीरीज—अध्याय १ पृ० १ । -

२. कामसूत्रम्—१११-१८११९ ।

३. काव्यमीमांसा—भायकवाड ओरियण्टल सीरीज अ० १ पृ० १

४. कामसूत्रम् १११-१८११९ ।

५. अर्थशास्त्रम् १११ ।

काव्यमीमांसा के दूसरे अध्याय में यायावतीय ने विशाखानो के संदर्भ में, विद्याप्रो की परिगणना करते हुए बाहंस्पत्य, भौशनस, मानव एव कौटिल्य के मत दिये हैं । यहाँ कौटिलीय अर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण के समूचे अंश ही राजशेखर ने ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिये हैं । वास्तव में वे कौटिल्य के अत्यन्त ऋणी हैं । कौटिलीय अर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण एवं काव्य-मीमांसा ग्रन्थ के कविहरस्य अधिकरण के शास्त्रनिर्देश अधिकरण से उद्धृत निम्नलिखित अंश इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं—

काव्यमीमांसा

भ्रान्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिप्रचेति-
विद्या । त्रयी वार्तादण्डनीतिप्रस्तौ
विद्या इति मानव । त्रयीहि वार्तादण्ड-
नीन्योरूपदेष्ट्री ।^१

'वार्ता दण्डनीतिर्द्वे विद्ये इति बाहं-
स्पत्या ।

'दण्डनीतिरेवैका विद्या इत्यौशनसा
दण्डमयादि कृत्स्नोलोक स्वेपु स्वेपु
कर्मस्ववनिष्ठते ।

'भ्रान्वीक्षिकी त्रयी वार्तादण्डनीतिप्रच-
तलोविद्या' इति कौटिल्य । आभिधेयार्थो
यद्विद्यास्तद्विद्याना विद्यात्वम् ।^२

ऋषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता ।
भ्रान्वीक्षिकी त्रयीवार्ताना योगक्षेमसा
धनो दण्डस्तस्यनीतिदण्डनीति ।^३
तस्यामायत्ता लोकयात्रा ।^४

अर्थशास्त्रम्

भ्रान्वीक्षिकीत्रयी वार्ता दण्डनीतिप्रचे-
विद्या । त्रयी वार्ता दण्डनीति श्वेचि
मानवा । त्रयीविशेषोद्भ्रान्वीक्षि-
कीति । वार्ता दण्डनीतिप्रचेति बाहं-
स्पत्या सवरणमात्र हि त्रयी लोका-
यात्राविद इति ।^५

दण्डनीतिरेका विदेल्यौशनसा ।
तस्या हि सर्वे विद्यारम्भा प्रति
बद्धा इति । चतस्राएव विद्याइति
कौटिल्य । आभिधेयार्था यद्विद्या त
द्विद्याना विद्यात्वम् ।^६

ऋषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता
भ्रान्वीक्षिकीत्रयीवार्ताना योगक्षेम-
साधनो दण्ड । तस्यनीति, दण्डनीति ।^७
तस्यामायत्ता लोकयात्रा^८ सामर्थ्य-
जुर्वेदास्त्रयी । अथर्ववेदेतिहासवेदी

१ काव्यमीमांसा—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।

२ अर्थशास्त्रम् १।२।१

३ काव्यमीमांसा—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।

४ अर्थशास्त्रम् १।२।१

५ काव्यमीमांसा—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।

६ अर्थशास्त्रम् १।२।१

७ काव्यमीमांसा गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० २ ।

८ अर्थशास्त्रम् १।३।१ ।

रहस्य अतिक्रमण के सत्रहवें अध्याय में भूगोल का मशिल किन्तु स्पष्ट चित्रण है । इसका भी प्रायः वायुपुराण में नाम्य है ।

काव्यमीमांसा के 'कविकर्षा राजकर्षाच' नामक दसवें अध्याय के श्रुतशीलन में स्पष्ट है कि यायावरीय अपने शब्दों में वस्तुस्थिति के नागरप्रवृत्त^१ प्रकार को बोहरा रहे हैं ।^२

काव्यमीमांसा के एकादश द्वादश एवं त्रयोदश अध्यायों में चर्चित हूपनिपयक मतों का यत्किञ्चित्पञ्जीव्य आगदवर्षण का ध्वन्यालोक^३ है । चलकारी के विभाजन के लिये यायावरीय ने आचार्य रुद्रट के काव्यालंकार मूल का महाराज लिखा है । दोनों के एतद्विषयक स्थलों के तुलनात्मक अबलोकन में यह बात स्पष्ट हो जाती है—

रुद्रट काव्यालंकार	यायावरीय काव्यमीमांसा
यमक	यमक
अर्थालंकार-वास्तव-श्रीगम्य प्रतिशय	शब्दश्लेष
श्रीगम्य	श्रीगम्य
प्रतिशय	प्रतिशय
शब्दश्लेष	शब्दश्लेष
त्रिविधमकर	उभयालंकार
चित्र	चित्र

उन्होंने काव्य की आत्मा के लिये आचार्य भरत, रीतिनिरूपण के लिये आचार्य कामन, शक्तिप्रतिपादनार्थ आचार्य रुद्रट एवं यादवय विभाजन के विमित आचार्य उद्मट तथा भामह का सहारा लिया है । काव्यमीमांसा से दिग्दर्शन होता है कि राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के चिन्तन का स्थान-स्थान पर उपयोग किया है । परन्तु पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का रूप उनके मूढम चिन्तन द्वारा निम्नर उठा है ।

निम्न प्रकार राजशेखर को अपने पूर्ववर्ती छोटे बड़े समस्त शास्त्रकारों के साहित्य-विषयक विविध मनी का मूढम ज्ञान था, उसी प्रकार से पूर्ववर्ती कवियों के एवं नाटककारों को प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण कृतियों से सुपरिचित थे । उन्होंने केवल उनका विविध भासत्रयी सन्दर्भों से अटपटत किया अतिसु अपने मास्त्रीय विवेचन

१. काममूत्र १-४-१

२. काव्यमीमांसा अ० १० पृ० ४-९

३. ध्वन्यालोक . ४-१०

में यथाप्रसंग उनका भरपूर उपयोग किया है । निम्नलिखित सूची इन तथ्य को स्पष्ट करती है.—

ग्रन्थ या ग्रन्थकार	काव्यमीमांसा (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज की पृष्ठ संख्या)	ग्रन्थ जिनके उद्धरण उपलब्ध हैं उद्धरण सन्दर्भ
१. ऋग्वेद ..	६	३-८-१०-३
२. अभिज्ञानशाकुन्तलम् ..	१२	७-१२
३. रघुवशम् ..	१३	६-५७-६-८२
४. कुमारसंभवम् .	१२	३-६७
५. वेणीसहारम् (भट्टनारायण)	१९	१-२३
६. अभिज्ञान शाकुन्तलम् ..	२४	२-४५
७. ऐतरेय-ब्राह्मण ..	२५	७-१५-२, १५-१९
८. ऋग्वेद ..	२८	२-१ ११-७
९. निरुक्त .	२८	३-४-३
१०. वेणीसहारम् ..	३२	१-१२-१-१५
११. किरातार्जुनीयम् ..	३२	९-३९
१२. शतपथ ब्राह्मण ..	३५	५-१-२
१३. महानारायणोपनिषद् ..	३५	१-२-२
१४. सूर्यशतकम् ..	३५	८९
१५. विप्रमोर्वशीयम् ..	३५	४-१७
१६. रामायणम् (किष्किन्धाकाण्ड)	३६	३४-१८
१७. जानकीहरणम् (कुमारदास)	३६	१२-३६
१५. विप्रमोर्वशीयम् ..	३५	४-१७
१६. रामायणम् (किष्किन्धाकाण्ड)	३६	३४-१८
१७. जानकीहरणम् (कुमारदास)	३६	१२-३६
१८. वायुपुराणम् ..	३६	षष्ठ्याय ६७
१९. सिंगुपालयम् ..	३६	१-४६
२०. भगवद्गीता ..	३७	२-१७
२१. महिम्न स्तोत्रम् ..	३७	५
२२. कामसूत्रम् ..	२९	२-१-३, ९-१३
२३. कुमारसंभवम् ..	४०	३-७०

राजशेखरं

२४. रघुवशम्	..	४१	६-६०
२५. शिशुपालवधम्	..	४१	३-८
२६. शिशुपालवधम्	..	४२	१-१
२७. कुमारसंभवम्	..	४४	६-३६
२८. भ्रमरशतक (भ्रमरक)	..	४७	२९, ४९, १९
२९. मालतीमाधवम्	.	४८	१
३०. कुमारसंभवम्	..	४८	४-४१, ३-७२, ६-१९
३१. किरातार्जुनीयम्	.	५८	३-१०
३२. शिशुपालवधम्	..	५४	२-७३
३३. वृन्दावन यमककाव्यम् (मानक)		५७	१-१
३४. नारदस्मृति.	..	५९	२-३०
३५. शिशुपालवधम्	.	६०	११-६४
३६. गौडवहो	.	६२	८८-९२
३७. काममूलम्	.	६७	१०१
३८. विञ्जका (कवयित्री)		६७	
३९. किरातार्जुनीयम्	..	७०	९-२३
४०. जानकीहरणम्	.	७२	८-८५
४१. किरातार्जुनीयम्	.	७३	९-३२
४२. मालतीमाधवम्	..	७६	३
४३. कादम्बरी	..	७६	२
४४. रघुवशम्	..	७६	६-६४
४५. कुमारसंभवम्	..	८१	१
४६. शिशुपालवधम्	..	८४	२-४
४७. कुमारसंभवम्	.	८४	१-४४
४८. किरातार्जुनीयम्	..	८५	९-२२
४९. रघुवशम्	..	८५	२-२५-९-९३
५०. भेषदूतम्	.	८६	१-४७
५१. शिशुपालवधम्	..	८६	२-४३
५२. कादम्बरी	..	८८	२-
५३. सूर्यशतकम्	.	९५	१३
५४. भेषदूतम्	..	९६	२-१२
५५. कुमारसंभवम्	..	९६	१-१

५६. हनुमन्नाटकम्-	..	९७	३-५०
५७. तैत्तिरीय संहिता	..	९९	१-४-१४-१
५८. सूर्यशातवम्	..	९९	५५

उसके प्रतिरिक्त मैकडो श्लोक जिन्हें उन्हींने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है, (यायावरीय) की स्वप्रतिभा के द्योतक है ।

काव्यमीमांसा ग्रन्थ की रचना की पद्धति का इतना परिचय देने के पश्चात् अब ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय का समीक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

काव्यमीमांसा के वर्ण्य-विषय

कविरहस्य अधिकरण के प्रथम अध्याय में लेखक द्वारा काव्यमीमांसा की पूर्व-नियोजित रूपरेखा दी गई है । लेखक की योजना के अनुसार काव्यमीमांसा अठारह अधिकरणों में विभक्त की गई है तथा ये अधिकरण अध्यायों में । अधिकरणों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं —

कविरहस्य, श्रौक्तिरु, रीतिनिर्णय, भानुप्राप्तिक, यमक, शब्दरत्नो-
 धास्तव, श्लेषम्य, अतिशय, अर्थश्लेष, उभयालङ्कारिक, वैनादिक, ह्यकनिरप,
 षीय, रसाधिकारिक, दोषाधिकरण, गुणोपादानिक एवं श्लेषनिर्पादिक ।
 आजकल इन अठारह अधिकरणों में केवल कविरहस्य अधिकरण ही उपलब्ध
 है । द्वैतयोग में प्रथम अधिकरण के अठारह अध्यायों का नाम निर्देश भी प्रथम
 अधिकरण के प्रथम अध्याय में मिलता है । ये नाम हैं—शास्त्रमंत्रह, शास्त्र
 निर्देश, वाक्यपुरोत्पत्ति, पदवाक्यविवेक, पाठप्रतिष्ठा, अर्थानुशासन,
 वाक्यविचयः, कविविधेय, कविचर्या, राजचर्या, वाचुप्रकार, शब्दार्थहरणोपाय,
 कविमाध्य, देशकालविभाग एव अनुसन्धेय* । मुखिया के लिये हम इन समस्त
 अध्यायों के लिये वर्ण्य-विषय को निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं —

१. काव्य निदान ।
२. कविनिर्माण-सम्प्रदाय ।
३. काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय और राजयोग्य ।
४. साहित्यशास्त्र की काव्यमीमांसा कीर्ति ।

१. काव्यमीमांसा अध्याय १—५० ।
 २. काव्यमीमांसा—अध्याय १ ५० १-२ ।

काव्य-गिज्ञान्त

इस प्रथम गूढ के ध्वनित, काव्यलक्षण, काव्योत्पत्ति, काव्य प्रयोजन, काव्य की भाषा, काव्यभेद, काव्यार्थ के गौण, काव्यार्थ की परिधि एवं काव्य में काव्य-निबन्धन की अभिव्यक्ति का गवारेण है ।

काव्य का लक्षण : साहित्यशास्त्र सभी काव्य भाषाओं ने ध्वनी-आत्मी दृष्टि में काव्य के स्वरूप का निरूपण किया है राजशेखर ने ध्वनि पूर्ववर्ती भाषाओं के लक्षणों का ऐतिहासिक गौण में ध्वनीयुक्त करने के परवान् काव्य का निर्धारण सक्षम प्रस्तुत किया है -

गुणवदन्तृत्वात् यत्कामेयं काव्यम् ।^१

अनकारों और गुणों में मुक्त वाक्य को काव्य कहते हैं । उनकी दृष्टि में वाक्य ही काव्य है, परन्तु यह वाक्य साधारण न होकर गुण और ध्वनित में मुक्त होना चाहिये । गुण तथा ध्वनित—दोनों में राजशेखर का आग्रह गुण पर ही अधिक है । उन्होंने काव्य को गुणमय कहा है तथा अनकारों का स्थान गुणों की प्रशंसा गौण माना है । उन्होंने ध्वनितों को केवल ध्वनित रूप में स्वीकार किया है । उनके लक्ष्य में काव्य-गुण की अस्मिता, उनके गुणमय तथा ध्वनित में विभूति होने में है ।

नम प्रगल्भो मधुर उदार धोजसी पाणि । ... धनुशामोपमादपरच स्वामनतुर्नि ।^२

आचार्य राजशेखर का गुणों एवं ध्वनितों के प्रति आग्रह उनके गिज्ञान्तों के अनुकूल है । एक विद्वान् ध्वनितों के साथ-साथ वे महान् कवि भी थे । काव्य में भावपदा तथा कल्पना दोनों के प्रति वे समान रूप में जागरूक थे । काव्य में गुणों की गत्ता होने का अर्थ है—उत्कृष्ट रमणित्वात् । यही रम भावपदा की आत्मा है । कल्पना के अन्तर्गत उन्होंने ध्वनितरसोपलब्धि का महत्व माना है । इन काव्य के दोनों पक्षों को पुष्ट करने के लिए काव्य में गुण तथा ध्वनित दोनों की अनिवार्यता का आग्रह उचित ही है ।

पूर्ववर्ती भाषाओं द्वारा प्रतिपादित काव्य-लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन में आचार्य राजशेखर के काव्य-लक्षण की ऐतिहासिक समीक्षा सरलता से की जा सकती है । आचार्य भामह ने 'शब्दायी संहिता काव्यम्,^३ कहकर काव्य का लक्षण

१ काव्यमीमांसा अध्याय ६ पृ० २४ । २ काव्यमीमांसा अध्याय ३ पृ० ६ ।
३ काव्यावकार—भामह १।१६ ।

स्विर किया है। उनके मन में शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं किन्तु ये शब्द और अर्थ दोपहीन होना चाहिये। आचार्य रुद्रट ने सामान्य रूप से 'ननु शब्दार्थो काव्यम्',^१ कहकर भामह की पदावली को ही दोहरा दिया है। भेद इतना ही है कि चारतापूर्ण शब्द और अर्थ के उपादान पर ही उन्होंने बल दिया है। ये दोनों आचार्य काव्य में शब्द और अर्थ को समान महत्व देने के पक्षपाती हैं। कुछ आचार्य ऐसे हैं जो काव्य में केवल शब्द को ही अधिक महत्त्व देते हैं। इनमें आचार्य दण्डी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दण्डी के अनुसार काव्य का लक्षण है—

‘शरीर तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली ।’^२

अर्थात् काव्य का शरीर ऐसी पदावली से बनता है जो कवि के अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हो। अर्थ से व्यवच्छिन्न पदावली काव्य है। उपर्युक्त आचार्यों में भामह तथा रुद्रट ने काव्य की शब्दार्थगत अर्थात् शब्दार्थोपनिष्ठ माना, जबकि आचार्य दण्डी ने शब्दमात्र को ही काव्य स्वीकार किया है।

काव्यमीमांसा का काव्यलक्षण पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों के नितान्त भिन्न प्रतीत होता है। उन लक्षणों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह भेद स्पष्ट हो जायेगा—

भामह—शब्दार्थो सहितौ काव्यम्^३

रुद्रट—ननु शब्दार्थो काव्यम् ।^४

दण्डी—शरीर तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली ।^५

राजशेखर—गुणवदलवृत्तञ्च वाक्यमेव काव्यम् ।^६

काव्यमीमांसकार ने काव्य लक्षण में आचार्य भामह, रुद्रट के समान शब्द और अर्थ की अथवा दण्डी के समान पदावली का उल्लेख नहीं किया है। वे वाक्य को काव्य मानने के पक्ष में हैं। उन्होंने लक्षण में दो प्रमुख काव्यलक्षण-गुण और अलंकार का उल्लेख किया है। वाचन का काव्यलक्षण हमी प्रकार का है—

‘वाक्यशब्दोऽयं गुणालंकारमदृश्यो शब्दार्थोऽर्थावर्तने ।’^७

काव्य शब्द, गुण और अलंकार में अमृत शब्द और अर्थ के लिये प्रयुक्त होता है। अतः स्पष्ट देखा जा सकता है कि काव्यमीमांसा का काव्यलक्षण मुद्रग्न वाचन से प्रभावित है।

१. काव्यालंकार—रुद्रट—३१।

२. काव्यादर्श—दण्डी—१-११०।

३. काव्यालंकार—भामह—११६।

४. काव्यालंकार—रुद्रट—३१।

५. काव्यादर्श—दण्डी—१११०।

६. काव्यमीमांसा अध० ६ सू० २६।

७. काव्यालंकारसूत्र—वाचन—१११।

काव्य लक्षण का मूर्त्यांकन वस्तुतः सक्षम अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति दोनों दोषों में मुक्त एवं सतुलित होना चाहिये । इसमें वैकल्पिक गुणों का समावेश होना उचित नहीं । काव्यमीमासाकार का काव्य लक्षण अतिव्याप्ति में दूषित है । रस को काव्य की आत्मा मानने के कारण प्रायः आचार्यगण रस की अभिव्यक्ति के लिये गुणों की उपस्थिति आवश्यक मानते हैं । वे काव्य में चारुत्व के लिये अलंकारों को भी अनिवार्य मानते हैं । फिर भी यदि निरन्तर भाव से देखा जाय तो मानना होगा कि गुण काव्य के अन्तरङ्ग तथा अलंकारों के बहिर्ङ्ग [गौतम] की बद्धि में सहायक हैं । वे काव्य की शोभा के लिये आवश्यक तो हैं किन्तु उन्हें काव्य रूप के आधायक धर्म मानना उचित नहीं है । ये दोनों तत्त्व वाञ्छनीय होने पर भी अनिवार्य नहीं कहे जा सकते । शीघ्रविहीन मनुष्य मानवता में से विरहित तो नहीं कह जा सकता और न अमृषणों से रहित सुन्दरी भारीत्व में ही विहीन मानी जा सकती है । अतः काव्यमीमासाकार ने अपने काव्य लक्षण में गुण और अलंकार दोनों का समावेश करके लक्षण को अतिव्याप्ति से दूषित कर दिया है फिर भी यह काव्य परिभाषा, उपयोगीय है, ऐसी बात नहीं है । राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा माना है ।

‘रसवत् एव निवर्णं युक्तो न नीगस्तस्य ।’

अतः गुणों और अलंकारों की मत्ता व रसातिशय के महायक रूप में ही स्वीकृत करने होंगे । भले ही उनकी काव्य परिभाषा में यह आशयपूर्ण रूप से स्पष्ट न हो पाया हो ।

परवर्ती साहित्यकारों ने राजशेखर के इस मन्तव्य को भलीभाँति समझा है । और उन्होने तन्वो पर उन्होने अपने काव्यलक्षणों का निर्माण किया । मम्मट के विद्वान्त काव्यलक्षण का एक अंग ‘सगुणानुभववृत्ति’^१ तथा भोज की परिभाषा ‘निर्दोष गुणवत् काव्यम् अलंकारैल्लभ्यते’^२ इसका प्रमाण है । हेमचन्द्र के काव्यलक्षण का ‘सगुणो सात्वतारो’^३ वाग्भट का ‘सगुणो प्रायः सात्वतारो’^४ तथा विशानाथ का ‘गुणालंकार-महिनो’^५ से प्रगत होता है कि ये सभी आचार्य राजशेखर के काव्यलक्षण में प्रभावित थे ।

१ काव्यमीमासा अ० १ पृ० ४५ ।

२ काव्यलक्षण — मम्मट — १-४-१ ।

३ सरस्वतीकण्ठाभरण — भोज

४ काव्यानुशासनविवेक — हेमचन्द्र — पृ० १६ ।

५ काव्यानुशासनविवेक — वाग्भट — पृ० १५ ।

६ अनापस्तम्बसंस्कृत-विद्यानाथ — पृ० ४२ ।

काव्यहेतु : काव्यनिर्माण का सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले साधन काव्य-हेतु अथवा काव्यकारण कहे जाते हैं। प्रायः सभी आचार्यों ने काव्य-हेतु पर विचार व्यक्त किया है। केवल रामन ने काव्यहेतु के स्थान पर वाग्धातु शब्द का व्यवहार किया है। काव्यहेतुओं पर सर्वाधिक विस्तारपूर्वक विचार काव्यमीमांसा में ही मिलता है। राजशेखर के मत से केवल शक्ति ही काव्य का हेतु है।

तावुमाद्यपि शक्तिमुद्भासयत् । सा केवलं वाच्ये हेतुः इति यादावरीयः ।
विप्रसरति च सा प्रतिभा-व्युत्पत्तिभ्याम् । शक्तिर्नृके हि प्रतिभा व्युत्पत्तिरमंगी
शरत्स्य प्रतिभानि शनत्तश्च व्युत्पद्यते ।^१

अर्थात् शक्ति का विस्तार प्रतिभा और व्युत्पत्ति के द्वारा होता है तथा प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विकास में शक्ति वारणीमूल होती है। आचार्य रूद्र भी शक्ति को काव्य का प्रधान हेतु मानते हैं। किन्तु उन्होंने प्रतिभा को ही शक्ति के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने कहा है कि एतद्विस्तारं पर अर्थो वा अनेक रूपो मे विस्फुरणं होता है तथा कमनीय पद स्वयं कवि के सामने प्रतिभासित होते हैं। इसका एकमात्र कारण है शक्ति—

मनसि सदा मुनमाद्यपि विस्फुरणमनेरधाभिषेयस्य ।

अस्मिन्प्रकृतानि पदानि च विभान्ति मन्व्यामगौ शक्तिः ।^२

- इस विषय में काव्यमीमांसा का मत रूद्र में समानता रखता है। क्योंकि राजशेखर स्वयं कहते हैं—“शक्तिशब्दत्रयायमुाचरित प्रतिभाते योने”^३

शक्ति को प्रतिभा में उन्मूलित कर दिया जाता है। इस अर्थ में उन्होंने श्यामदेव तथा मदन के मतों का उल्लेख किया है। श्यामदेव ने काव्य कर्म में सबसे अधिक महत्त्वक वस्तु समाधि मानी है, जिसे वे जितनी एतदन्त कहते हैं—

‘वाच्यार्थनिर्मुक्तये समाधिः पराव्यापिने’ इति श्यामदेव । मदन एतदन्त समाधि ।^४

मनाहित होने वाला जित ही अर्थों का उन्मूलन करना है। आचार्य मदन मन्वाग को काव्य-कर्म-मूलक अर्थात् उपयोगी स्वीकार करते हैं—

१. काव्यमीमांसा पृ० ४५०-११ ।

२. वाग्धातुशब्द—रूद्र—१-१५ ।

३. काव्यमीमांसा पृ० ४५०-११ ।

४. काव्यमीमांसा पृ० ४५०-११ ।

उनकी दृष्टि से शब्द और अर्थ का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त करके, शब्दार्थ के ज्ञाताओं का मत्स्य एव परिचर्या करके और अन्य लेखकों के निबन्धों को पढ़कर काव्य-क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये। भामह के पश्चात् आचार्य दण्डी ने काव्योत्पत्ति के साधन रूप में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को आवश्यक बनवाया है। इनके मत में प्रतिभा पूर्व जन्म के सस्कारों पर आश्रित रहती है। प्रतिभा से वचन कवि भी यदि यत्नपूर्वक शास्त्र की उपगमना करे तो उस पर सरस्वती अवश्य अनुकम्पा प्रकट करेगी।^१ वे प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को काव्य-सम्पदा मानने के पक्षपाती हैं।^२ आचार्य दण्डी के पश्चात् वामन ने काव्यहेतु का विवेचन किया है। उन्होंने काव्यहेतु के लिये काव्यांग^३ शब्द का प्रयोग किया है। काव्यांगों के अन्तर्गत लोक, विद्या और प्रकीर्ण—उन तीनों का समावेश है। लोक का तात्पर्य लोकवृत्त^४ से है। विद्या से समस्त शास्त्र-ज्ञान^५ का बोध होता है तथा प्रकीर्ण के अन्तर्गत अन्य कवियों की कृतियों का परिचय, काव्य रचना का उद्यम, काव्य कला के मर्मज्ञों की उपासना, रचना में अधिक से अधिक उचित शब्दों के विधान का अभ्यास तथा कविःव वीज प्रतिभा एव चित्त की एकाग्रता की गणना की गई है।^६

इस प्रकार आचार्य वामन प्रतिभा को कवित्व का बीज मानने पर भी व्युत्पत्ति और अभ्यास का समान महत्त्व देते हैं। वामन के परवर्ती आचार्य दण्ड ने 'काव्यहेतु' के अन्तर्गत—प्रतिभा-व्युत्पत्ति तथा अभ्यास का महत्त्व स्वीकार किया है,^७ तथापि 'शक्ति' को उन्होंने काव्य का प्रधान कारण माना है। उनके विचार में शक्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

‘मनासि सदा शुभपाधिनि विस्फुरणमेतकथाभिधेयस्य ।
अक्लिप्टानि परानि च विभान्नि यस्यामगौ शक्तिः ।’

चित्तके एकाग्र होने पर अर्थ अनेक प्रकार से विस्फुरित होने लगते हैं तथा कमनीय पद स्वयं प्रतिभासित होते जाते हैं। इस कार्य को सहायित करने वाली वस्तु 'शक्ति' कहलाती है।

-
१. काव्यादर्श—दण्डी १-१०४ । २. काव्यादर्श—दण्डी—१-१०३ ।
 ३. काव्यालंकारसूत्र—वामन-१-३-१ । ४. काव्यालंकारसूत्र—वामन-१-३-३ ।
 ५. काव्यालंकारसूत्र—वामन-१-३-१-१ । ६. काव्यालंकारसूत्र—वामन-१-३-११ ।
 ७. काव्यालंकार—दण्ड—१-४ । ८. काव्यालंकार—दण्ड—१-१५ ।

व्युत्पत्ति : राजशेखर ने प्राचीन आचार्यों के मत का उल्लेख करते हुए व्युत्पत्ति का अर्थ 'वहुवृत्ता' दिया है ।^१ परन्तु उनका भ्रमना मत इसमें भिन्न है । उनके अनुसार—

“उचितानुनितविवेकव्युत्पत्ति इति यापावरीय ।”^२

उचित और अनुचित के विवेक को व्युत्पत्ति कहते हैं । इस प्रसंग में उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्य भगवत के मत का उल्लेख किया है जो प्रतिभा और व्युत्पत्ति के तारतम्य में व्युत्पत्ति को ही श्रेष्ठ मानते हैं । उनके विचार से व्युत्पत्ति कवि के अज्ञान-जन्य समस्त दोषों को दूर कर देती है ।^३

किन्तु समन्वयवादी आचार्य राजशेखर प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों को समान रूप में उपादेय मानते हैं ।

ऊपर राजशेखर तथा पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा वर्णित 'काव्यहेतु' का जो परिचय दिया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर ने 'शक्ति' को 'काव्यहेतु' स्वीकार करते हुए भी प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को सम्मत्ता दी है । प्रतिभा को वे अन्य दो (व्युत्पत्ति और अभ्यास) में श्रेष्ठत्व प्रदान करते हैं । वे कहते हैं कि मेधाविद्वद् और कुमारदाम आदि कवि जन्म से ही ग्रन्थ थे, किन्तु उनके काव्य में पदायों का जो सजीव चित्रण मिलता है, उसका एवमेव कारण प्रतिभा है—

प्रतिभावत पुनरपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव यतो मेधाविरुद-कुमारदामादयो
जान्त्रव्या कवयश्च्यवन्ते ।^४

किन्तु प्रागे चलकर उन्होंने प्रतिभा और व्युत्पत्ति के समन्वय पर अधिक ध्यान दिया है ।

प्रतिभाव्युत्पत्ति मिथ सम्भवेते श्रेयस्यौ इति यापावरीय ।

जैसे भावस्थ के बिना गुन्दर रूप पीका है और स्पन्दम्यत्ति के बिना भावस्थ भारपणहीन है उसी प्रकार प्रतिभा और व्युत्पत्ति एक-दूसरे से हीन होने पर निरर्थक होती हैं । निरन्तर प्रयत्न करते रहने को उन्होंने अभ्यास कहा है । धन्य में वे काव्य की मकानता के लिये प्रतिभा-व्युत्पत्ति और अभ्यास की मन्वान महत्ता स्वीकार करते हैं । इनके मत में यह दुर्लभ समन्वय है—

१ काव्यमीमांसा प्र० ५ पृ० १६ ।

२. काव्यमीमांसा प्र० ५ पृ० १६ ।

३ काव्यमीमांसा प्र० ५ पृ० १६ व्युत्पत्ति श्रेयसी इति मङ्गल ।

४. काव्यमीमांसा प्र० ४ पृ० १२ ।

५ काव्यमीमांसा प्र० ५ पृ० १६ ।

बुद्धिमत्त्व च काव्याङ्ग-विद्यास्वभ्यासकर्म च ।

कवेश्चोपनिषच्छक्तिस्त्रयमेकत्र दुर्लभम् १९

काव्य प्रयोजन — राजशेखर के अनुसार आनन्द, कीर्ति, धन प्राप्ति, शिष्य-हित, हितोपदेश, राजोपकार एवं लोकहित काव्य के प्रयोजन हैं । मुक्तिप्राप्त्यर्थ इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन में से कतिपय प्रयोजन कवि के स्वयं के लिये हैं । उन्हें कविनिष्ठ कहते हैं । कुछ प्रयोजन पाठक या श्रोता में सन्निहित होते हैं । अतः उन्हें पाठकनिष्ठ कहना उचित होगा । कविनिष्ठ प्रयोजन के अन्तर्गत (१) आनन्द, (२) कीर्ति एवं (३) धन प्राप्ति तथा पाठकनिष्ठ प्रयोजन में (१) शिष्यहित, (२) हितोपदेश, (३) राजोपकार एवं (४) लोकहित की गणना की जा सकती है ।

कविनिष्ठ प्रयोजन — राजशेखर का कथन है कि काव्यरूप को क्या को जानने वाला कवि इहलोक और परलोक दोनों में आनन्दित रहता है ।^१ उसी प्रकार जो राजा, महापति बनकर काव्यों की परीक्षा करता है, वह सर्वदा सुखी रहता है ।^२

इस प्रकार आनन्द को उत्कृष्टि स्पष्ट रूप से काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है । पूर्ववर्ती आधायो में भामह^३ और वासन^४ ने प्रीति को काव्य प्रयोजनों के अन्तर्गत माना है, जो राजशेखर-वर्णित आनन्द का ही पर्याय है ।

काव्य का दूसरा प्रयोजन कीर्ति है । कीर्ति को दमो दिग्गमों में फँसाने वाले कवि, भावक एवं आध्यक्षदत्ता नरेण होने हैं । कीर्ति के विषय में कविशेखर कहते हैं कि कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी रचना उनके घर की पहलूशीबारी के भीतर ही विचरण करती है, कुछ कवियों की रचनायें, उनके मित्रों के भयों तक पहुँच जाती हैं और कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी रचना सभी के मुख पर गलन करती हुई विश्व भ्रमण की इच्छा पूर्ण करती है ।^५ राजशेखर की सम्मति में जिस कवि की प्रतिभा का अधिक प्रसार होता है, उसकी कीर्ति समस्त मगार को घबदिल कर देती है^६ । कवि कीर्ति का दूसरा विचारक भावक होता है ।

१. काव्यमीमांसा अ० ४५० १३ । २. काव्यमीमांसा अ० ३५० १० ।

३. काव्यमीमांसा अ० १० ५० ५५ ।

४. काव्याङ्गार—भामह—उपेति कीर्ति प्रीति च मातुराण्य विदुःश्रुतम् १।२

५. काव्यमीमांसा सूत्र—वासन—काव्यम् दुःखदुःखार्थं प्रीतिर्कीर्तिरनुशार १।१।५ ।

६. काव्यमीमांसा अध्याय ४५० १४ ।

७. काव्यमीमांसा अध्याय १५० ४९ ।

राजशेखर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि कवि के उस काव्य से क्या लाभ जिसे भासोचकण्य चारों ओर न फैलाये ? कवित्व वही है, जिनका समी । देशों में निर्वाह रूप में प्रसार हो और यह बात महदय पाठकों पर निर्भर होती है । राजाओं का आश्रय मिलने से भी कविकण्य प्रसिद्ध होते हैं । "राजाश्रेयण च गणा कवय प्रसिद्धिम्" ।^१ इन कवि-कीर्ति के प्रसार में राजगण भी सहायक होते हैं । राजशेखर के पूर्व भी प्रायः सभी आत्मारिकों ने कीर्ति की गणना काव्य प्रयोजनों में की है । महर्षि भरत द्वारा प्रयुक्त काव्य का 'यशस्वम्'^२ विशेषण भी कीर्ति का बोधक है । भामह की कारिका में भी कवि के लिये कीर्ति की प्राप्ति बतलाई है । वामन^३ ने काव्य प्रयोजनों को प्रीति और कीर्ति में ही विभाजित किया है । इस प्रकार कीर्ति के सन्ध में प्रायः आचार्य्य दरमण हैं विलु राजाओं को कवि-कीर्ति का प्रचारक मानना राजशेखर की धरनों मूल है ।

राजशेखर के विचारों से पता चलता है कि काव्य की रचना धनोपाजन हेतु भी की जाती थी । प्रबन्ध किसी के पास धरोहर के रूप में रख देने में, बच देने में, दास बन देने में, देश रक्षण कर देने में, आषामु होने में, अपूर्ण रह जाने में, तथा अग्नि एव जल आदि में जिनष्ट हो जाने में ।^४ इन वाक्यों में इसी बात का संकेत मिलता है कि धनप्राप्ति की गणना भी काव्य प्रयोजनों में की जाती रही है । पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह ने काव्य प्रयोजनों में धर्म का भी समावेश किया है ।

इसी प्रकार आनन्द, कीर्ति और धनप्राप्ति इन तीनों प्रयोजनों का कवि से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण इनकी गणना कविनिष्ठ प्रयोजनों में की गई है ।

पाठकनिष्ठ प्रयोजन पाठक की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण प्रयोजन, जिसका राजशेखर ने उल्लेख किया है, तीन है—हितोपदेश, व्यवहारज्ञान एव राजोत्तर । राजशेखर की 'गणपद्मभारतस्यैव तैर मन्व्यहिताय न' इस पंक्ति का प्रतिप्राय यह है कि कविगण पाठकों के हित के लिये भी काव्य की रचना करते हैं । भामह-विनिष्ठ 'हित'^५ यही है । राजशेखर का कथन है कि

१ काव्यमीमांसा भाष्यम् ६१०-२७ ।

२ नाट्यशास्त्र श्र० ११८ (धर्म्य यशस्वपुष्यम्) ।

३ काव्यादर्शकारमुन वामन (काव्य सद् दृष्ट्यादृष्टार्थे प्रीतिर्धीहितेनुवात्) १।१।३

४ काव्यमीमांसा श्र० ११०-२३ यदिच कथयन्ति—'निरतो विजयो दास देशत्यागीऽन्यपीडिता-वृद्धिकोरुद्विरम्भजन प्रमथोच्छेदेहेतव ।'

५ नाट्यशास्त्र भरत—१-११४ ।

‘प्राचीनकाल में विद्वान् सहस्र शाखाओं वाले वेदों एवं उनके ऋद्धों का अध्ययन करते थे, शास्त्रों के तत्वों को समझते थे, देशान्तर और द्वीपान्तर का भ्रमण करते थे ।’^१ इसका तात्पर्य यही है कि कवि के लिये व्यवहार-ज्ञान भी आवश्यक था । घन काव्य का एक प्रयोजन व्यवहार-ज्ञान भी है । इसकी अनुभूति पाठकगण करते हैं । कवियों से राजाओं का भी (आश्रयदान) उपहार होता है, उनसे उनकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती है ।

रुपाता नराधिपनेय कविसङ्गमेन

राजोऽपि नास्ति कविना सदृशः महाय ॥^२

इस प्रकार पूर्ववर्ती आचार्यों ने जिन काव्य प्रयोजनों का प्रतिपादन किया था उनको और भी अधिक परिभाजित तथा सुन्दर रूप में हम राजशेखर में देखते हैं ।

काव्य की आत्मा - भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यात्मतत्त्व का सर्वप्रथम विवेचन करने का श्रेय आचार्य वामन को है । वामन के पूर्व आचार्य दण्डी एवं भामह ने अपना विवेचन शब्दार्थ तक ही सीमित रखा है । आत्म-तत्त्व ठीक वे न पहुँच सके । यह कार्य आचार्य वामन ने पूर्ण किया । उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा^३ के रूप में प्रतिष्ठित किया । वामन के पश्चात् ध्वन्यालोककार भानन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा^४ के रूप में प्रतिष्ठापित किया । राजशेखर ने काव्यशास्त्र के क्षेत्र में शरीर और आत्मा के महारे काव्यरूप के रूप की कल्पना ही नहीं की अपितु उसके भगवत्प्रयोगों पर भी प्रकाश डाला । काव्यरूप के रूप में उन्होंने शब्द और अर्थ को शरीर, सत्तादि मापामो को सुखादि अङ्ग तथा भलकारो को आभूषणों के रूप में स्वीकार किया तथा रस को उसकी आत्मा के म्यान पर अधिष्ठित किया है । उनके पूर्व सभी आलोचक रस को महत्व देने चाये थे किन्तु उने सर्वप्रथम आत्मा के रूप में प्रतिपादन करने का श्रेय राजशेखर को ही है ।

परवर्ती आचार्यों ने राजशेखर की इस मान्यता को निर्विवाद रूप में ग्रहण किया । अग्निपुराणकार ने काव्य के जीवनत्व के रूप में रस को मान्यता दी । तत्पश्चात् विश्वनाथ ने काव्यलक्षण में ही रस का समावेश कर दिया ।

काव्यभेद : राजशेखर के मत में वादमय के दो मार्ग हैं—गारुड तथा काव्य—‘इह हि वादमयमुभयथा गारुड’^५ एवं ‘^६ उन्होंने द्वितीय अध्याय में

१. काव्यमीमांसा अ० १८५० ७८ । २. काव्यमीमांसा अ० ६५० २७ ।
 ३. काव्यालंकारसूत्र—वामन—१.१ । ४. ध्वन्यालोक भानन्दवर्धन ११ ।
 ५. काव्यमीमांसा अ० २५० २ ।

राजशेखर

शास्त्रों का वर्गीकरण करने के उपरान्त काव्य का विवेचन किया है। प्राचीन आचार्यों ने चारों वेदों, उनके षडंगों और चारों शास्त्रों की गणना चतुर्दश विद्याओं के आधार रूप में की है। ये चौदह विद्यायें भूर्भुव और स्व इन तीनों लोकों में व्याप्त हैं। मनुष्य सहस्र वर्षों से अधिक जीवित रहकर भी इन चौदह विद्याओं का अन्त नहीं पा सकता। राजशेखर ने इन चौदह विद्याओं का आधार एक मात्र 'काव्य' को माना है।

‘सकलविद्यास्थानैकापतन पचदश काव्यम् विद्यास्थानम् ।’

उन्होंने काव्य को पन्द्रहवीं विद्या कहकर गौरवान्वित किया है। उन्होंने कहा है कि शास्त्र काव्य का अनुसरण करते हैं। इसकी पहली विशेषता यह है कि इस में गद्य और पद्य का मजुल सामञ्जस्य मिलता है। उनके मत में काव्य के पूर्व की रचनायें केवल गद्यमूर्ष्टि का निर्माण करती रहीं, पद्यसृष्टि का नहीं। छन्दोबद्ध भाषा का आविष्कार भी प्रथमतः काव्य में ही पाया जाता है। इसकी तीसरी उपयोगिता इनके हितोपदेश में समृद्ध होने में है और सब से बड़ी बात यह कि उप-विद्याओं और कलाओं का उपजीव्य काव्य ही है।

राजशेखर ने छन्द को आधार मानकर काव्य का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य तथा मिश्र। छन्दोमयी रचना पद्य, छन्दोरहित गद्य और दोनों का मिश्रण—मिश्र रचना है।^१

काव्य के उक्त भेदों की स्थापना राजशेखर से पूर्व ही हो चुकी थी। काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भामह ने रचना शैली की दृष्टि से काव्य को गद्य तथा पद्य में विभक्त किया था।^२ आचार्य दण्डी ने काव्य के गद्य, पद्य तथा मिश्र में तीन भेद बनाये हैं।^३ आचार्य वामन ने काव्य को म्यूल रूप में गद्य और पद्य में विभक्त किया है।^४ राजशेखर दण्डी के काव्य-भेदों को मान्यता देते प्रतीत होते हैं।

भाषा की दृष्टि से राजशेखर कवि-राज है। कविराज विभिन्न भाषाओं में रचना करने में समर्थ होना है—

१ काव्यमीमामा अ० २ पृ० ४ ।

२ काव्यमीमामा अ० ९ पृ० ६६ ।

३ काव्यालंकार—भामह—‘शब्दार्थो महिली काव्य गद्य पद्य च तद्द्विधा ।’ १:१६

४ काव्यादर्श—दण्डी—‘पद्य गद्य च मिश्र च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्’ १:११

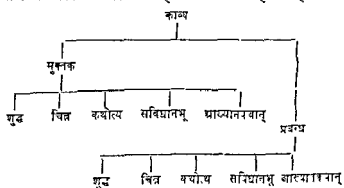
५ काव्यालंकारमूल—वामन—‘काव्य गद्य पद्य च’ १:३:२१ ।

‘यस्तु तत्र तत्र भाषाविषये तेषु प्रबन्धेषु
तस्मिंस्तस्मिंश्च रमे स्वतन्त्र स कविराजः ।’

अतः राजशेखर ने काव्य का विभाजन भाषा को आधार मानकर भी दिया है। पूर्ववर्ती आचार्यों में रट्ट ने भाषा के आधार पर काव्य के संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भूतभाषा, मागध, पिशाच, शूरमेन और अपभ्रंश ये भेद बताये हैं।

भामह ने काव्य को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में विभक्त किया है।^१ आचार्य दण्डी ने काव्य को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मिश्र रूप में विभाजित किया है।^२ काव्य की भाषा पर आधारित ये भेद युग-विशेष में भाषा की प्रगति के परिचायक हैं। राजशेखर का भाषाविषयक दृष्टिकोण अन्य आचार्यों की तुलना में व्यापक दिखाई देता है। उनके अनुसार भाषा की दृष्टि से काव्य के ६ भेद हैं—१. संस्कृत, २ प्राकृत, ३ अपभ्रंश, ४ भूतभाषा, ५ पेशाची ६ मिश्र।^३ इन भेदों में राजशेखर का युग प्रतिबिम्बित हुआ है। तत्कालीन समाज संस्कृत काव्य में अधिक प्रभावित था। तदान्तर क्रमशः प्राकृत, अपभ्रंश एवं भूतभाषा में रचित काव्य थे। जो कवि अनेक भाषाओं में काव्य रचने की क्षमता रखता था उसे राजशेखर ने विविध स्थान प्राप्त होता था।

कथानक की दृष्टि से राजशेखर के काव्य-वर्गीकरण का तीव्र आधार है कथानक। कथानक की दृष्टि से उन्होंने काव्य के दो भेद किये हैं, मुक्तक और प्रबन्ध। वास्तव में ये भेद काव्यगत अर्थ के हैं। अर्थ के आधार पर ही हम काव्य को मुक्तक और प्रबन्ध इन दो भागों में बाँट सकते हैं। मुक्तक और प्रबन्ध को भी उपभेदों में विभाजित किया गया है। निम्न सारणी से यह स्पष्ट हो जायगा—

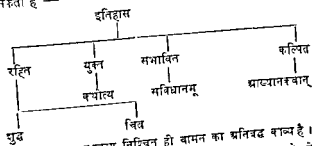


१ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १९ । २ काव्यालंकार—भामह—१।१।१६ ।
३ काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६ । ४ काव्यादर्श—दण्डी—१।२२ ।

राजशेखर

मुक्त और प्रबन्ध में प्रत्येक के निम्न पाँच भेद हैं—(१) शुद्ध (२) चित्र
(३) कथोत्थ, (४) सविधानमू, (५) आख्यानकवान् ।

मुक्ताकाव्य से राजशेखर का तात्पर्य स्फुट कविता या स्वतन्त्र कविता से है ।
प्रबन्ध का अर्थ है—काव्य या महाकाव्य । ऐतिहासिक कथा कथोत्थ कहलाती
है । जिसमें घटना सभावित हो वह सविधानमू और जिस में इतिहास की कल्पना
की जाए उसे आख्यानकवान् कहते हैं । इन बातों को निम्न तालिका से भी स्पष्ट
किया जा सकता है —



राजशेखर वा मुक्तक काव्य निश्चिन्त ही वामन का अनिवर्द्ध काव्य है ।
दूसरा भेद 'प्रबन्ध' वामन के 'निवर्द्ध' वा वाचक है । अन्य काव्यशास्त्रों में
इनके निधे प्रबन्ध शब्द ही प्रचलित है ।

राजशेखर ने मुक्तक के पाँचों भेदों के उदाहरण समस्तगतक में दिये हैं तथा
कुछ उदाहरण स्वरचित भी हैं । प्रबन्ध के पाँच भेद भवभूतिकृत मालतीमाधव
तथा वाल्मीकि के पुमारगभद्र में दिये गये हैं ।

राजशेखर वृत्त काव्य के भेद अधिक स्पष्ट नहीं है । एक काव्यरूप वर्तकचित्त
भेद में दूसरे भेद में समाविष्ट हो सकता है । इनलिये उनका यह वर्गीकरण
साहित्यज्ञान में प्राप्त नहीं मना ।

काव्यार्थ के स्रोत : वस्तुतः कवि स्वयं स्पष्ट है । प्राणी मूर्ष्टि से उसकी
मूर्ष्टि कही अधिक उन्मृष्ट है । निरति ने प्राणी के हाथ बाँध रखे हैं तब कवि
मुक्त रूप में वर्जन निबन्ध है । प्राणी की मूर्ष्टि सुप्त-दुःख के चक्र में घूमती रहती है,
तब कवि वर्जन में केवल आनन्द ही प्राप्त है । प्राणी की मूर्ष्टि में प्रत्येक जीव
प्रारब्धमं में में बँधा रहता है, तब कवि वर्जन वा प्रत्येक प्राणी कवि-प्रतिमा
में ही गुंथा है । प्राणी अपनी मूर्ष्टि के प्रत्येक मर्त्य को मधुर के साथ प्रमत्त,
बहु बलाय और निरुत्त रणों वा आतंकजन करता है तब कवि वर्जन वा
साहित्य, नव-रणों वा आनन्दजन करता है । प्रमत्त यह है कि इस मूर्ष्टि की

आधारशिला कौनसी है। प्रायः सभी आचार्यों ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। आचार्य राजशेखर ने कहा है—

“श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या, ममश्रुति, राज-
मिद्धानमयी, लोको, विरचना, प्रकीर्णकं च काव्याद्याना द्वादश योनय इति
आचार्या । उचित-संयोगेन, योक्तृ-सयोगेन उत्पादनयोगेन सयोग विवारेण च
गह षोडश इति मायावरीय ।”^१

अर्थात् वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या (मीमांसा और छं प्रकार का तर्क
शास्त्र) राजमिद्धानमयी (अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र और वामशास्त्र) लोक
(सामाजिक या व्यवहारिक वृत्त) विरचना (अन्यान्य कवियों की रचना) प्रकीर्णक
(चौमठ कलायें, आवश्यक आधुर्वेद) ये कवि-सर्जन के आधार हैं।

वामन ने काव्ययोनि के स्थान पर काव्याङ्ग शब्द का प्रयोग किया है जिसे
राजशेखर ने काव्य माता माना है। वामन ने तीन काव्याङ्ग माने हैं—लोक,
विद्या और प्रकीर्णक।^२ लोक वा अर्थ है लोक-व्यवहार।^३ विद्या के अन्तर्गत
कोश, छन्दःशास्त्र, कला (चौमठ प्रकार की कलायें एवं चौदह उप-कलायें),
कामशास्त्र, दण्डनीति, (अर्थशास्त्र एवं राजनीति) आती है।^४ प्रकीर्ण
फुटकर का द्योतक है। इसके भीतर लक्ष्यज्ञत्व, अभियोग, वृद्धसेवा, भ्रवेक्षण,
प्रतिभान और अवधान इन छ का सग्रह है।^५ अन्य कवियों के काव्यों का परिचय
लक्ष्यज्ञत्व कहलाना है। काव्य रचना के लिय उद्योग को अभियोग कहते हैं।
वृद्धसेवा से काव्योपदेशक गुरुजनों की सेवा अभिप्रेत है। पदों के आधान और
उद्धरण से निपुणता भ्रवेक्षण के अन्तर्गत है।^६

राजशेखर ने कवित्व की आठ भाताओं में भक्ति का भी उल्लेख किया है।
आचार्य वामन की वृद्ध-सेवा में भक्ति भी आ जाती है। उन्होंने प्रतिभानम् के

१ काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ३५ ।

२ वामन—काव्यालकारसूत्र—लोको विद्या प्रकीर्णकं च काव्याङ्गानि १।३।१

३ वही लोडुषति लोक १।३।२ ।

४ वही श्रुतिस्मृतिरमिद्धानकोशच्छन्दोविचिति कला कामशास्त्र दण्ड-
नीतिपूर्वा विद्या १।३।३ ।

५ वही लक्ष्यज्ञत्वभियोगो वृद्धसेवाभ्रवेक्षण प्रतिभानमवधानच प्रकीर्णम्
१।३।१३ ।

६ वही तत्र काव्यपरिचयो लक्ष्यज्ञत्वम् १।३।१२—काव्यवन्धोद्यमोऽ-
भियोग १।३।१३ काव्योपदेशगुरुशुश्रूषण वृद्धसेवा १।३।१४, पदाप्रानो-
द्धरणभ्रवेक्षणम् १।३।१५ ।

घोड़ों आदि के द्वारा उड़ाई गई धूलि, स्वर्ग में पहुँचकर दिग्गजों की कनपटियों पर जाकर जम जाती है जिसे उनकी कनपटियों से बहता हुआ भद्रजन स्वर्गीय भ्रमरों के लिये बडवा हो जाता है । दूसरी ओर वह धूलि देवराज इन्द्र की हजार आँखों में पड़कर उन्हें व्याकुल कर देती है और भ्रन्त में वह एकवित्त धूलि स्वर्ग गंगा के जल में गिरकर उमें भी पड़िन्न बना देती है ।

यहाँ राजा की विजय यात्रा से धूलि का उड़ना, उसे मुर-सरिता के जल का पड़िन्न होना, उसने स्नानार्थिनी गुराङ्गनाओं की विमलस्कृता और उममें विजय यात्रा की निन्दा उतरोत्तर मन्त्रकारी मयोग प्रतीत होता है ।

उत्पाद्य संयोग : जहाँ उपमानोपमेयभाव आदि मन्त्र्य भंभाव्य हो । यथा शिशुपालवध में—

उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहावकाशगपापयम पनेताम् ।

तेनोपनीयेत तमाननीलमामुक्तमुक्तालवमस्य वक्ष- ॥^१

अर्थात् यदि आकाश में स्वर्ग मङ्गा की दो धारायें पृथक् पृथक् गिरें तो श्रीकृष्ण के नीलवक्षस्थल पर दोनों ओर लटकती हुई मुक्ता-हार की लड़ियों की उपमा दी जा सकती है ।

यहाँ आकाश और वक्षस्थल का तथा मुक्तालता और मङ्गा-प्रवाह का उपमानोपमेय भाव सवध सम्भावित है । भ्रन्. उत्पाद्य मयोग है ।

संयोग विकार : संयोग या मन्त्र्य से विकार उत्पन्न होना संयोग विकार कहलाता है । अर्थात्—

गुणानुरागमिधेन यशसा तव सपेता ।

दिव्यधूना मुखे जातमकस्मादर्धकुङ्कुमम् ॥^२

अर्थात् मिश्रित एवं चारों ओर फैलते हुए तुम्हारे यश से दिशारूपी बहुओं के भालस्थल पर अक्षरमात् आघा कुकुम का टीका लग गया ।

श्वेत मस्तक पर लाल गुण एव श्वेत यश के संयोग से अर्ध कुकुम रूप विकार उत्पन्न हो गया है । इसीप्रकार चन्द्रोदय के संयोग से ममूद्र आदि में जन्माद विचार को काव्य में वर्णित करना मयोग विकार है ।

काव्यार्थ की परिधि : काव्य का क्षेत्र चितना व्यपक हो सकता है, इसको चर्चा सब से पहले आचार्य द्रौहिणि ने की है । उनके मत से काव्य के पात्र दिव्य, दिव्यमानुष तथा केवल मानुष हो सकते हैं ।

राजशेखर ने अर्थ-व्याप्ति मान प्रकार की बतलाई है । द्रौहिणि-कथित तीन प्रकारों के अतिरिक्त पातालीय, मर्त्यपातालीय, दिव्यपातालीय और दिव्यमर्त्यपातालीय भेद से इसके निम्न सात प्रकार हो सकते हैं । वे हैं— (१) दिव्य, (२) दिव्य मानुष, (३) मानुष, (४) पातालीय, (५) मर्त्य-पातालीय, (६) दिव्य-पातालीय, (७) दिव्य-मर्त्य-पातालीय । दिव्य मानुष के चार अर्थ हैं—(१) दिव्य पुरुष का जन्म लेकर मर्त्य बन जाने पर, (२) मर्त्य पुरुष का प्राण त्याग कर दिव्य बन जाने पर (३) मर्त्य-पुरुष की दिव्य सबंधी कथानक कल्पना करने पर और (४) मर्त्य होकर भी अपने प्रभाव से दिव्य विभूति प्रकट करने पर (अर्थात् छि भेदों का अर्थ नाम से ही स्पष्ट हो जाता है ।)

राजशेखर ने इन पात्रों के विवरण द्वारा नाट्यशास्त्र के विषय को अपने ग्रन्थ में उचित स्थान प्रदान किया है । उनकी मौलिकता का यह प्रबल प्रमाण है ।

काव्य में सत्य शिव और गुन्दर की अभिव्यक्ति-काव्य पर दोपारोपण किया गया है कि (१) काव्य असत्य अर्थ का अभिधान करता है, (२) असोमन वस्तु का उपदेश करता है, (३) अगुन्दर, असम्य अर्थों का भी वर्णन करता है । इन काव्य का उपदेश मानव समाज के लिये अहितकर है—

‘असत्यार्थभिधापित्वान् नोपदेष्टव्य काव्यम् ।’

‘अगुन्दरदेशत्वात् तर्हि नोपदेष्टव्य काव्यम् ।’

‘असम्यार्थभिधापित्वान्नोपदेष्टव्य काव्यम् ।’

कविपर राजशेखर इन आरोपों को कैसे सह सकते थे ? तीनों का परिहार कर उन्होंने काव्य में सत्य शिव गुन्दर इन तीनों तत्वों को और गमाहित कर दिया । प्रथम आरोप के परिहार के लिये वे कहते हैं कि काव्य में कोई भी वस्तु असत्य नहीं होती । जो अत्याभास प्रतीत होता है वह अर्थवाद है जो गुणों गुणों से वेदों की सूक्तियों में भी दिखाई देता है । इसे हम असत्य नहीं कह सकते । इस कथन की पुष्टि के लिये उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण तथा पानजल महाभाष्य के पराशास्त्रिक से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । प्रथम जिस अर्थवाद का प्रयोग शास्त्र एवं श्रुति करते प्राये हैं, उन्हें कविकृत अपने काव्य में प्रयुक्त करें तो वह अथमार्थ असत्य नहीं हो सकता । काव्य सदा सत्य ही अभिव्यक्ति करता है ।^१

१. काव्यमीमांसा प्र० ६ पृ० २४, २६, २७ ।

२. काव्यमीमांसा प्र० ६ पृ० २७ ।

(२) काव्य में अनैतिक वस्तु का उपदेश दिया जाता है, इस कथन की पुष्टि में उद्धृत श्लोक (जिस में एक बृद्ध बुलटा अपनी पुत्री के बुलटानियम-विमुख आदर्शों की अवहेलना कर रही है) का भाष्य स्पष्ट करते हुए राजशेखर कहते हैं कि काव्य में यह अशोभन बातें प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु यह उपदेश निषेध्य रूप में है, विधेय रूप में नहीं है।

‘अस्त्ययमुपदेशः किन्तु निषेध्यत्वेन न विधेयत्वेन’^१

समाज के चरित्र रक्षण के लिये ऐसे उपदेशों की नितात आवश्यकता होती है। उसका उत्तरदायित्व कवि काव्य द्वारा पूर्ण करते हैं। तीसरा आक्षेप यह है कि काव्य में असभ्य अर्थ का अभिधान उपलब्ध होता है। यायावरीय इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसे अर्थों का निबन्धन, वेद या शास्त्र में भी प्रसंगानुसार दिखाई देना है। अतः यदि कवि प्रसंगानुसार अर्थों को अभिव्यक्त करें तो यह नितान्त धर्म्य है, क्योंकि काव्य का प्रयोजन सत्य शिव सुन्दर की अभिव्यक्ति है, असत्य, अशिव एवं असुन्दर का आलाप नहीं।^२

इन तीन आक्षेपों के परिहार द्वारा यायावरीय ने काव्य में सत्वता शिवता एवं सुन्दरता का समर्थन किया है।

कवि शिक्षा सम्प्रदाय

‘कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय’ साहित्यशास्त्र के मान्य सम्प्रदायों (रस, अलंकार, रीति एवं छन्द) से नितान्त भिन्न है। इस सम्प्रदाय का ध्येय अन्य सम्प्रदायों की भाँति काव्य के आत्मतत्त्व की गवयेणा एव स्थापना नहीं है। इसका उद्देश्य है—कवि के व्यक्तित्व एवं कर्तव्य के विकास तथा सबर्धन के लिये उचित मार्गदर्शन करना। कवि-रहस्य अधिकरण का दो-तिहाई भाग कवि-शिक्षा से संबंधित है। इस अधिकरण के तृतीय से पचम तथा दशम से अष्टादश अध्यायों तक का वर्ण-विषय कवि-शिक्षा है।

राजशेखर ने ‘कविशिक्षा’ के अन्तर्गत (१) काव्यपुरुष, (२) कवि, (३) भावक, (४) काव्यपाक, (५) काव्यानुहरण एवं (६) कविमनस का विवेचन किया है।

काव्यपुरुष : नवम शताब्दी से पूर्व साहित्य-शास्त्र काव्यपुरुष से अररिचित था। सर्वप्रथम आचार्य दण्डी ने ‘परीर तावदिष्टाय ध्यवच्छिन्ना पत्राणी’

१. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २६ ।

२. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २७ ।

कहकर काव्य-शरीर का निर्देश किया, किन्तु उसमें सजीवता देने के लिए आत्मतत्त्व की प्रतिष्ठा का प्रथम आचार्य बामन ने किया। उन्होंने 'रीतिरात्मा बान्धव्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। आचार्य धानन्दबोधन रीति नामक आत्मतत्त्व में पूर्णतया प्रसङ्गमय थे। प्रथम उन्होंने रीति के स्थान पर ध्वनि को काव्य की आत्मा मिथ किया। इस प्रकार राजशेखर के पूर्वजनों आचार्यों ने काव्य के शरीर एव आत्मा का जो स्वरूप बोधा था, उसको पृथग्भूमि में उन्होंने एक 'काव्यरूप' की कल्पना कल्पना की थी, किन्तु यह कल्पना कल्पना ही बनी रही। राजशेखर ने इस कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान किया। काव्यरूप के अवतरण की यही पृथग्भूमि है। काव्यरूप का जन्म, भारत भ्रमण एवं विवाह की रोचक कथा राजशेखर की प्रतिभा की देन है। यदि गृहस्थ स्थिररथण का तीमरा अध्याय 'काव्यरूपोत्पत्ति' है। जिसमें वे कहते हैं—प्राचीनकाल में पुन प्राणि की इच्छा में मरुस्थली में हिमाचल पर जाकर तपस्या प्रारम्भ की। उनकी तपस्या में प्रसन्न होकर प्रजा ने वरदान दिया। पञ्चमवह्य मरुस्थली को पुन-रन्त की प्राप्ति हुई। यही काव्यरूप था। मरुस्थली का पुन होने के कारण यह 'मरुस्थलेय' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पुन में उदरर माना के बरणा का स्पर्श करने हुए छन्दोबद्ध भाषा में उदा—

“मशैतद्वाङ्मय विश्वमर्ममूर्त्या विवर्तने—

गोऽस्मि काव्यरूपान् मान पादौ बन्धेव तावकी ।”^१

उस प्रकार की छन्दोगयी वाणी केवल वेदों में पृथिवीवर होती थी। गौरीक मन्त्र में प्रथमतः उमाना सावित्ररथण मुनिकर मरुस्थली अन्वले प्रगत हुई। उन्होंने पथ की प्रथमतः मूर्ति करने बाँधे उस मानक की निम्नलिखित शब्दों में प्रशंसा की—

‘मन्त्राद्यौ ते शरीर, मन्त्रेण मृद, प्राहुः वाहु जपनमन्त्रेण पैवाप पादौ, उतो मिथम् । तम प्रगन्तो मधुर उदारयन्तामि । उतापय प ते यथो, रत आना, योगाणि छन्दानि, प्रमोन्मन्त्रवहिनिरादिक प बान्धेति अक्षुप्रयोगादयदन् त्वामवहृवंति ।’^२

धर्मात् धन्द और धर्म तुष्टार शरीर है। मन्त्र का भाग मूत्र, प्राहुः श्रुता, धनप्रम जपन, पैवापी धरण तथा मिथ भाषा तुष्टार यथाप्यत है। तम,

१ काव्यरूप रूप का उत्पत्ति काव्य ग्रन्थों में भी मिलता है। काव्यरूप के १७ वें अध्याय, सावित्रर के २४९ वें अध्याय में, शरदर के १९ वें अध्याय और हर्षचरित के प्रथम उच्छ्राम में।

२ शाल्यमीमांसा अध० ३९० ६ ।

३ शाङ्गीमीमांसा अध० ३९० ६ ।

प्रसन्न, मधुर उदार आदि गुणों से तुम युक्त हो । तुम्हारी वाणी उन्मृष्ट है । रम तुम्हारी आत्मा है । छन्द तुम्हारे रोम हैं । प्रज्ञोत्तर, प्रवहिनवा आदि तुम्हारी वाक्-श्रीडा है । उपमा अनुप्रास आदि तुम्हें अलङ्कार करते हैं । भारी अर्थ को बतलाने वाली श्रुति भी तुम्हारी बन्दना करनी है ।

चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोमस्य त्रिधा बडो
धूपभो रौरवीति महादेवो मर्त्यानाविवेश ॥^१

अर्थात् चार सींगों, तीन पैरों, दो सिरों एवं सात हाथों वाला, तीनों प्रकार से बंधा हुआ और शब्द करना हुआ यह महादेव मर्त्य लोक में अवतीर्ण हुआ है । पश्चात् एक मधन वृक्ष की छाया में स्थित शिला पर उभे लिटाकर एवं नवजात शिशु-भद्रश आचरण करने का उपदेश देकर सरस्वती आकाश पदा में स्नात के लिये चली गई । मध्याह्न में ताप में बिलघृते हुए उम बालक को उशनम् मुनि ने देखा तो वह दयार्द्र होकर उभे अपने आश्रम में ले आये । आश्रम के उग प्रशात वातावरण में बालक ने उशनम् मुनि को छन्दोवद्ध वाणी में प्रेरित किया जिससे उन्होंने सरस्वती ने स्तुतिपरक उद्गार अभिष्यक्त किये—

“या दुग्धाऽपि न दुग्धेव वविदोऽभिरन्वहम् ।

हृदि न गन्धिधना सा मूक्तिधेनु सरस्वती ॥^२

अर्थात् जिसे वविगण, खात्तो के समान दिन-रात दुहने रहने हैं, फिर भी जो बिना दुही-ही प्रतीत होती है, वह मूक्तियों की कामधेनु सरस्वती हमारे हृदय में निवास करे । इस छन्दोमय उद्गार के कारण उशनम् मुनि आदिदिवि के रूप में प्रगिद्ध हुए । स्नान के उपरान्त सरस्वती बालक को दूधने निराली । उन समय यागमीकि ने उन्हें उमानम् के आश्रम का पता बतलाया । इन प्रकार वाग्मीकि सरस्वती के कृपा-भाव बन गये । उन्होंने छन्दोवद्ध रचना के लिये सरस्वती का आशीर्वाद प्राप्त किया । पद्मस्वरूप एक दिन निपाद के द्वारा मत्सरी के भारे जाने पर कारण विनाश करने हुए युवा शीश को देखकर उनके शोक-गतन हृदय से यह बैधरी वाक्-निबल पड़ी—

“मा निपाद ! प्रतिष्ठां स्वयमम शाश्वती यमाः ।

यत्पौत्रमिधुनादेरमवधी. काममोहितम् ॥^३

१. ऋग्वेद ३-८-१०-३ (भिन्न-भिन्न भाष्यकारोंओं द्वारा विविध प्रकार से व्याख्यात इन मन्त्र का उपयोग राजदोषर ने अपनी पाषण्ड्यता के अनुप्रास कर किया है ।)

२-३ वाय्वमीमामा ध० ३ पृ० ७ ।

यह वाणी कवि के सारस्वत होने का आचार बन गयी। इस श्लोक का ग्रन्थपत्र करने वाला कवि भी सारस्वत नाम से सम्बोधित होने लगा। इसी श्लोक को पढ़कर इंपायन मुनि ने शतमाहस्त्रो महाभारत साहित्य का निर्माण किया।

एक बार ब्रह्म-लोक में ऋषियों और देवताओं में किसी वैदिक विषय पर विवाद छिड़ गया। ब्रह्मा के आदेश से सरस्वती को निर्णायक ब्रह्मलोक जाना पड़ा। सारस्वतीय भी साथ जाने के लिए तैयार हो गया। ब्रह्मा की अनुमति के बिना उसे से जाना अनुचित समझकर सरस्वती उसे छोड़कर चली गयी। बालक भी पीछे-पीछे जाने लगा। उसे जाते हुए देखकर उसका मित्र कार्तिकेय रोने लगा। अतः उस बालक काव्यपुरण को बनाने के लिए सरस्वती तथा पार्वती ने साहित्य-विद्या-बधू का मर्जन किया। उन्होंने काव्यविद्या-स्नातको एवं साहित्य-विद्या-बधू को उत्पन्न कर्तव्य भी बतलाया।

साहित्य-विद्या बधू एवं काव्य-विद्या स्नातक काव्य-पुरण को घांज में पूर्व की ओर चल पड़े। अग्न बग मुद्रा एवं पुण्ड्र ब्रह्म प्रादि जनपदों में पहुँच साहित्य-बधू ने जैनी वेशभूषा धारण की। उमी का अनुकरण तद्देशीय स्त्रियों ने किया। पुण्ड्रों ने काव्य-पुरण की वेश प्रणाली का अनुकरण किया। जिस वचन-विन्यास का साहित्य-बधू ने प्रयोग किया उसी वचन-विन्यास रूप को गौडीय। रीति का नाम मिला। बधू ने काव्य-पुरण के मनोरंजन के लिए जिस विन्यास का प्रदर्शन किया उस विन्यास विन्यासक को भारतीय वृत्ति कहा गया तथा उसकी वेशभूषा श्रीदुर्गाय प्रवृत्ति के नाम से विख्यात हुई। इसके अनन्तर काव्य-पुरण पाचाल की ओर चला जहाँ पाचाल शूरसेन, हस्तिनापुर, वासमीर, वाहीर, वाहती प्रादि जनपद हैं। इन प्रदेशों की स्त्रियों को भी साहित्य-बधू की वेशभूषा का अनुकरण पूर्वानुसार छविकर प्रतीत हुआ। काव्य-जगत में यह वेशभूषा मन्वन्ति प्रवृत्ति पाचालमध्यमा कहलाई। बधू की वचन शैली पाचाली रीति तथा विलास-विधि धारण की वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् काव्य-पुरण और साहित्य बधू अन्ति की ओर गये, जहाँ अन्ति, वैदिश, मुराष्ट्र, मानव, अर्बुद एवं भृगुवन्त आदि देश हैं। वहाँ साहित्य-बधू ने विशिष्ट नेपथ्यविधान किया जिस में पाचाल देश और दक्षिण देशों के वेशों का मिश्रण था। इसका वचन-विन्यास एवं विन्यासक भी वही प्रवृत्ति करता था जि पाचाल और दक्षिण का उन पर पर्याप्त प्रभाव है। यहाँ प्रवृत्ति नेपथ्यविधि भाववि एवं विलासविधि सावती तथा कोशिकी नाम से प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात् काव्यपुरूप दक्षिण दिशा की ओर गया, जहाँ मलय, मेरुल, पुतल, केरल, पाल, मन्जर, महाराष्ट्र, गग और कलिग आदि जनपद हैं। इन स्थानों पर साहित्य-बधू द्वारा अगोक्षित वेज प्रणाली दक्षिणात्वा बहलाई। उन्होंने नृत्य, गीत एव वाद्यादि की जिस शैली का प्रदर्शन किया वही केशिकी वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई। उन्होंने भाषण में जिस बचन-शैली का उपयोग किया वह वैदर्भी रीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। साहित्य-विद्या-बधू के वेद-बचन एव विलास के प्रति श्रमण, आकृष्ट होते हुए काव्यपुरूप ने अपनी यात्रा स्वगित कर दी। विदर्भ देश में काव्यपुरूप ने साहित्य-बधू के साथ गान्धर्व रीति से विवाह किया।

काव्यपुरूप की सृष्टि का उद्देश्य : राजशेखर का उद्देश्य काव्यपुरूप की रचना क्या प्रस्तुत करना ही नहीं है। साहित्य-शास्त्र में इस पुरूप की अवतारणा का लक्ष्य है—नाव्य वा समग्र भव्य और आकर्षक रूप उपस्थित करना। रीति का वृत्ति और प्रवृत्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्त करने तथा गौडीया, पाचाली और वैदर्भी की क्रमशः श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए साहित्य-विद्या-बधू द्वारा काव्यपुरूप की खोज में भारत-भ्रमण का आयोजन किया है। रीति वृत्ति एव प्रवृत्ति का अस्तित्व समाज में ही है, उसके बाहर नहीं, इस तथ्य की ओर भी राजशेखर ने गहृदय पाठन का ध्यान आकृष्ट किया है। काव्यपुरूप की आत्मा को रस सज्ञा देकर उन्होंने स्वयं को रसवादी प्रमाणित किया है। उन्नी प्रकार काव्यपुरूप के अंग-प्रत्यंग का वर्णन करके उन्होंने समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। गद्य का अस्तित्व प्राचीनकाल से है किन्तु लौकिक संहृत में पद्य (छन्द) का प्रयोग काव्यपुरूप के अवतरण से ही आरम्भ हुआ, यह मत भी पूर्णतः शास्त्रीय है। सामान्यतया बाल्मीकि आदि कवि के रूप में प्रसिद्ध है किन्तु उशनस को आदि-कवि कहकर उन्होंने गीता के 'कवीनामुशानाविवि' की पुष्टि की है।

राजशेखर ने काव्यपुरूप तथा साहित्य-विद्या का विदर्भ के वत्सगुलम (वर्तमान वाशिम) नगर में मगल विवाह रचाकर यह सकेत किया है कि वे विदर्भ की मनोहरता एव सरसता के विशेष पक्षपाती थे।

कवि : सारस्वत-गद्य पर चलने वाले पथिकों में प्रतिभा और व्युत्पत्ति से सम्पन्न, रस के उद्बोध में समर्थ, वर्णन में निपुण व्यक्ति ही 'कवि' सज्ञा का अधिकारी हो सकता है। 'कविशब्दश्च क्वं यणं इत्यस्य धातोः काव्यकर्मणो रूपम्'

घोर उम बरि वा कर्म वा शक्ति ही भाव्य है । राजनेपर की काव्यमीमासा में काव्यत्रय के मषाला कवियों के भेदोभेद विचार में खिन्न रिये है । इनके आधार मित्र-विमित्र है । जिन भाषारों के माध्यम में कवियों वा दिनाजक रिया गरा है वे निम्न है—

(१) प्रतिभा, (२) मोदिरुता, (३) विषय, (४) हरम और (५) मनोवृत्ति ।

प्रतिभासम्ब कवि : राजनेपर ने प्रतिभा के दो भेद खिन्न रिये हैं— कारयित्री और भावयित्री । इनमें कारयित्री प्रतिभा—महजा, आहार्या और शीपदेगित्री तीन प्रकार की होती है । महजा प्रतिभा से सम्बन्ध कवि भास्वन्, आहार्या प्रतिभा से युक्त आम्भानिक तथा शीपदेगिक प्रतिभा में सम्बन्ध कवि 'शीपदेगिक' कहनाता है । कवि की रियेयता यह है कि उन जन्मान्तरीय मन्त्राओं में ही भास्वन् मनुष्यों वा बांध हो जाता है ।^१ अतः उनकी रचना में प्रतिभा वा मानन्व विज्ञान दिखाई देता है । आम्भानिक कवि की प्रतिभा दुगी जन्म के प्रथम में उद्भूत होती है ।^२ अतः इन कवि के लिए प्रथम अत्यन्त उपदेश होता है । शीपदेगिक कवि को ग्विनि इन दोनों में भिन्न है । मन्त्र-मन्त्रादि के अनुष्ठान में उनमें कवित्व शक्ति का उद्भव होता है ।^३ बुद्धिमान्, आहार्यबुद्धि एव दुर्बुद्धि—इन तीनों प्रकार के गिष्यों में दुर्बुद्धि गिष्य ही शीपदेगिक कवित्व का पात्र होता है ।

आचार्यों का मत है कि शीपदेगिक कवियों की कवित्व शक्ति के उद्भव के लिए मन्त्र-तन्त्र आदि के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जो द्राधकन स्वय ही महुर है वह फणित मन्त्रों की प्रेषणा नहीं करता ।^४ किन्तु राजनेपर आचार्यों की इस विचारधारा से पूर्णतया असहमत हैं । वे कहते हैं कि एक ही कार्य का मन्त्रादन करने वाले दो साधनों का यदि एक साथ प्रयोग कर लिया जाय तो नियत कर कन द्विगुणित हो जाता है । अतः भास्वन् और आम्भानिक

१ काव्यमीमासा अ० ६ पृ० १३—जन्मान्तरमस्कारप्रवृत्त मरुत्तनीको बुद्धि-मान्तरम्वर ।

२ काव्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—इह जन्माभ्यासोद्भूतमिभारलोक आहार्य बुद्धिराम्भानिक ।

३ काव्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—उपदेगिकप्रथितवाग्मिभयो दुर्बुद्धिरीर वैशिक ।

४ काव्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—तस्मान्नीतरा तन्त्रशेषमनुविन्दतान् नहि प्रहृतिमधुरा द्रामा फणित-मस्कारमेपशते इत्याचार्या ।

कवियों के लिए मन्त्र-तन्त्र का अनुष्ठान उपादेश ही है। आचार्य श्यामदेव का कथन है कि इन तीनों प्रकार के कवियों में प्रथम श्रौतदेशिक में धाम्यामिक और धाम्यामिक में सारस्वत कवि उत्तरोत्तर कुशल होंगे हैं—'तियानुत्तरोत्तरीयो गरीयान्' इति श्यामदेवः। सारस्वत कवि की साधारण नैमगिनी प्रतिभा के कारण निर्वाधमति में प्रवर्धित होनी है। धाम्यामिक कवि की रचना धम्याम-जग्य होने के कारण परिमित क्षेत्र तक ही व्याप्त रहती है, और श्रौतदेशिक कवि मन्त्र-तन्त्र के अनुष्ठान से नवित्व शक्ति को अर्जित करता है। अतः वह कभी तो सरल और कभी नीरस रचना करता है।

राजशेखर को यह मन्त्रव्य अभीष्ट नहीं है। उन्होंने रचना के उत्कर्ष को श्रेष्ठता प्रदान की है, सारस्वत, धाम्यामिक एवं श्रौतदेशिक नामों को नहीं। उनके मतानुसार गुणों की ही अधिकता में काव्य में उत्कर्ष होता है। जिन कवि में जितने अधिर गुण होंगे उतनी ही उत्कृष्ट उसकी रचना होगी। वे कहते हैं कि काव्य-रचना में उपकारिणी विद्याओं का प्रथम ज्ञान, काव्य-रचना का धम्यास तथा गूढ कवित्व शक्ति-इन तीनों का एकत्र निशम दुर्लभ है। काव्य, काव्याङ्ग विद्याओं का पूर्ण धम्यास तथा मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान का रहस्य ज्ञान जिस कवि को है कविराजता उसके लिये अलभ्य नहीं है। कविराज राजशेखर की यह युक्ति इतनी धोर इगित करती है कि वे आचार्य श्यामदेव के मत के समर्थक नहीं हैं। सारस्वत, धाम्यामिक अथवा श्रौतदेशिक कवि में से किसी में भी यदि सर्वगुण विद्यमान है तो वही श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

मौलिकता-जग्य कविभेद : राजशेखर ने रचना की मौलिकता की दृष्टि से कवियों की कतिपय श्रेणियाँ निर्धारित की हैं। वे हैं—(१) उत्पादक, (२) परिवर्तक, (३) आन्धादक, (४) सबगुरु। इस विषय में उनका निम्न कथन दितान्त युक्तियुक्त है—

नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचोरो वणिग्जनः ।

स नन्दति विना वाच्य यो जानाति निगूहितुम् ॥२

कवि और वणिग्जन चौर्य-कर्म के बिना रह नहीं सकते, परन्तु जो चोरी को छिपाना जानता है वह वस्तुतः आनन्द से रहता है। मौलिक रचना करने वाले कवि नगण्य हैं। जो अपनी प्रतिभा में नवीन रचना करता है उसे उत्पादक कवि कहते हैं। दूसरे की रचना में कुशलता से परिवर्तन करके उसे अपनी बना

लेने वाला कवि परिवर्तक की धेनी में रखा जा सकता है । जो अपनी प्रतिभा से दूसरों की रचना पर इस तरह भावरण डालना है कि उस रचना के अन्यकृत होने का आभास ही नहीं हो पाता, ऐसा कवि आच्छादक कहा जा सकता है । दूसरे को कविता या काव्य को निर्भीकता से अपना कहकर प्रकट करने वाला कवि सर्वांगक की कोटि में रखा जा सकता है । राजशेखर की इन दो पंक्तियों में उक्त कवि-श्रेणियों का बोध होता है—

उत्पादक कवि, कवित्वश्चित्तश्च परिवर्तक

आच्छादकस्तथा चान्यस्तथा सर्वांगकोऽप्यर ।^१

विषयानुसार कवि-कोटियाँ : राजशेखर ने वाङ्मय के शास्त्र एवं काव्य इन श्रेणियों के आधार पर कवियों के तीन वर्ग बनाये हैं । जिन कवियों का लक्ष्य अपनी रचना में काव्य को महत्व देना है वे काव्यकवि, जिनका प्रमुख उद्देश्य रचना में शास्त्र को अभिव्यक्त करना है वे शास्त्रकवि एवं जिनका लक्ष्य शास्त्र और काव्य दोनों को समान महत्ता स्थापित करना है वे उभयकवि कहलाते हैं । इस सदर्भ में राजशेखर ने श्यामदेवाचार्य का उल्लेख किया है, त्रिनके अनुसार शास्त्रकवि से काव्यकवि और काव्यकवि से उभयकवि-श्रेण्ड माने जाते हैं ।^२ राजशेखर इनसे असहमत हैं । उनके मतानुसार अपने-अपने विषय में श्रेष्ठ कवि श्रेष्ठ है । अतः उनमें से किसी को ऊँचा या नीचा बतलाना ठीक नहीं । नीरधीर-विवेक में कुशल राजहंस भी चन्द्रिकापान में असमर्थ होता है और चन्द्रिकापान में दक्ष चकोर भी नीर-धीर विवेक में असमर्थ सिद्ध होता है । ठीक इसी प्रकार काव्यकवि और शास्त्रकवि के रचना क्षेत्र नितान्त भिन्न होने के कारण उनको उच्चा-वचता का प्रश्न ही नहीं उठता ? शास्त्रकवि रम-मग्गदा के द्वारा शास्त्र की जटिलता को शिथिल कर उसे रसविक्रम करने का प्रयास करता है। काव्यकवि शास्त्र के तर्क-कर्कश अर्थों में भी उक्तिर्वीचित्र्य के द्वारा, मधुरता को स्पष्ट करता है । उभयकवि दोनों प्रकार की विधियों में दक्ष होता है । अतः राजशेखर का कथन है कि तीनों ही कवि अपने-अपने क्षेत्र में समान के हैं कम या अधिक नहीं । काव्य और शास्त्र की सापेक्षता के कारण दोनों के मध्य उपचार्य-उत्कारक भाव रहता है । अतः इन दोनों का सामंजस्य नितान्त अपेक्षित है । इन दोनों के महत्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् राजशेखर ने शास्त्रकवि के तीन प्रकार बर्णित किये

१ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ६१ ।

२ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १७ तैपमुत्तरोत्तरीयो गरीयान् इति श्यामदेव ।

(१) काव्यविद्यास्नातक, (२) हृदयकवि, (३) ग्रन्थापदेरी, (४) (५) गेवित्ता, (५) घटनात्, (६) महाकवि, (७) कविदाज (८) श्रावैशिक, (९) श्रविच्छेदी तथा (१०) सभामयिता ।

जो व्यक्ति कवित्व की कामना से काव्य की विद्याओं तथा उप-विद्याओं के ग्रहण करने के लिए गुरुकुल में जाकर निवास करता है, वही काव्य-विद्या-स्नातक है । (२) जो हृदय में ही कविता को छिपाये रहता है, वह हृदयकवि है । (३) स्वयं कविता करने के पश्चात् दोष के भय के कारण उसे दूर से की रचना रहकर उसका प्रचार करता है वह ग्रन्थापदेरी कवि है । (४) प्राचीन या पूर्ववर्ती कवियों की छाया को ग्रहण कर रचना करने वाला सेवित्ता कवि है । (५) जो मुक्तक काव्य की रचना कर सकता है प्रबन्ध की नहीं, यह घटनात् कवि कहलाता है । (६) प्रबन्ध-काव्य की रचना करने वाला महाकवि तथा (७) मय प्रकार की भाषाओं में विभिन्न रसों का आविष्कार करने में समर्थ कवि राजपद का अधिकारी होता है । (८) मन्त्र तन्त्रों की उपासना में काव्य में मिथि पाने वाला कवि श्रावैशिक कहलाता है । (९) जो इच्छा होते ही बिना किसी अवरोध के रचना करता है, उसे श्रविच्छेदी कवि कहते हैं । (१०) जो नाम मिथिमन्त्र लेकर मन्त्र के वक्त पर कथा या कुमारी के पारस्वती का सननप करता है उसे सभामयिता कहते हैं ।

कवि की इन दस अवस्थाओं में प्रथम सात कवि के क्रमिक विकास की धोतरु है । आठवीं तथा दसवीं अवस्था वा सम्पन्न प्रौढशैलिक कवि से है ।

काव्य-कला के साधकों की मनोवृत्ति भी कवियों के काव्यमयों का आधार बन सकती है । कुछ कवि एकाग्र चित्त में, भूमिगृह में बैठकर काव्य रचना में प्रवृत्त होते हैं । उन्हें धनूर्यपग्य कवि कहते हैं । कुछ प्रगय जाने पर ही काव्य रचना करने हैं ऐसे कवि निष्पण्य कहलाते हैं । कविपय अन्य कर्मों से निवृत्त होने पर रचना करने हैं उन्हें दत्तप्रसर कवि कहा जाता है । किसी विशेष प्रयोजन में काव्य-गुजन करने वाले की प्रायोजनिक मजा है ।

राजशेखरुन कवि का वर्गीकरण, उनके द्वारा वर्णित कवियों की दस अवस्थाओं उनकी मूल्य निरीक्षण शक्ति एवं परिणत्य की परिचायिका है । उन्होंने कवियों के भेदोपभेदों का जो वर्णन किया है वह उनकी मौलिकता का प्रमाण है । काव्य के प्रतस्थान तक पहुँचकर कवियों की मनोवृत्ति की मूल्य ध्यायता उनकी विरनेपण शक्ति को सूचित करता है । उन्होंने कवियों के सम्पन्न प्रकारों की ही विवेचना नहीं की शक्ति निष्ठ देगोय कवियों को

वाक्यशास्त्र-प्रणाली का भी विवेचन किया है। उन्होंने काव्यमीमांसा में कविवर्षा का जो विस्तारपूर्वक विवरण किया है, उगते प्रतीत होता है कि वे केवल कवि ही नहीं थे, कवियों के श्रेष्ठ मार्ग-दर्शक भी थे।

भावक : राजशेखर ने प्रायोजक या समीक्षा के लिए 'भावक' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है (भावयतीति भावकः) कवि के धर्म तथा अभिप्राय की भावना करने वाला। द्विप्रतिप्रतिभा में से भावयित्री प्रतिभा भावक की उत्सर्गिणी होती है। कवि का काव्यतर इसी प्रतिभा के वर पर पलित होता है।

भावक-भेद : राजशेखर ने भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भावकों के तीन भेद बताये हैं।^१ ये हैं—वाग्भावर, हृदय-भावक तथा अनुभाव भावक। कानी द्वारा भाव प्राप्त करने वाला वाग्-भावक कहलाता है। वाक्यान्वादन या वाक्यपरीक्षण करने के पश्चात् भी जो अपने भावों को हृदय में ही रखा है उसे हृदय-भावक कहते हैं। अनुभाव-भावक काव्य की श्रेष्ठता या घमणता को गान्धिव्य एवं प्राणिक भावों द्वारा प्राप्त करता है।^२ इन तीन भेदों के प्रतिरिक्त भी राजशेखर ने भावकों की अन्य चार कोटियाँ वर्णित की हैं—परोचरी, सनूणाम्यविहारी, मलगरी तथा तन्वाभिनवेणी। अरोचकी तथा सनूणाम्यवहारी भावक—कोटियों का उल्लेख राजशेखर के पूर्ववर्ती आचार्य भगवत ने भी किया है। इन्हीं दो को वासत^३ ने कवियों में परिगणित किया है।

राजशेखर का कथन है कि अरोचकी भावक उत्कृष्टतम रचना के प्रति भी अरुचि व्यक्त करते हैं। उनकी यह अरोचकता दो प्रकार की होती है—स्वाभाविकी एवं ज्ञानयोनि। स्वाभाविक अरुचि सँकड़ों सस्वारों से भी दूर नहीं हो सकती। जिम प्रकार अनेकों सस्वारों के पश्चात् भी रागों की कालिमा नहीं मिट सकती। ज्ञानजन्य अरुचि के विषय में विञ्चित आशा दिखाई देती है क्योंकि उसमें विशिष्ट ज्ञेय वचनों से प्रभावित होने की उसमें संभावना रहती है।^४ सनूणाम्यवहारी

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—भावकस्योपनुवर्षणा भावयित्री। सा हि कवे धर्ममभिप्राय च भावयति। तथा खलु पलित कवेव्यभिगतम्।

२ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—वाग्भावरको भवेत्कश्चित्त्वत्तद्भ्रहृदयभावकः। सात्विकैरादिकैः परिचिन्नुभा वैश्व भावकः।

३ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—ते च द्विधा अरोचकिनः सनूणाम्यवहारिणश्च इति भगवतः।

४ काव्यलकारसूत्र—वासत—१, २—इह खलु द्वे कवयः सम्भवन्ति। परोच-विजः सनूणाम्यवहारिणश्चेति।

भावक भाधारण कोटि का बहूँ जा सरता है । प्रतिभा एवं विवेक ने होन होने के कारण उममे गृण और दोष को पहचानने की क्षमता नहीं होगी । अतः अनेक अनुपयुक्त तत्वों का ग्रहण तथा उपादियों का रपाग उमके लिए सामान्य बान होगी है । विवेक का उदय होने ही वृद्धि का परिष्कृत होना प्रारम्भ हो जाता है तथा वह कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करती है । तीमरे प्रकार का भावरु मत्परी है । शोभनीय से शोभनीय काव्य भी उमं नहीं सुझता । दूसरे के गुणों का वर्णन करने में उमकी वाणी कुण्ठित हो जाती है । तत्त्वामिन्वेणी भावरु हजारी में एक होता है । यह काव्य रचना के परिधम को जानता है, कव्यो की रचना-विधि को भलीभांति पहचानता है, सुन्दर उक्तिपों में ग्रन्हादित होता है और काव्य के तालार्य को भलीभांति भमजता है । सचमुच ऐसा आलोचक बड़े ही पृथक् प्रभाव से मिलता है ।^१ भावरु की महता नविगण ही जानने हैं, अतः भावरु काव्यसौन्दर्य का ग्रहण कर दिग्दिबन्त में उमका प्रचार करता है । पुस्तकविन्वस्त वाध्यबन्ध घर-घर में मिल सकते हैं किन्तु सच्चा काव्य वही है जो भावरु के हृदयपट पर अक्षित हो जाय । भावरु कवि का स्वामी, मित्र, मत्री, शिष्य, प्राचार्य सभी होने की क्षमता रखता है । काव्य का रस-ग्रहण करते समय उसके चेहरे पर जो धर्मीय भाव मुद्रित होते हैं, उनका अनुभव करने में मूर्ष्टिकर्ता ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है ।^२

कवि और भावरु . कवि का सम्बन्ध नारयित्री तथा भावरु का भावमित्री प्रतिभा से है, तथापि दोनों प्रकार की प्रतिभा का निवास एक ही व्यक्ति में हो सकता है या नहीं ? इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद दिखाई देता है । राजशेखर में प्राचीन प्राचार्यों का मत उद्धृत किया है जो कवि और भावरु की एकता पर विश्वास रखते हैं ।^३ वे (प्राचार्य) कहते हैं कि कवि ही भावनासभ्रम है और

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—शब्दाना विविनविन गुणनविधीनाभोदो नूक्तिभि । सान्द्र लेडि रमाभूनाविचिनुतेतात्पर्यमुद्रा न य । पुष्य गघटते विनेरतुविरहादन्तार्मुय ताम्यता । केषामेव वदार्चिदेव मुधिया काव्यश्रमज्ञो जनः ।

२ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—नीयमे भावरुकेस्य न विवन्धा दिगो रगा सन्ति पुमकविन्वस्ता वाध्यबन्धा वृहे-गृहे । द्विदास्तु भावरुमत मित्ता-पट्टतिवृष्टिता । स्वान्दामी मित्र च मत्री च शिष्यप्राचार्य एव च । कषेभैर्वैत हि चित्र हि हि तद्यन् भावरु । सन्ताव्ये विनिया करिचद्-भावरुस्योन्समन्ति ता । सर्वाभिनयनिर्णीतो दृष्टा नाट्यमुजा न य ।

३ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—व पुनरभयोमेदो यत्कविर्भविषति भावरुकर च इत्याचार्या ।

भावक ही काव्य को सफल बनाते हैं । अतः भावयित्री प्रतिभा से युक्त कवि कभी भी अधमदशा प्राप्त नहीं कर सकता—

प्रतिभाहारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भूरिधा
भावकस्तु कविप्रायो न भजत्प्रथमा दशाम् ।^१

कवि कुलपुरु वासिदाम की अनुभूति इन आचार्यों के मत के तिलान्त विरहीत है । वे कवित्व और भावकत्व का दान एक ही व्यक्ति में मानने के पक्ष में नहीं हैं ।^२ उन्होंने कहा है—

तमन्त. श्रोतुमर्हन्ति मद सद्ब्यक्तिहेतवः^३

उनके विचार से सद् और असद् काव्य की अभिव्यक्ति के उत्तरदायी सत् ही होते हैं—

एक सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षामोज्य ।^४

एक पत्थर सुवर्ण उत्पन्न करता है और दूसरा उसकी परीक्षा करता है । इसी प्रकार एक वचन-रचना में समर्थ होता है तो दूसरा कविता के गुणदोषों की विवेचना में ।

आचार्य राजशेखर वासिदास के विचारों से पूर्णतया सहमत है । वे कहते हैं कि स्वरूप-भेद तथा विषय-भेद होने से भावकत्व भिन्न है, कवित्व से पूर्वक है ।^५ अतः वे एक व्यक्ति में उभयमुखी कवित्व और भावकत्व-प्रतिभा का निवास अस्वीकार नहीं करते ।

काव्य पाक : राजशेखर के कथनानुसार निरन्तर अभ्यास से सुकवि का वाक्य परिपक्वता को प्राप्त करता है । इसे ही काव्य-पाक कहते हैं ।^६ पूर्वचार्य मंगल के मत को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा है कि भगल की सम्मति में 'सुपा तिङ्गा च श्रवेण एषा व्युत्पत्ति अर्थात् सुप् और तिङ्ग के परिज्ञान से परिपक्वता आती है, इसे व्युत्पत्ति भी कहते हैं । आचार्यों का मत है कि पदनिवेशनिष्पन्ना ही पाक-संज्ञा धारण कर सकती है । इस सदर्थ में यावावरीष ने आचार्य वामन के

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ १३ । २. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४ ।

३. रघुवश १ १३ ।

४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४ ।

५. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३ ।

६. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—सततमभ्यासवशत सुकवे वाक्य पाकमाप्ति ।

मत का उल्लेख किया है । वामन ने पदपरिवृत्ति असहिष्णुता को शब्दपाक कहा है ।^१ राजशेखर की पत्नी अश्वत्थिसुन्दरी वामन के कथन की मानने के पक्ष में नहीं है । राजशेखर ने उनके मत का भी उल्लेख किया है । वे कहती हैं कि यह पाक नहीं, अपितु कवि की अशक्ति है, क्योंकि महाकवियों द्वारा एक ही वस्तु के विभिन्न शब्दों द्वारा किये गये वर्णन परिपक्व होने हैं । इत्यदि स्मानुरूप शब्दार्थों में की गयी पद-रचना ही पाक है । "इयमशक्तिर्न पुन पाक इत्यवन्ति मुन्दरी ।"^२ आचार्य राजशेखर अश्वत्थिसुन्दरी के कथन से सहमत हैं किन्तु पाक के निर्णय का कार्य वे सहृदय आलोचकों को सौंप देना चाहते हैं । उनका कथन है कि जहाँ पदों के परिवर्तन की आवश्यकता हो वह शब्दपाकवाला काव्य है । जहाँ रग आनन्द और गुणों का सुन्दर प्रेम हो वह वाक्य-पाक है । काव्यपाक का लक्षण देने के उपरान्त उन्होंने उसे ९ भेदों में विभक्त किया है । ये नमस्त भेद ग्राह्य नहीं हैं । अतः सरसता के द्वा द्वार पर इन ९ भेदों को नीचे भागों में रख सकते हैं—

मधुर या सरस	सरस-नीरस	नीरस
ध्व्दीका	वदर	विचुमन्द
महृकार	तिन्तिडीक	वार्ताक
नारिकेल	जमुय	शमुज

स्पष्ट है कि नीरस होने के कारण विचुमन्द, वार्ताक और शमुज पाक संबंधी त्याग्य हैं । वदर, तिन्तिडीक और जमुय मध्यम होने के कारण सरसता द्वारा परिष्कारित किये जा सकते हैं । ध्व्दीका, महृकार और नारिकेल पाक-मधुर या सरस होने के कारण ग्राह्य हैं । आचार्य भासह और वामन ने भी पाक को दो भागों में विभक्त किया है—सरस और नीरस के कथन पर वे हृद्य और ग्रहृद्य का प्रयोग करते हैं । अपित्यपाक को वे ग्रहृद्य मानते हैं । वामन महृकार पाक को श्लाघ्य एवं वार्ताक को ग्रहृणीय बताते हैं ।

राजशेखर प्रथम आलोचक हैं जिन्होंने काव्य-पाक की इतनी विस्तृत रूप में चर्चा की है ।

१. काव्यमीमांसा प्र० १ पृ० २०—पापहरिश्चंद्रादि पश्यैवैवपाकमाय-
स्त्वयान्तरात्ता परिपुल्लिखैमूय पाक : इति वामनीया ।

२. काव्यमीमांसा प्र० १ पृ० २०—इयमशक्तिर्न पुन पाक इत्यवन्तिमुन्दरी ।
यन्तिन्तिन्ति महाकवी नामनेचोदिरि पाक परिष्कारमायवति । नमस्त-
शोविताचार्य—शक्तिविग्रहण पाक ।



काव्य-हरण : काव्य की चोरी को काव्यहरण कहते हैं । कहा गया है—
 'नास्त्यचोर कविजनो नास्त्यचोरो वणिग्जन.

स नन्दति विना वाच्य यो जानाति निमूहितुम् ।^१

काव्य-रचना करने वाले कवि और त्रय-विक्रय करने वाले व्यापारी—ये दोनों चोर न हों—ऐसा समभव नहीं है । इन सब में चौर्यवृत्ति न्यूनतम मात्रा में पायी जाती है, किन्तु जो चोरी की वस्तु पर स्वप्रतिभा की छाप लगाकर उसे स्वरचित प्रमाणित करने में ममर्य हो, वही प्रशसनीय है । दूररे की काव्य-रचना में प्रयुक्त किये गये शब्दों या अर्थों को अपनी रचना में प्रयुक्त करने का नाम 'हरण' है । कतिपय विद्वान् हरण को प्राह्य मानते हैं और कतिपय त्याग्य । स्वयं राजशेखर की विदुषी पत्नी का मत है कि काव्य-रचना के मौन्दर्य एवं प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए कवि द्वारा शब्दहरण और अर्थहरण उचित है । उम कवि के पद, शब्द या अर्थ का हरण ग्राह्य है जो अप्रसिद्ध या अप्रतिष्ठित हो, दूसरी भाषा का हो या दूररे देश का निवासी हो, जिसकी काव्य रचना अधिक सरल न हो या जिसके काव्य को जानने वाले सभी मर गये हो अथवा जिसके काव्य का मूल नष्ट हो गया हो । राजशेखर अवनतिमुन्दरी से, सहमत नहीं हैं ।^२ श्लेषमहित तीन पदों तक के हरण को मान्यता देने वाले आचार्यों के प्रति असम्मति प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि यदि पद दो अर्थों वाला हो तो उसे प्रयोग करने में दोष नहीं है, परन्तु द्व्यर्थक पद को छोड़कर अन्य पद का हरण करना उचित नहीं । राजशेखर ने शब्द हरण के पाँच भेद बतलाये हैं—

(१) पदहरण, (२) पादहरण, (३) अन्तःकण्ठहरण, (४) वृत्तहरण तथा (५) प्रबन्धहरण ।

राजशेखर के अनुसार पद यदि दो अर्थोंवाला हो तो उसका हरण उचित है, अन्यथा नहीं । उदाहरणार्थ—

दूरादृष्टगिलीमुखव्यतिरान्तो कि किरातानिमा

नाराद्व्याधुतपीतलोहितमुग्गान्कि या पलाशानरि ।

१ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ६३ ।

२ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५७—प्रथमप्रसिद्ध प्रतिधिमानहम्, प्रथम-प्रतिष्ठ. प्रतिष्ठावानहम्, अप्रसिद्धमिदमस्य सविधानक प्रसिद्ध मम, गुडुधी वचनोऽयं, मूर्ध्निवाचनोऽहम्, अनाहृतभाषाविशेषोऽयमहमाहृत-भाषाविशेषः, प्रसिद्धमिदमिदं, देशान्तरिकतार्तमिदं उच्छ्रान्तिकथन मूलमिदं, म्लेच्छित्तकोऽनिकथनमूलमिदमित्येवमादिभिः कारणैः शब्दहरणं अर्थहरणं चाभिरभेत् इति अवनतिमुन्दरी ।

पाण्याः केसरिण न पश्यत पुरोप्येन वसन्त वने
मुदा रत्न जीवितानि गरणं यात प्रिया देववान् ।^१

अर्थ है पहिलो ! जिन्होंने शिवीमुखी (बाणो और शमरो) के समूहों को दूर
8 ही खींच रखा है—ऐसे इन किरानों (भीनों और पूने हुए चिरायतों) को क्या
तुम नहीं देख रहे हो ? तथा उन पत्ताओं (पत्ताशू वृक्ष और राशमों) को भी नहीं
देख रहे हो जिन्होंने अपने मुखों की पीतिका और लालिका प्रकट कर दी है ।
फिर क्या तुम गामने ही वन के छोटे केसरी (नागकेसर और सिंह) को भी नहीं देख
रहे हो ? हे मूर्खों ! अपने-अपने प्राणों की रक्षा करो और अपनी प्रिय (दृष्ट
प्रिया) देवता की शरण में जाओ ।)

इस श्लोक में शिवीमुख शब्द बाण और शमरो के लिए, किरान शब्द भीनों
और चिरायता के वृक्ष के लिए, पत्ताशू शब्द पत्ताशूवृक्ष और राशमों के लिए,
केसरी शब्द नागकेसर और सिंह के लिए तथा प्रिय शब्द दृष्ट और प्रिया के लिए
प्रयुक्त है । निम्नलिखित श्लोकों के निर्माता कवि ने उक्त चार शिष्ट पदों में ही
शिवीमुख और किरान इन दो पदों का हरण किया है—

या वा पाण्य प्रिया त्यक्त्वा दूरगृष्टशिवीमुखम् ।
शिव्य पाण्वाशमाक्षुष किं किरान न पश्यति ।^२

हे पहिले ! तुम अपनी प्रिया को छोड़कर नहीं न जाओ । क्या तुम शिवीमुखों
(बाणों और शमरों) को दूरगृष्ट करों तथा गामने को छोड़कर गड़े हुए इन किरानों
(भीनों और चिरायतों के वृक्षों) को नहीं देख रहे हो ? शिवीमुख और किरान
इन दो पदों का हरण होने के कारण यह हरण स्वाभाव्य है ।

राजरोत्तर ने शिष्ट पद के एक देश के हरण की भावना दी है ।

नामधेय महाभारतगत धम्मभीतिरस्य सति ।

सामोहायोगे सुर्वीर कच्छुभ्रुवृत्तितो जन ।^३

अर्थ है सुष्ठु कश्चित् के साथ नामधेय हो जाने के कारण उक्त महाभारत
कथा छोड़ दिया, इसमें नामधेय ही क्या ? सुधा ने कश्चित् धर्मिता संग का
उपयोग क्यों किया ?)

यहाँ सुष्ठु पद शिष्ट है । सुष्ठु—इसने दो कथें हैं । परन्तु धर्मिता
का निर्देश इस धर्म की धर्मिता कथा है (सुष्ठुय शिव शिष्टः) तथा दूरगत

१. वाण्यभीमाया घ० ११ पृ० २६ ।

२. वाण्यभीमाया घ० ११ पृ० २६ ।

३. वाण्यभीमाया घ० ११ पृ० २६ ।

क्षुद्र-रहित-शुधा से रहित अर्थ को व्यक्त करता है। उसी प्रकार मानोपयोग पद श्लेष युक्त है। मानोपयोग (माम् सोपयोग का अर्थ है मेरे लिए उपयोग) तथा सधियक्त मानोपयोग शब्द का अर्थ है मास का उपयोग। उक्त श्लोक में दूसरे कवि ने मासोपयोग में से केवल मास शब्द ग्रहण किया है—

कोपान्मानिति कि स्फुरत्यतितरा शोभाघरस्तेऽधरः
कि वां शुभ्यनकारणादयित नो दार्थोविकारादयम् ।
तस्मात्सुमु सुगन्धिमाहितरस रिनग्ध मजस्वादरा-
न्मुग्धे मासरसं ध्रुवत्रिति तथा बाढ समात्तिद्वित ।^१

अतः यह हरण ग्राह्य है।

राजशेखर ने यमक अलंकार द्वारा पूरे श्लेषयुक्त पाद के हरण को भी हरण का एक भेद माना है—यथा

हलमपारपयोनिधिबिस्तृत
प्रहरता हतिना ममराङ्गणे ।
निदयशश्च शशाङ्कखामल
निरवधीरितमाकुलमानुरम् ॥^२

इस उदाहरण में 'निरवधीरितमाकुलमानुरम्' पद व्याकुल दैत्य सेना को मर्यादा से च्युत करने या कौपा देने के अर्थ से प्रयुक्त है। अन्य कवि ने इस पद के द्वारा यमक अलंकार की सृष्टि की है—

दलयता विशिखैर्वेलमुन्मद
निरवधीरितमाकुलमानुरम् ।
दशगु दिक्षु च तेन बज सिता
निरवधीरितमाकुलमानुरम् ॥^३

श्लोक के द्वितीय तथा त्रुथं चरण में प्रथम श्लोक के 'निरवधीरितमाकुलमानुरम्' पाद का यमकस्वरूपेण हरण है। इसी प्रकार—

यस्या मुजङ्गवर्गं कर्णयित्तेक्षणम् कामिनीवदन च ।^४

चरण के 'कर्णयित्तेक्षणम्' पाद का हरण अन्य कवि ने अपने इस श्लोक में किया है।

किं करोतिविश्वकालं केशयावेशमनि कामुक

बीदृशं वदन वीक्ष्य तस्याः कर्णयित्तेक्षणम् ॥^५

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ । २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ ।

३. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ । ४-५. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५७ ।

श्रवण-मात्र से कर्ता का स्मरण हो जाय) पाद वा ही नहीं पादका हरण भी उचित है ।^१ भारविक के किरातार्जुनीय के तीमरे सर्ग का दसवाँ श्लोक—
‘इत्युक्तवानुक्ति विगोपरम्भम्’ पदावली से प्रारम्भ होता है । यह श्लोक इतना प्रसिद्ध है कि अन्य कवि अपने श्लोक में इस समूचे पाद का हरण कर ले तो कोई भी बता सकेगा कि पादहरण कहीं से किया गया है, अथ इस हरण नहीं वह सचने । किन्तु जहाँ कवि-प्रतिभा का ध्यय हो, ऐसे उल्लेखनीय पद का हरण रहित कहलायेगा । यथा—

नम सप्तारनिर्वाण विषामृतविधापिने ।

सप्तलोकौर्भ्रमद्वाय, शकरद्वीपरसिन्धवे ॥^२

इस श्लोक में शंकर को क्षीरसागर कहा है तथा उन्हें समारन्धी विष और मोक्षपी अमृत का जनक माना है । इसे दूसरे कवि ने अपने निम्न श्लोक में अपने नाम से प्रकाशित किया है—

प्रसरद्विन्दुनादाय शुद्धामृतमवात्मने ।

रमोऽनन्तप्रकाशाय शकरक्षीरसिन्धवे ॥^३

यहाँ श्लोक के ‘शकरक्षीरसिन्धवे’ पद का हरण किया गया है । यह सर्वथा अनुचित है, क्योंकि पहले श्लोक के निर्माण में कवि की प्रतिभा का ध्यय हुआ है ।

श्लेषियों का कथन है कि किसी श्लोक में यदि किसी एक पाद के ही विरहीत पद का कारण बताकर ग्रहण किया जाय तो वह हरण नहीं अपितु स्वीकरण कहलायेगा ।^४

त्यागाधिवा. स्वर्गमुपाश्रयन्ते

त्यागेन हीना नरकं व्रजन्ति ।

न त्यागिता किंचिद्गमाध्यमस्मि

त्यागो हि सर्वव्यमभानि हन्ति ॥^५

अपने उच्चतम स्वाम के कारण उन्मूढ व्यक्ति, स्वर्ग को प्राप्त करने हैं और त्यागहीन व्यक्ति नरक को जाते हैं । त्यागियों के लिए गमाध्य कुछ भी नहीं है । त्याग से सभी प्रकार के कष्ट दूर होते हैं ।

१. वाच्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ । २. वाच्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ ।

३. वाच्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ । ४. वाच्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ ।

५. वाच्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ ।

उपर्युक्त श्लोक के 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण को अन्य कवि ने ग्रहण किया है किन्तु विपरीत बनाकर—

त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ती-
त्यलीकमेतद् भुवि सम्प्रतीतम् ।
जातानि सर्वव्यसना नि तस्या
स्वरागेन मे मुग्धबिलोचनाया ॥१

यहाँ 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण विपरीत अर्थ का साधक है । 'त्याग सब कष्टों को दूर करता है, यह बात लोक में मिथ्या हो चुकी है । क्योंकि उम सरण नेत्रोवासी प्रियतमा ने त्याग में ही तो मुझे सारे कष्ट झेलने पड़े रहे हैं ।' आचार्य इस प्रकार के हरण को पाह्य मानते हैं ।

अर्थ-प्रयोग द्वारा हरण : राजशेखर इस कथन से सहमत नहीं हैं, उन्होंने इसे भी हरण की कोटि में रखा है । इस हरण के उन्होंने कनिष्ठ भेद बतावाये हैं ।

{ पादन्ते नरवर दक्षिणे समुद्रे
पादोऽप्यो हिमवति हेमकूटलग्ने
{ आशामत्यलघु महीनल त्वयीत्य
भूपालाः प्रणतिमपास्य किन्तु कुरु
आशामत्यलघु महीनल त्वयीत्य
भूपालाः प्रणतिमपास्य किन्तु कुरु
{ इत्येते विपतपदद्वयस्य राज-
आशुर्कर्म कचमिव सीधनी न निष्ठा

नमे पूर्व श्लोक के उत्तरार्द्ध का हरण किया गया है ।

(२) अस्त-व्यस्त रूप से हरण :

तत्तावदेव शशिन स्फुटित महीयो
यावन्न तिग्मश्चिमण्डलभम्बुदेति ।
यावन्नविचिदनि यौरत राहमन्ति
शम्बुद्गते सवनघामनिघातु
तस्मिन्नात्ताभि पुनर्विहसताननपत्रजाभि ।
दन्दो मिताभ्ररत्नस्य च को विक्षेप ।

यहाँ पहले श्लोक के प्रथम और चतुर्थ पाद का हरण किया है ।

(३) एक ही पाद में परिपूर्ण शरके झूठे छन्द का निर्माण भी हरण अन्तर्गत है—

अरण्ये निर्जने रात्रावन्नर्षमनि माहमे
न्यामापह्वने चैव दिव्या मग्भवति त्रिया ॥

निम्न श्लोकार्थ में ऊपर के उत्तरार्थ का हरण क्रिया गया है—

तन्वद्गी यदि लभ्येत दिव्या सम्भवति त्रिया ।

(४) पादत्रय का हरण : इसमें तीन पाद यथास्थान रखकर एक पाद को हटाकर एक नया पाद जोड़ दिया जाता है यथा—

यस्य केरीषु जीभूता नद्य सर्वाङ्गसन्धिषु ।

कुशा समुद्राश्चत्वारस्मिन्मै तोरपान्मनेनम् ॥

इस श्लोक के तीन पाद लेकर—

यस्य केरीषु जीभूता नद्य सर्वाङ्ग सन्धिषु ।

कुशा समुद्राश्चत्वार स सहेत स्मरानलम् ॥

इस श्लोक की रचना की गई है । इसमें तस्य तोरपान्मने नम षष्ठ पद को हटाकर और स सहेत स्मरानलम् यह एक पद जोड़ दिया गया है ।

हरण में भी कवित्वः—

किमिह किमपि दृष्टं स्यान्नमस्ति श्रुतं वा
अजति दिनकरोऽप्य यत्र नास्तं कदाचित्
अमनि बिहगसार्पानित्यमा पृच्छमानो
रजनिविरहभीतश्चन्द्रवाको वराक्ष ॥१॥

जयति मितबिलोलव्यालयजो पवीती ।
घनकपिल अटान्तभ्रान्तगगाजनीध
अविदित मृगचिन्हा मिन्दुतेषा दधान
परिणतशितिकण्ठश्यामकण्ठ पिनाकी ॥२॥

कुमुदवनमर्षाथ श्रीभदभ्रमोजखण्ड
त्यजति मदमुलूकः प्रीतिमाश्चत्रवाक
उदयमहिमरश्मिर्माति शीताशुरस्त
हृत्विधिललितानां हि विचित्रो विपाकः ॥३॥

किमिह किमपि दृष्टं स्यान्नमस्ति श्रुतं वा
घनकपिल अटान्तभ्रान्तगगाजनीध ।
निवसति स पिनाकी यत्र याया तदस्मिन्
हृत्विधिललितानां हि विचित्रो विपाकः ॥४॥

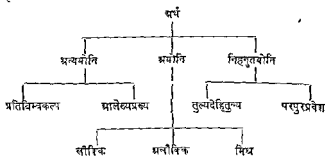
यहाँ कवि ने चौथे उदाहरण में प्रथम श्लोक का प्रथम, दूसरे का दूसरा, तीसरे का चौथा चरण लिया है। केवल तीसरा चरण निजी प्रतिभा से निर्मित किया है। अतः यह हरण नहीं कवित्व है।

(२) या व्यापारवती रसान् रसयितु कावित्कवीना नवा
दृष्टिर्वा परिनिष्टिद्वार्यविषयोन्मेपा च वैपम्बिती
ते द्वे अप्पबलम्ब्य विस्वमनिश निर्वर्णयन्तो वयं
श्रान्ता नैन च लब्धमन्त्रिहापन त्वद्भक्तिगुण्य मुखम् ।
लब्धमुत्पलदृशा प्रेम्णा ममान मुखम्,
अन्विशयन, द्त्वभक्तिगुण्यमुखम् के स्थान पर उत्पलदृशा प्रेम्णा ममान
मुखम् जोड़ देने से यह भक्ति रसात्मक रचना शृंगारमयी हो गयी है।

(३) अमहकलहसितस्वात्क्षालितानीव कान्त्या
मुनुलिनमनत्वादव्यक्तकर्णोत्पलानि ।
पिवति (पिवतु) मधुसुगन्धीन्यानानि प्रियाणा
त्वयि (मयि) किन्तिहितमार कुन्तनानामधीश ॥

इस श्लोक के तृतीय चरण में पिवति के स्थान पिवतु तथा चतुर्थ चरण में त्वयि के स्थान पर 'मयि' कर देने से श्लोक प्रार्थनापरक हो गया है।

शब्दहरण की विवेचना करने के पश्चात् आचार्य अर्थहरण के भेद बतलाते हैं—



धर्म तीन भागों में बटा है। अन्ययोनि, निहनुतयोनि तथा अभयोनि—अन्ययोनि तथा निहनुतयोनि। प्रत्येक के दो स्पून भेद हैं, जिन्हें क्रमशः प्रतिविम्बकल्प, आलेख्य-प्रक्य, तुल्यदेहितुल्य एवं परपुरप्रवेश कहा गया है। इन चारों में प्रत्येक के आठ

भेदयुक्त होने के कारण अन्ययोनि तथा निहनुतयोनि अर्थ ३२ उपभेदों में विभक्त दिखाई देता है । निम्नतालिका में ३२ भेदों के नाम दिये हैं—

अर्थ			
अन्ययोनि		निहनुतयोनि	
प्रतिविम्बकल्प	आलेख्यप्रख्य	तुल्यदेहितुल्य	परपुरप्रवेश
व्यस्तक	समक्रम	विपयपरिवर्त	हुड़युद्ध
खण्ड	विभूषणभोष	द्वन्द्वविच्छिति	प्रतिकञ्चुक
तैलविन्दु	व्युत्क्रम	रत्नमाला	बभ्रुसंचार
नटनेपथ्य	विशेशोक्ति	सखदोल्लेख	धातुवाद्य
छन्दोविनिमय	उत्तस	चुलिका	सत्कार
हेतुव्यत्यय	नटनेपथ्य	विधानापहार	जीवजीवक
सक्रान्तक	एकपरिकार्य	माणिक्यपुञ्ज	भावमुद्रा
सम्पुट	प्रत्यापत्ति	कन्द	तद्विरोधी

अन्योन्ययोनि के प्रथम भेद, प्रतिविम्बकल्प का लक्षण है—

अर्थस एव सर्वो वाक्यान्ताविरचनापर यत्र
तदपरमार्थविभेद काव्य प्रतिविम्बकल्प स्यात् ॥^१

जिस रचना में किसी प्राचीन कवि का सारा अर्थ ले लिया गया हो । भेद केवल वाक्य विन्यास में हो, कोई तात्त्विक-भेद न हो उसे प्रतिविम्बकल्प कहते हैं ।

दूसरे काव्य का प्रतिविम्ब होने से यह हरण सर्वथा त्याज्य है । इसके घाट भेद हैं—

- (१) जिसमें पूर्व श्लोक के क्रम को बदल लिया जाय, अथवा श्लोक के पौरुषपर्यं का विपर्यय कर दिया जाय उसे व्यस्तक कहते हैं ।
- (२) विस्तृत अर्थ के खण्ड का प्रलयन खण्ड माना जाता है ।
- (३) सक्षिप्त अर्थ को विस्तारपूर्वक वर्णित करना तैलविन्दु है ।
- (४) दूसरी भाषा की रचना का भाषान्तर करना नटनेपथ्य प्रकार कहा जाता है ।

- (५) छन्द को परिवृत्ति छन्दोविनिमय भेद का निर्माण करती है ।
 (६) कारण की परावृत्ति का ही नामान्तर हेतु-अत्यय है ।
 (७) दृष्टि पदार्थ के धर्मों का दूसरे पदार्थ में मन्त्रमण सवान्तक है ।
 (८) दो पद्यों का अर्थ जहाँ मिश्रित किया जाय वह मन्त्रान्तक कहलाता है ।

अन्ययोगि अर्थ का दूसरा भेद आने-अवप्रकथ है । यह प्राचीन काव्य में भिन्न न होने पर भी अनेक नवीन सामग्री से सम्बन्ध युक्त होने के कारण ब्राह्म है यथा—

कियतापि मन्त्र मस्कारकर्मणा वस्तु भिन्नश्च भाति

तत कथितमर्थचतुरैरालेख्यप्रव्यमिति काव्यम् ।^१

जहाँ प्राचीन ऋषि द्वारा प्रयुक्त वस्तु कुछ स्वरूप कर देने में भिन्न प्रतीत हो उसे आने-अवप्रकथ कहते हैं । इस आने-अवप्रकथ के भी आठ भेद हैं—(१) सदृश्य उच्चारण समकर्म कहलाता है, (२) अलकृत उक्ति को अलकृत कर वर्णित करना विभूषणमोप है, (३) ऋम को विपरीत कर वर्णन करना व्युत्क्रम कहलाता है, (४) सामान्य को विशेष रूप में कहना विशेषोक्ति कहलाता है, (५) शीघ्र भाव को प्रधानता में कहना उन्नयभेद है, (६) प्रस्तुत को अन्यथा रूप में कहना नदनेपथ्य है, (७) जो कारण सामग्री प्राचीन उक्ति में कही गई हो उसी सामग्री की किसी भिन्न वाक्य में कहना एकरूपिकार्य है तथा (८) विद्वान् रूप में कही गई बात प्रकृत रूप में कहना प्रत्यापनि कहलाता है । ये समस्त भेद अर्थ की समता होने पर भी वैचित्र्य उत्पन्न करते हैं ।

निहनुतयोगि के दो भेद हैं—तुल्यदेहिनुत्य तथा परपुरप्रवेश ।

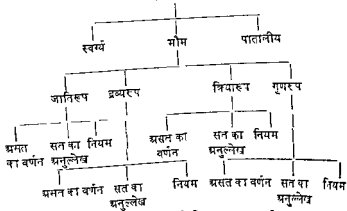
तुल्यदेहिनुत्य वह भेद है जिसमें शरीर की पृथक्ता होने पर भी दोनों उक्तिपों की आत्मा एक समान ही रहती है । इसके भेद निम्न हैं—

(१) विषय में विषयान्तर मिलाकर उसका स्वरूपान्तर कर देना विषयपरिवर्तन, (२) दो प्रकार में किये गये अर्थों को एक रूप में ही कहना इन्द्रविच्छिन्नि, (३) पूर्व अर्थों का अर्थान्तरों के द्वारा परिवर्तन रत्नमाला, (४) सक्षमा वैषम्य के द्वारा अर्थों का प्रणयन सन्धोत्तेज, (५) सम या विरम द्वारा अर्थों का विरम या सम द्वारा वर्णन शूलिका, (६) निषेध का विधि रूप में वर्णन विधानापहार (७) बहुत अर्थों का एकत्र उन्नयनार्थ माणिक्यपुञ्ज तथा मनाष्टि वा व्यष्टि रूप में वर्णन करना बन्द कहलाता है ।

काव्यालंकारसूत्र में पाया जाता है जिसमें पुनरुक्ति, परित्याग, सन्धिनिवृत्तता, लघु-गुरु भाव, पादादि में खलु आदि का निषेध, बहुव्रीहिपरक कर्मधारय का निषेध, नञ् का प्रयोग, विशेषण का प्रयोग, सर्वनाम में समानगत का परामर्श परम्परा-मवधपरक पठ्ठी, देशज पदों का प्रयोग, प्रचलित लिङ्ग और अघ्याहार, प्रचलित नाराणिक शब्दों का प्रयोग, लक्षण प्राचुर्य का निषेध एव जाति-व्यक्ति के भेदाभेद का विवेचन किया है। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भामह और दण्डी ने काव्य-ममय का प्रयोग नहीं किया किन्तु आचार्य भामह ने स्पष्ट रूप से दोष प्ररूपण में देश, काल, कला, न्याय और शागम विरोधी तथा प्रतिज्ञा हेतु और दृष्टान्त में हीन वर्णन की दोषों में गणना की है। आचार्य दण्डी ने भी देश-काल-कला-लोक-न्यायगत विरोधी अर्थ को दोष रूप में मान्यता दी है। आचार्य वामन ने लोक-विरुद्ध और विद्या-विरुद्ध वाक्य और वाक्यांश को शुद्ध कहा है। सक्षेप में पूर्ववर्ती आचार्य शास्त्र और लोक से रहित, बातों के उल्लेख को दोष मानते हैं। ऐसी दोषयुक्त वस्तु का उल्लेख वे उचित नहीं समझते थे। पायावरीय राजशेखर कहते हैं कि उनके द्वारा कवियों का उपकार होता है। यह काव्यमार्ग का प्रदर्शक है। अतः यह दोष नहीं है।

कवि-ममय या कवियों का आचार स्थूल रूप में तीन प्रकार का है—

कवि-ममय



भौम कवि-ममय १२ प्रकार का है जिसका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है।

असत् का वर्णन : जो पदार्थशास्त्र में या लोक में देखा या सुना न गया हो काव्य-रचना में उसका उल्लेख करना असत् का निबन्धन है। जाति, द्रव्य, क्रिया और गणानुसार यह चार प्रकार का है।

जातिगत : नदियों में कमल कुमुद आदि का वर्णन, सभी जलाशयों में हम सारस आदि पक्षियों का वर्णन, सभी पर्वतों में सुवर्ण रत्न आदि की खानों का वर्णन जातिगत असत् वर्णन के अन्तर्गत आता है। कालिदास ने मेघदूत में क्षिप्र नदी के प्रवाह में हंस और कमल का वर्णन किया है। कवि-समय के अन्तर्गत ही यह माना जा सकता है अन्यथा नदी प्रवाह में हम कमल आदि कैसे हो सकते हैं।

द्रव्यगत : अन्धेरे को मुष्टि से ग्रहण करने योग्य या सूची से भेदन करने योग्य कहकर वर्णन करना, चाँदनी का घड़ों में भरा जाना आदि द्रव्यगत असत् के वर्णन कवि-समय के अन्तर्गत आते हैं। राजशेखर ने विद्वज्जालभञ्जिका में अन्धकार के सूचिभेद्य होने तथा चन्द्रिका के घड़े में भरने योग्य होने का वर्णन किया है।

रात्रि में चकवा-बकबी का जलाशय के भिन्न-भिन्न तटों पर पृथक् रहना, चकोरो का चन्द्रिकापान करना त्रियागत असत् अर्थ के उदाहरण हैं।

गुणगत : यक्ष का श्वेत एवं अयश का वृष्ण होना, धनुराग की रत्नवर्णना और शोध की श्यामवर्णता गुणगत असत् के उदाहरण हैं।

सत् का अनुल्लेख : लौकिक जगत् में विद्यमान, दृश्य वस्तुओं का कवि जगत् में उल्लेख न करना, सत् का अनुल्लेख कहलाना है। यह भी जाति, द्रव्य, गुण और त्रिया के भेदानुसार चार प्रकार का है—

जातिगत अनुल्लेख : (१) वसन्त में मालती का अनुल्लेख (२) चन्द्र-वृक्ष का पुष्परहित होना, (३) प्रशोरु के फलों का वर्णन न करना आदि।

द्रव्यगत अनुल्लेख : (१) वृष्णपक्ष में चाँदनी का वर्णन न करना, (२) शुक्लपक्ष को अन्धकार हीन बताना आदि।

त्रियागत अनुल्लेख : (१) दिन में कमलों का विभाग न होना, (२) रात्रि में शोफालिका के बुसलों का डाल से न गिरना आदि।

गुणगत अनुल्लेख : (१) पुन्दरिका एवं वापिनियों के दाँवों का रत्नवर्णन, (२) कमल-मन्त्रिका का हरितवर्ण तथा (३) शिवगु पुष्पों का पीतवर्ण आता है।

उपर्युक्त वर्णनों से गद् के अनुल्लेख भी प्रतीति होती है।

नियम : राजशेखर ने कवि-समय का तीव्रता अन्तर्गत "नियम" बताया है। नियम में तात्पर्य है—विगी वस्तु का विगी विशेष स्थान के प्रयोग में ही वर्णन करना। और उगरे अन्धकार स्थानों पर भी उग विनिन्द्य स्थान के प्रयोग

“कवि-नमय” का विवेचन भी इसी प्रमाण में वर्णित है । इस प्रकार कवियों के लिए उपकारक ममस्त विषयो का विवेचन हम ‘कवि शिक्षा सम्प्रदाय’ में उपलब्ध है ।

काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदाय एवं राजशेखर

रस-सम्प्रदाय एवं राजशेखर : नाट्याचार्य भरत रस-सम्प्रदाय के प्रणेता माने जाते हैं । उन्होंने रस को नाटक का प्राण स्वीकार किया है । उनके अनु-सार नाटक का प्रयोजन चार प्रकार के अभिनयों द्वारा प्रेक्षकों में रस उत्पन्न करना है । इस प्रकार भरत ने रस का विवेचन नाटक के सदस्य में ही किया है, प्रमुख विवेच्य के रूप में नहीं ।

आचार्य अभिनव गुप्त भरत से पूर्णतया सहमत हैं । जिस प्रकार माना मूल में पिरोयी रहती है, उसी प्रकार नाट्यकृति रस में अनुविद्ध रहती है ।^१ इस प्रकार भरत और अभिनव गुप्त के रस-सिद्धांत प्रमुखतः नाट्यशास्त्र में और गौण रूप में काव्यशास्त्र से सम्बन्धित हैं ।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा के प्रथम अध्याय में भरत को रूपक-निरूपणकर्ता तथा नन्दिकेश्वर को रस का आद्याचार्य कहा है । नन्दिकेश्वर के नाम में यद्यपि कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, तथापि वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि वे महादेय के अनुयायी थे, तथा उन्होंने एक हजार अध्यायों में कामशास्त्र की रचना की थी । सम्भवतः उन्होंने प्रमुखतः शृंगार रस का ही प्रतिपादन किया होगा, जो आगे चलकर नाट्याचार्य भरत के द्वारा विशेष रूप में विवेचित हुआ ।

आचार्य अभिनव गुप्त ने नन्दिकेश्वर द्वारा वर्णित रोचित अलंकार पर एक पद्य उद्धृत किया है ।^२ शायद उन्हें भी नन्दिकेश्वर की कोई कृति उपलब्ध न हो सकी थी । शारदातन्त्र के भाव-प्रकाशन के तृतीय अध्याय में उल्लेख है कि नन्दिकेश्वर ने भरत को नाट्य की शिक्षा दी और उन्हें आदेश दिया कि वे अन्य भरतों को प्रशिक्षित करें । प्राध्यापक मनमोहन घोष ने अभिनव-दर्पण नामक ग्रन्थ का ३२४ पद्यों में सम्पादन किया । उन्होंने नन्दिकेश्वर को अभिनव दर्पण का रचयिता बताया है । इस ग्रन्थ में भरत के अनेक सिद्धांतों का उल्लेख है । वही-कही भरत से मित्रता भी दिखाई देती है । अतः उल्लेखों के आधार पर यह रचना भरत के पश्चात् प्रतीत होती है । इसी मन्दस्य में भरताण्ड नामक

१ एक एवं तावत्परमार्थतोरस मूलस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति-अभिनव भारती, भाग १ पृष्ठ २७३ ।

२. अभिनवभारती, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज—खण्ड १ पृ० १७१ ।

ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है । जिससे ज्ञात होता है कि सुमति नामक किसी विद्वान ने नन्दिकेश्वर का साराङ्ग लेकर भरतार्णव ग्रन्थ की रचना की थी ।^१ सर्गीन रत्नाकार में नाट्य से संबंधित अनेक देवताओं, मुनियों तथा विद्वानों का उल्लेख है । उनमें नन्दिकेश्वर का नाम भी है ।^२

वात्स्यायन, अभिनव गुप्त एवं श्री० मनमोहन घोष के कथन तथा भरतार्णव एवं संगीत-रत्नाकार के साध्य से नन्दिकेश्वर का आचार्यत्व तथा उनका रमाविष्कृती होना निस्सन्देह सिद्ध होता है । राजशेखर भी नन्दिकेश्वर को आदि रमाचार्य मानते हैं । अतः नन्दिकेश्वर को रत्नाचार्य मानना अभीचीन होगा । दुर्भाग्यवश यह नन्दिकेश्वर का वाक्यशास्त्रीय ग्रन्थ, काल के गतं भे चीन हो गया ।

आचार्य राजशेखर की रग-सिद्धान्त विषयक मान्यतायें अधोलिखित हैं—

- १ रस काव्य की आत्मा है ।
- २ काव्य में सरस भर्ष का निबन्धन होना आवश्यक है, नीरसता नहीं ।
- ३ सरसता या नीरसता वस्तुनिष्ठ नहीं है, व्यक्तिनिष्ठ है ।

वाक्यमीमांसा के कवि-रहस्य अधिकरण के तीसरे अध्याय में राजशेखर ने काव्यपुरुष के सजीव वर्णन के माध्यम से रस को काव्य की आत्मा मिद्ध किया है—‘शब्दाद्यौ ते शरीर, सस्कृतं मुखं, प्राकृतं वाहु, जघनमपभ्रश पैशाच पादौ, उरो मिथम् । सम. प्रसन्नो मधुर भोजस्वीधामि । उक्तिचरण च ते वचो, रस आत्मा, रोमाभि छन्दामि, प्रशोत्तरप्रवर्द्धिषवा दिक् च वाक्केसि अतु-प्रसोपमादयश्च त्वामलकुर्वन्ति ।^३ भविष्यतीर्षस्वामिघाली धुनिरपि भवन्त-मधिस्तौति ।’ राजशेखर से पूर्व भी काव्य की आत्मा का निर्णय अनेक सन्देहायों द्वारा किया गया, किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में मान्यता नहीं दी थी । आचार्य राजशेखर उन आचार्यों में से हैं जिन्होंने काव्य के प्राणविधायक के रूप में रस को अङ्गीकार किया ।

राजशेखर के चार शताब्दी परन्तु कविराज विश्वनाथ ने “वाक्यं रमात्मक काव्यम्” लिखकर राजशेखर के मत को ही पृष्ठ किया । अलङ्कारशेखरकार को भी यह विचार मान्य था—‘अलङ्कारस्तु शोभाया रस आत्मात् परे मतः’

१ काव्यशास्त्र वा इतिहास—डा० पी० वी० कर्णे—पृ० २, ३ ।

२ सर्गीन रत्नाकर—१-१५, १९ ।

३ वाक्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६ ।

अग्निपुराणकार ने भी रस को ही काव्य का जीवन माना है—“वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।”

राजशेखर ने अर्थव्याप्ति नामक अध्याय में आचार्य आपराजिनि का उदाहरण देकर रस की महत्ता का पुनः प्रतिपादन किया है। वे कहते हैं—‘अस्तु नाम नि सीमार्थसाधं. किन्तु रसवत् एव निबन्धो दुक्तो न नीरसस्य । अर्थं ममूह भले ही असीम हो, किन्तु निबन्ध (काव्य) में सरस अर्थ का होना पत्यावश्यक है, नीरस का नहीं ।

भौतिक जीवन के पदार्थ स्वरूपतः रमणीय दिखाई देते हैं, किन्तु उनके वर्णन में रसानुकूलता अवश्य होनी चाहिये । रसानुकूलता का उल्लेख रसानुशयोक्ति से नहीं है और न अममीचीन रसाभिव्यक्ति से । सोल्टर भट्ट इस, प्रसंग में अपना विचार प्रगट करते हुए कहते हैं कि मञ्जन (जलकीड़ा) पुष्पावचय, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन सरस होने पर भी अधिक मात्रा में तथा प्रस्तुत प्रसंग एव रस के विरुद्ध नहीं होना चाहिए । कविगण नदी, पर्वत, समुद्र, नगर, घोड़े, हाथी, रथ आदि के वर्णनों में जो प्रयास करते हैं, वह उनकी कवित्व शक्ति का खोतक भाव है । सुधीजन उसे उचित नहीं समझते ।^१ आचार्य लोन्ड के इस कथन से राजशेखर ने—‘आम् इति यायावरीयः’ कहकर धरती सहमति प्रकट की है । अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—“अस्ति चानुभूयमानो रसस्यानुगुणो-विगुणश्चार्थं । काव्येणु कविवचनानि रसयन्ति विरसयन्ति च, नार्था । अन्वयव्यतिरेकाध्या च इदमुपलभ्यते ।” अनुभव द्वारा यह सिद्ध है कि कोई अर्थ रस के अनुकूल होता है और कोई उसके प्रतिकूल, किन्तु काव्य में अर्थ सरसता या नीरसता उत्पन्न नहीं करता, रसाविप्लवा तो वास्तव में उनका कवि होना है, उसके वचन होते हैं । उदाहरणार्थ^२ निम्नोक्त नदी वर्णन में रसवत्ता की सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है,—

एता विलोम्य तलोदरि ताम्रपर्णी-
मम्भोनिधौ विवृत्तमुस्तिपुटोदृतानि ।
यस्या पयानि परिणाहिषु हारमूर्त्या-
वामध्रुवा परिणमन्ति पयोधरेषु ॥^३

१. काव्यमीमांसा-अ०९, मञ्जनपुष्प वचयन-गन्ध्या-चन्द्रोदयादिवाग्म्यामिदं नानिवदुक्तं प्रवृत्तरमानन्वित रचयेत् । यस्तु सरिदद्रिभागरुपुरनुरग रथ दिवर्णने यत्न. कविसाहित्यव्यतिरेकौ सुधिया नी मयः स इत् ॥

२. काव्यमीमांसा-अध्याय ९ पृ० ४५, ३ काव्यमीमांसा-अध्याय ९ पृ० ४५

हे शृंगोररि ! तमूद्र मे मिलनी हुईं उम नागप्रपथी नदी को देखी । मोपियों के सम्पुट मे निकाले गये त्रिशके जल-कण, मुन्दरियों के विगतल स्तन-तटों पर मोतियों के हार के रूप मे शोभा पाते है ।

यहाँ कवि ने ग्रन्थो प्रतिभा द्वारा मुन्दरियों के पयोधरो पर सुशोभित जल-विन्दुओं को हार के रूप मे परिणत कर उद्दीपन विभाव प्रदर्शित किया है ।

राजशेखर ने रगतभूमि के इस प्रसंग द्वारा भारतीय रम-धाम्न के जिस महत्वपूर्ण तत्व का साक्षात्करण किया है वह है प्रकृति के रमणीय दृश्यों के वर्णन मे मानव-भावना के सम्पर्क द्वारा रसात्पत्ति । वस्तु का मौन्दर्य तभी निरर सकता है, जब भाव-मौन्दर्य मे उभरता साजन किया जाय ।

राजशेखर ने रम की व्यक्तिसापेक्षता का भी विमूढ विवेचन किया है और इस प्रसंग मे उन्होंने जैन आचार्य पाण्डवीति एवं अत्रनिमुन्दरी के उद्धरण प्रस्तुत किये है ।

आचार्य पाण्डवीति का मत है कि "यथा तथा वास्तु वस्तुनोत्पत्तम् वस्तुप्रकृति विवेकायता नु रमकता । तथा च समये रक्त स्मृति न विरक्तो विविन्दति मध्यस्थम्नु तथोदात्म ।"^१ वस्तु का रूप चाहे बंधा भी हो, रमकता तो कवि की प्रकृति के साक्षात् पर ही होती है । यदि कवि का मन मरम है तो नीरम वस्तु भी मरम हो जाती है और यदि उमरता मन ही नीरम हो तो मरम वस्तु भी नीरम पनीत होती है । प्ररुक्त व्यक्ति जिस वस्तु की स्तुति करता है विरक्त व्यक्ति उसी की निन्दा करता है और मध्यम्य धर्मित उन मध्यम्य मे उदासीन रहता है ।

मीन प्रकृतियों के तीन व्यक्ति चन्द्र के प्रति धपता भाव प्रकट करते हैं । जिमे प्रियता का साक्षात् प्राप्त है, उसे चन्द्रमा शीतल प्ररीत होता है, । विरही मनुष्य को वही चन्द्रमा घषाण ही भीति डालक लगता है, मयोग-मियोग की भावता मे निरपेक्ष व्यक्ति के लिए चन्द्रमा न मुखर है न दुःखर न उल्लस है न गीत । उमके लिए वर जीम के मयाम मोभित हो रहा है ।

येषा वलभया समक्षणायक म्वागक्षया क्षीयते

तेषा शीततर शशी विगिहणामुन्नेव मन्नापहृत् ।

धम्मान न नु व-तथा न विरहमनेमोगम ध्रणता-

मिन्दु रानति दर्षणाहृतिरय मोषणां न वा शीतल ॥१

१ नागधमीनागा श्ल० १, पृ० ४६ । २ नागधमीनागा श्ल० १, पृ० ४६ ।

इन्होंने रम का अन्तर्भाव रमवत् अलंकारों में किया । भामह का कथन है—
 'न कान्तमपि निर्भूपविभाति वनितामुखम्'^१ रमणी का सुन्दर मुख भी आभूषण
 रहित होने पर शोभित नहीं होता जैसे ही अलंकार-विहीन वाक्य रचिकर
 नहीं माना जा सकता । यह वक्रोक्ति है, जो वाक्यों में प्राणों का संचार करती
 है ।^२

राजशेखर के समय तक अलंकार सम्प्रदाय का पूर्ण विकास हो चुका था ।
 राजशेखर उसके महत्व में पूर्ण परिचित थे । यहाँ सम्प्रदाय के विषय में उनकी
 मान्यताओं का निर्देश किया जा रहा है ।

(१) 'उपकारवत्त्वादलंकार मज्जमडगम् इति यायावरीय ।'^३
 अलंकार शास्त्र वेदों के छै अंगों के समान उनका मानवा अंग है ।

(२) आनुप्रासिक प्रचेता, यमो यमकानि, चित्र चित्रागद, शब्दश्लेष
 शेष वास्तव पुलस्त्य, औपध्यमौपकायन, प्रतिशय पाराशर,
 अर्थश्लेषमृत्यु ।^४

अनुप्रास, यमक, चित्र शब्दश्लेष, वास्तव, औपम्य, प्रतिशय तथा अर्थश्लेष अमश
 प्रचेता, यम, चित्रागद शेष पुलस्त्य, औपकायन, पाराशर तथा उलथ्य द्वारा
 प्रतिपादित किये गये हैं ।

(३) अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलकुर्वन्ति ।^५

वाक्य को अनुप्रास उपमा आदि अलंकार अलङ्कृत करते हैं ।

(४) काव्य-कवि की आठ श्रेणियाँ हैं । अलंकार-कवि उनमें से एक
 है । अलंकार के शब्द और अर्थ-भेद में द्विविध होने के कारण अलंकार-कवि
 भी दो प्रकार के होते हैं ।

(५) गूढदलकृतश्च वाक्यमेव काव्यम्^६ —गुण और अलंकारों में युक्त
 वाक्य ही काव्य कहलाता है ।

वेद के शिक्षा, बल्प, निम्बक, छन्द और ज्योतिष ये छ अंग हैं । राजशेखर
 ने अलंकार को सातवाँ वेदांग कहा है और काव्य में ही नहीं अपितु शास्त्र में भी
 इसकी अनिवार्यता मिथ्य की है । पूर्ववर्ती आचार्य भामह दण्डी, उद्भट और
 रूद्रट अलंकारों को महत्व देने हैं । उनके महत्व का क्षेत्र काव्य तक ही सीमित है ।

१ काव्यमीमामा प्र० १, पृ० ६६ मेघा सर्वत्र वक्रोक्तिरनपार्यो विभाव्यते-
 यन्तोऽप्या क्विना वारं कोऽपलतारोऽनया विना २।८५ । २ काव्यमीमामा
 प्र० २ पृ० ३ । ३ काव्यमीमामा प्र० १ पृ० १ । ४ काव्यमीमामा प्र० २
 पृ० ३ । ५ काव्यमीमामा प्र० ६ पृ० ३६ । ६ (उपमा रूपक चैव दीपक
 यमक तथा काव्यस्येतेऽहलङ्कारान्तवार परिचीतिना —नाट्यशास्त्र १६ ४३ ।

राजशेखर की दृष्टि काव्य पर ही साकर नहीं रही। वे सम्पूर्ण वाङ्मय में अलकार की प्रभुता को स्वीकार करते हैं। अलकार क्षेत्र में उनकी यह मौलिक स्थापना है। नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन चार अलकारों का ही वर्णन है ।

आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट चार अलकारों में प्रथम तीन उपमा रूपक और दीपक अर्थालंकार की श्रेणी में आ सकते हैं। यमक शब्दालंकार है। भरत ने अलकारों का शब्दालंकार और अर्थालंकार यह वर्गीकरण नहीं किया।

आचार्य भामहू ने अष्टौस अलकारों का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने भी शब्द-मूलक एवं अर्थ-मूलक अलकारों का विभाजन नहीं किया। वामन के यन्त्र में दो शब्दालंकारों तथा एकदश अर्थालंकारों का स्पष्ट रूप में उल्लेख मिलता है। दो इन्होंने अलकारों को शब्द और अर्थ के भेद के अनुसार वर्गीकृत किया।^१ परमाचार्य श्री भाषकरिकों ने इनमें दो को स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है।

भट्ट, उद्भट ने अलकारों की संख्या ४१ बतायी है। इन्होंने पुनरुक्त-वदाभास, काव्यनिङ्ग, छेकानुभास, दृष्टान्त और मकर इन पाँच नवीन अलकारों की स्थापना की। ये पाँचो अलकार, भामहू और दण्डी के ग्रन्थों में नहीं पाये जाते हैं।

अलकार क्षेत्र में रद्रट का नाम महत्वपूर्ण है। पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा से हटकर इन्होंने वैज्ञानिक आधार पर अलकारों का विभाजन करने का प्रयास किया है। इनके अलकार के चार विभाजन-आधार हैं—शान्त, शोभ्य, अतिशय और श्लेष, जिनकी मध्या क्रमशः २३, २१, १२ और १० है। इन्होंने कतिपय अलकारों को नवीन नाम दिया है। जैसे भामहू बणित व्याज-स्तुति जो व्याज श्लेष स्वभावोक्ति को जानि, शीघ्र उदात्त को प्रथमः। रद्रट ने कतिपय नवीन अलकारों का भी निर्देश किया—वे हैं (१) शान्त, (२) शोभ्य, (३) विहित और (४) भाव।

कवि रहस्य भामक अधिवरण के प्रथम अध्याय में राजशेखर ने कुछ अलकारों तथा उनके प्रतिपादनकर्त्ताओं के नाम दिये हैं। इस विषय में वे रद्रट से अत्यधिक प्रभावित हैं। उन्होंने रद्रट के वही नाम उन्हीं के उन्हीं से दिये हैं—जैसे शान्त, शोभ्य, अतिशय और अर्थश्लेष को राजशेखर ने भी वही नाम दिया है।

१. उक्त शब्दालंकारों—४-१-०; ४-१-१-शान्त काव्यानुरागम्
मध्यमार्थालंकाराणां प्रथमः ४-२-२। २. वही।

भारत में लेकर राजशेखर तक अलंकारों का विवेचन करने वाले आचार्यों में राजशेखर ही प्रथम है जिन्होंने अलंकारों के साथ उनके प्रतिपादनकर्ताओं का भी नामोन्नेय किया है ।

रुद्रट ने वक्रोक्ति की गणना अलंकारों में की है । राजशेखर वक्रोक्ति को अलंकार मानने के पक्ष में नहीं है । उन्होंने उसे पाठ-धर्म के रूप में स्वीकार किया है ।

अलंकार के महत्व के विषय में राजशेखर और उनके पूर्ववर्ती आचार्यों का मत समान है । भामह, दण्डी, वामन आदि के साथ राजशेखर भी अलंकारों को काव्य का अङ्ग मानते हैं । काव्य-गुरूप के चित्रण में उन्होंने अनुश्रवण, उपमा आदि को उनके अलंकरणों के स्थान पर ही रखा है ।

शास्त्र मग्नह नामक अध्याय में उन्होंने शेष अलंकार के ही अर्थ-श्लेष और शब्द-श्लेष में दो भेद माने हैं किन्तु अलंकार कवि की परिभाषा देते समय उन्होंने शब्दालंकारिता और अर्थालंकारिता के विभाजन का समर्थन किया है ।

काव्य के दो अतिवाच्य तत्वों में एक तत्व अलंकार है, ऐसी उनकी मान्यता है ।

राजशेखर एवं रीति-सम्प्रदाय

राजशेखर में काव्यमीमांसा में सुवर्णनाम को रीति-निर्णय का जनक माना है । काव्यमीमांसा वा रीति-निर्णय अधिकरण अनुपलब्ध है । फिर भी इतना स्पष्ट है कि इन अधिकरण की रचना राजशेखर ने की थी । उनका यह कथन कि "रीतयस्तु निरस्तास्तु पुरस्तात् तथा वृत्तिरीतिस्वरूप यथावसर वक्ष्यामः" इस तथ्य को युक्ति करता है ।

काव्यमीमांसा में तीन रीतियों का उल्लेख मिलता है । वे हैं—वैदर्भी, गौडीया और पाञ्चाली । रीति-रूप वाक्य भी तीन प्रकार के होते हैं ।^१ वामन ने भी रीतियों की संख्या तीन ही बतलाई है—वैदर्भी, गौडीया, और पाञ्चाली ।^२ राजशेखर ने कर्पूरभञ्जरी में जिन रीतियों का नामोन्नेय किया है, वे हैं—वैदर्भी, मागधी और पाञ्चाली । राजशेखर के पश्चात् भोज ने मागधी का नामोन्नेय अष्ट रीति में किया है ।

१. काव्यमीमांसा अ० ७ पृ० ३१—तत्र च त्रिधा रीतिरवयवेन वैदर्भी गौडीया पाञ्चालीचेत्तीतिपरिनिवृत्त ।

२. काव्यमीमांसा सूत्र-भाष्य १२९.—मावेत्त वैदर्भी गौडीया पाञ्चालीचेत्तीति

बालरामायण में राजशेखर ने मैथिली रीति का भी उल्लेख किया है। इसकी विशेषता है, अर्थातिशयता (अर्थ चमत्कार) के साथ स्वाभाविकता एवं पुरे प्रबन्ध में सन्दर्भ तथा समान वा अल्प प्रयोग और योग परम्परा के अनुसृत उक्ति।

यत्रापतिशयोऽपि सूत्रितजगन्मयादया मोदते
सन्दर्भरचसमासमागनवदप्रस्तारविस्तारित।
उक्तिर्योगपरम्परापरिचिता काव्येषु चक्षुष्मता
सा रम्या नवचम्पकाशिववतु त्वन्नेत्रयो प्रीनये।^१

राजशेखर द्वारा मैथिली रीति को उद्भावना संबंधी नवीन है। राजशेखर के पश्चात् श्री पाद नामक लेखक ने इसका वर्णन किया है, यद्यपि उनसे इसे मागधी का पर्याय माना है। केशव मिश्र ने, अन्तकार-शेखर में श्रीपाद के मत का उल्लेख किया है, वहाँ मैथिली रीति वैदर्भी रीति के समान ग्रन्थ-समामवाली कही गयी है। इस प्रकार राजशेखर ने रीति के वैदर्भी, पाण्डुवाली, गौड़ीया, मागधी, तथा मैथिली में भेद माने हैं।

रीति का उद्भव : कहा जा चुका है कि काव्य-मुख्य की खोज में उनसे प्रियतमा साहित्य-विद्या-बधू चारों दिशाओं में जाती है। वह उन्हें आवर्तित करने के लिए विशेष स्थानों में विशिष्ट शेषभूषा धारण कर लेती है, अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन शैली के वचन-विन्यास का भी आश्रय लेती है तथा मनोरंजन के लिये विविध बिलासों का प्रदर्शन करती है। इस प्रकार साहित्य-मसार में प्रवृत्ति, रीति और वृत्ति का उद्भव होता है।

पूर्ववर्ती आचार्य भामह, दण्डी, रट्ट, दामन तथा धातन्वबंधन ने रीतिरूप को मान्यता दी है, किन्तु रीति का उद्भव किस प्रकार होता है इसकी पूर्वावृत्ति ने भी नहीं की है। आचार्य भरत ने वेदज्ञ, प्रवृत्ति तथा वृत्त का वर्णन किया है।^२ इनके मतानुसार पृथ्वी पर के मानव देशों के क्षेत्र, भाषा तथा आचार की व्याख्या का स्थापना करने वाली प्रवृत्ति होती है।

रीति के साथ प्रवृत्ति तथा वृत्ति के सामंजस्य के लिए राजशेखर भरत के ही श्रेणी हैं। उन्होंने 'वचनविन्यासप्रथम रीति' अर्थात् वचन के विन्यास की शैली को रीति कहा है। यह परिभाषा पूर्ववर्ती आचार्य दामन की परिभाषा

१ बालरामायण—१०।१५।

२ साध्यशास्त्र—वृत्तिविद्या ज्ञानादेश-शेषभाषाकारवार्ता. व्यासपरिचित प्रवृत्ति.

'पदरचना रीति' से भिन्न नहीं है। केवल शब्दों का अन्तर है। वचन का अर्थ है—शब्द या पद और विन्यास का अर्थ है रचना। काव्यपुरुष के रूपक में रीति का प्रयोग होने के कारण राजशेखर ने वाणी से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने पद के स्थान पर वचन और रचना की जगह विन्यास वचन-शब्द रख दिये हैं।

आचार्य वामन के पूर्ववर्ती भामह और दण्डी ने भी रीति की चर्चा की है, परन्तु दोनों में से किसी ने भी रीति की परिभाषा नहीं दी। वामन ने काव्यालंकार-सूत्र में विशिष्ट पद-रचना की रीति कहा है।^१ विशिष्ट पद में उनका तात्पर्य गुणसम्पन्नता है। काव्यशोभाकारक धर्म को वे गुण कहते हैं। इस प्रकार के काव्य के शोभाकारक शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त पदरचना को रीति मानते हैं।

आनन्दबर्धन ने पद-सघटना की रीति नाम दिया है। पद सघटना वाक्य में पदों की स्थिति या क्रम को कहते हैं। वामन का पद-रचना और आनन्दबर्धन का सघटना शब्द दोनों पर्याय हैं। हाँ, दोनों के गान-दण्ड भिन्न हैं। आनन्दबर्धन के अनुसार रीति रमाश्रयी है। वामन के समक्ष कोई स्वतन्त्र मानदण्ड न था। अर्थगत और शब्दगत सौन्दर्य को ही उन्होंने महत्वपूर्ण समझा।

रीति की परिभाषा में आचार्य कुन्तक ने एक श्रान्ति उपस्थित की। कवि के मानस पक्ष को महत्व देने हुए उन्होंने रीति को कविप्रस्थान हेतु कहा है। भोज के मतानुसार रीतिशब्द गत्यर्थकरीन्द्र धातु से व्युत्पन्न हुआ है।^२ कुन्तक ने जिस कविप्रस्थान मार्ग को कविप्रस्थानहेतु कहा है, वही भोज के शब्दों में रीति है।

पूर्वाचार्यों द्वारा वर्णित दोनों रीतियों के लिए मम्मट ने वृत्ति शब्द का प्रयोग किया है "वृत्तिनिघनवर्णनार्थं रम-विषयां वाक्य व्यापार" अर्थात् रीति वर्ण-सुगम्यता का नाम है। उस में वर्ण नियत होने हैं और वे रम के सहायक होने हैं।

विरचनाय ने मम्मट के वर्ण-व्यापार के साथ-साथ पद-सघटना को महत्व दिया। पदों की सघटना का नाम रीति है जो अगमस्थान की भाँति है।

रीति का मूल-तत्त्व : रीति के विषय में राजशेखर ने नवीन तत्वों की उद्-भावना की है। उन्होंने समात के साथ-साथ अनुश्रवण को रीति का मूल-तत्त्व माना

१. वामन—काव्यालंकारसूत्र—१२७ विशिष्ट पदरचनारीति (२) विशेष-गुणात्मा । १२८ ।

२. रङ्गताविति धातो मा व्युत्पत्त्या रीतिरुच्यते ।

३. पदसघटनारीतिरगमस्था-विशेषवदन्-उपवर्त्ती रमारीनाम् ।

है। इसके अनिश्चित उन्होंने तीनों रीतियों के नये आधार-तत्व की भी कल्पना की है। यथा गौडीया समागवती, अनुप्रासवती, योगवृत्तिपरम्परागर्भा पाञ्चाली ईषदममासा, ईषदनुप्रासा, उरचारगर्भा। वैदर्भी-स्थानानुप्रासवती-असमासा योगवृत्तिर्गमा—उनके मतानुसार गौडीया रीति में योगवृत्तिपरम्परा तथा समाग और अनुप्रास का प्रचुर रूप में होता पाया जाता है। पाञ्चाली में उपचार-गर्भता तथा समाग और अनुप्रास की अल्पता होती है। वैदर्भी में योगवृत्ति का मद्भाव, समाग का अभाव और स्थानानुप्रास होता है।

भोज ने राजशेखर का अनुसरण किया है। उन्होंने रीति के मूलतत्वों में समाग और गुण दोनों की गणना करते हुए राजशेखर के योगवृत्ति नामक प्राधारभेद को और व्यापक कर दिया है। पूर्ववर्ती आचार्यों में दण्डी ने गुणों की रीति का मूलतत्व माना है। वामन भी इसी मत के समर्थक है।

वामन के परबान् रुद्रट ने समाग की रीति का मूलतत्व माना। उन्होंने पाञ्चाली को लघुसमासा, लाटीया को मध्यमसमासा, गौडीया को दीर्घसमासा तथा वैदर्भी को अमसमासा कहकर रीति के मूल में समाग की स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन ने प्रमाद, माधुर्य और ओज गुणों को रीति के आन्तरिक तत्व और समाग को बाह्य तत्व माना है।

ध्वनि-सम्प्रदाय तथा राजशेखर

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में ध्वनि-सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, तथापि उसके सिद्धांतों को यथास्थान उद्धृत किया है। उनके समय तक ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना हो चुकी थी।

काव्यमीमांसा के प्रथम अध्याय में श्रौक्तिक प्रकरण का उल्लेख है। संभवत राजशेखर इस प्रकरण में ध्वनि-सम्प्रदाय सम्बन्धी अपना मन्तव्य प्रकट करना चाहते थे। उनकी सम्मति में श्रौक्तिक प्रकरण के आचार्य उक्ति-गर्भ थे।

राजशेखर ने बहिरहस्य प्रकरण के पाँचवें अध्याय में प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विषय में आनन्दवर्धन के विचार लिये हैं। "प्रतिभाव्युत्पत्तयो प्रतिभा श्रेयसी इत्यानन्द।" अर्थहरण प्रकरण में—“महात्मना हि सर्वादिग्यो बुद्धय एकमेवार्थमुपस्थापयन्ति, तत्परिव्यागव्य तानाश्रियेत इति च केचित्।” अर्थात् गूढमदर्शी महात्माओं की बुद्धि समाग प्रसार की होती है। अतः उन्हें समान रूप में ही अर्थ-विवेक की प्रतीति होगी है। इसलिए एत ही प्रकार के भाव

प्राचुर्य है। अतः इस भणिति को कमीटी मानकर ही वे इस रचना का मूल्यांकन करें।

राजशेखर का वक्रोक्ति क्षेत्र आचार्य कुतक की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है। उन्होंने वक्रोक्ति का साम्राज्य विस्तार, लोच, काव्य और शास्त्र तीनों में माना है, जबकि आचार्य कुतक वक्रोक्ति को काव्य तक ही सीमित रख पाये हैं।

साहित्य-शास्त्र को राजशेखर की देन

सम्वृत साहित्य-शास्त्र के विनाश के कई सोपान हैं। समय-समय पर इस शास्त्र को विभिन्न नाम दिये गये। प्रारम्भ में काव्य-सौंदर्य की परख करने वाले इस शास्त्र को काव्य-शास्त्र कहा गया। भामह, रुद्रट, उद्भट, वामन आदि के कथन इसके माक्षी हैं। दूसरे चरण में काव्य-शास्त्र का नाम पञ्चमकार-शास्त्र। मलकारों का प्राधान्य इस नामकरण के मूल में था। तैमरी अवस्था में यह शास्त्र काव्यशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसी युग में पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह, वामन, रुद्रट आदि ने काव्य को शब्दार्थमय स्वीकार किया था। किन्तु किसी ने साहित्य शब्द का प्रयोग अपने ग्रन्थों में नहीं किया। वर्तमान अर्थ में साहित्य शब्द का प्रथम प्रयोग काव्यमीमांसा में मिलता है।

प्राचीन आचार्यों ने चार विद्याएँ मुख्य बताई हैं—प्राचीनिकी, लयी, वाता तथा दण्डनीति। राजशेखर की स्थापना है कि इन चारों विद्याओं का निप्यन्द-मार होने के कारण साहित्य पञ्चमी-विद्या है। “पञ्चमी साहित्य विद्या। साहित्यतसुणामपि विद्याना निप्यन्दः।” शब्दार्थवोरंधावन्, सहभावेन विद्या साहित्यविद्या। साहित्यविद्या में जड और अर्थ का यथार्थ रूप में समन्वय होता है।

काव्यपुरुर की उत्पत्ति के विषय में रोचक आख्यात प्रस्तुत करते हुए उन्होंने काव्य और साहित्य विद्या का मजुल सामजस्य व्यक्त किया है। परवर्ती साहित्यकारों ने आचार्य की इस स्थापना को पैतृक निधि के रूप में ग्रहण किया। उनकी मौलिकता का दूसरा उदाहरण है, साहित्य-शास्त्र के उद्गम की खोजणा। उन्होंने बतानाया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने उस काव्य-विद्या का उपदेश परमेष्ठि वैकुण्ठादि चौसठ शिष्यों को किया था। उनमें से प्रथम शिष्य स्वयम्भू-ब्रह्मदेव ने इस विद्या का दूसरी बार उपदेश अयोनिज ऋषि को दिया। इन शिष्यों में सरस्वती का पुत्र ‘काव्य-पुरुर’ भी था। ब्रह्मदेव ने उसे ‘शुभ्रुव’ और स्व तीनों

लोकों में रहने वाली प्रजा को काव्य-विद्योपदेश देने का आदेश दिया । काव्यपुरुष ने इसका सर्वप्रथम उपदेश महम्मदादि दिव्य काव्य-विद्या-स्नातकों को किया । प्रत्येक शिष्य ने अठारह भागों में से एक एक विषय पर विशेषता प्राप्त करके पृथक् पृथक् ग्रन्थों की रचना की । यह प्राख्यायिका पौराणिक शैली की जान पड़ती है । परन्तु इन प्रकार का उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता है ।

काव्यपुरुष का अवतरण

ऋग्वेद में वेद-पुरुष का वर्णन मिलता है । वेद अपौरुषेय माने गये हैं । अतः वेद-पुरुष भी दिव्य है । साहित्यशास्त्र में काव्य का नक्षत्र निर्धारित करते हुए आचार्य षण्डी ने शब्द और अर्थ दोनों के समीप को ही काव्य का शरीर माना है । प्राचार्य भामहू के 'जगदाधी' में विदित होता है कि वे शब्द को काव्यशरीर मानते हैं । आचार्य धामन ने शरीर की ओर दुर्लक्ष्य करके काव्य के आत्मतत्त्व की खोज की । आचार्य आनन्दबर्धन ने इस दिशा में धामन के पद का अनुसरण किया । अन्तर इतना ही है धामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा, आनन्द ने ध्वनि को काव्य का जीवनविधायक तत्व माना । इस प्रकार धामन भामहू में आनन्दबर्धन तक काव्य-शास्त्र में काव्य के शरीर तथा आत्मा-तत्त्व की स्थापना हो चुकी थी । साहित्य क्षेत्र में काव्यपुरुष की कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान करने का श्रेय राजशेखर को ही है । उनसे अतः काव्यपुरुष का शब्दार्थ शरीर है, सस्वर मुख, प्राकृत वाहु, भ्रमभ्रम जपा, पञ्चाक्षरं तथा मिथ भाषा उमका उर है । उमका स्वभाव मम प्रसन्न, मधुर, उदार तथा श्रेय सादि-गुणों से युक्त है । उक्ति वैशिष्ट्य उमके रोम है । उसको वाक्वीर्य य प्रसन्नोत्तर एव प्रसन्नोत्तरादिक है । अनुप्रासादिक उमके अलकार है तथा रस उसकी आत्मा है । काव्यपुरुष का ऐसा चित्र साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम राजशेखर ने ही उपस्थित किया । यह उनकी भौतिकता का प्रमाण है ।

रीति-वृत्ति प्रवृत्ति का सामञ्जस्य

आचार्य भरत ने वृत्ति और प्रवृत्ति का नाट्य की दृष्टि से विवेचन किया है । भामहू, वायन, षण्डी, आनन्दबर्धन, श्रुत आदि ने अपनी अपनी दृष्टि में रीति का विवेचन साहित्यशास्त्र के मन्दर्भ में किया है । परन्तु राजशेखर ही वे प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने प्रवृत्ति का सामञ्जस्य किया ।

भोज ने गरुडनीरञ्जभरण में रीति की चर्चा की है । धामन और आनन्दबर्धन ने रीति का तथैव निरूपित किया है किन्तु रीति के उद्गम का

विस्तृत विवेचन केवल साधारणतः न ही किया है। राज्यपुर को स्थापित करने के लिये साहित्यविद्या-रट्ट ने जिस बाल, तेज घोर विनाग वा साध्य विद्या के कथन, योग घोर विनाग जयन गीति, प्रवृत्ति घोर वृत्ति नाम में साहित्य जगन में प्रसिद्ध हुए। साधारणतः ही यह उद्भावना राज्यपुर के इतिहास में सर्वथा सर्वज्ञ है।

राजगोबर की रीति-मार्गों एक घोर मान्यता है। भरत, भामह, याग घोर इन्हीं के मतों में स्पष्ट है कि स्थापन में प्रवृत्तियों वा रीतियों का वर्गीकरण प्रदेसानुसार ही हुआ था। इस प्रार्थना विभाजन में राजगोबर भी पूर्ण महत्त्व थे। इन्हीं प्रदेशों की सीमा-रेखा घोर भी स्पष्ट पर दी है।

गोदा रीति वा क्षेत्र, भद्र, बह, मुद्र, ब्रह्म, पुण्ड्र आदि देशों तक विस्तृत है। पाञ्चान, शूरसेन, हस्तिनापुर, वासमीर, याहीर, बाज्जीर, बाह्मवेय आदि जगत् पाञ्चनारी के भीक्षुभेज है। मन्व, बुन्नात वेन्त, पाक, मञ्जर, महाराष्ट्र, भंगा, रानग आदि जगत् बँटवों के कार्यभेज है।

रीति निष्पन्न में समता के साथ अनुशासन तथा योगवृत्ति, उपचार-योग-वृत्ति परम्परा की रीति का आधार मानना उनकी निर्भीकता है।

पञ्चदश काव्यं विद्यास्थानम् ।

उपकारकत्वाद नकारः सप्तमङ्गम्'

साहित्य क्षेत्र में राज्य की पञ्चदश विद्या की स्थान, सनदार की सप्तम, वेदाङ्ग का तथा साहित्य की पञ्चमी विद्या का स्थान देने का प्रथमवीर कार्य राजगोबर द्वारा ही प्रथमतः किया गया है। राज्य की मृत्युवृत्त में प्रायः सभी आचार्य महत्त्व है किन्तु केवल राजगोबर ने ही 'पञ्चदश' काव्यं विद्यास्थानम्' कहा है।

मलकारों की भागह, वामन, दण्डी, रट्ट आदि में राज्य की शोभाप्रदान करने वाले तत्व माना है। राजगोबर भी सनदारों की राज्य के शोभाकरण धर्म मानने हैं। मलकार-शास्त्र का उद्गम उगता नामकरण तथा उभ शास्त्र का समुचित स्थान निर्धारित करने का कार्य राजगोबर ने किया। वास्तव में किसी आचार्य ने इस प्रश्न को हल करने का प्रयत्न नहीं किया। 'मलकारः सप्तमङ्गम्' इस स्थापना में मलकार का अर्थ मलकार शास्त्र है। जिसके बिना वेदार्थ भी विनष्ट हो जाना है। मल शास्त्रों का भी उपकारी होने के कारण उन्होंने मलकार-शास्त्र की पञ्चदशों के पञ्चान् मातृके वेदाङ्ग का स्थान दिया।

अलंकार क्षेत्र में मौलिकता

अलंकार क्षेत्र में उक्त नवीनताओं के अनिश्चित वनियम मौलिकतायें भी आचार्य राजशेखर ने ही हैं—जैसे

यकोक्ति आद्याचार्य भामह ने वक्रोक्ति अलंकार को अलंकारों का जीवन विधायक मत्व माना है। वे ऐसे अलंकार की वन्दना ही नहीं कर सकते जो वक्रोक्ति में रहित हों। आचार्य दण्डी ने भी समस्त वाङ्मय को दो भागों में बाटा है—स्वभावादि तथा दर्शोक्ति। उनके अनुसार अतिशय बचन वक्रोक्ति का मूल है। उनमें श्लेष की विश्वमानता उमे और भी निगार देती है। भामह की वक्रोक्ति या क्षेत्र व्यापक है। दण्डी ने उमे भामह की तुलना में मनुचित किन्तु विशिष्ट ध्यान दिया है। आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को अर्थात् लक्षण कहा है। उनके मन में वक्रोक्ति सादृश्य के उपर आश्रित होने वाली लक्षणा है। लक्षणा के अनेक आधार हो सकते हैं। परन्तु सादृश्य के आधार पर होने वाली लक्षणा वक्रोक्ति कहो जा सकती है। आचार्य शूद्र के समय में यह शब्दालंकार बन गई। शूद्र कहते हैं—'वायुवक्रोक्तिर्नामशब्दालंकारोयम्' वक्रोक्ति शब्दालंकार है, जिसे वायु कहते हैं—

'अभिप्रायवाक्याद्यधर्मं वायुं स वक्ष्यमलंकारं स्यात् ।

राजशेखर के इस वाक्य में वक्रोक्ति सम्प्रदाय का बीज निहित है। वे कहते हैं—'आभिप्राय पठन अर्थान् पठने वा या वाचने वा प्रकारं वायुं है। वह अलंकार कैसे हो सकता है? आचार्य कुन्त वक्रोक्ति सम्प्रदाय के जन्म माने जाते हैं उन्होंने वक्रोक्ति को 'वैश्वी-भवी' अर्थात् कहने का लौकिक प्रकार में भिन्न रूप कहा है। नि मदेत स्वयमेव एव प्रताप्यी पञ्चान् दर्शोक्ति को वाक्य का मूलत्व मानने वाले आचार्य कुन्त ने राजशेखर ने दण्डी वचनों का दोहराया है जिसे नवीन विचार ही उद्भावना नहीं की। साहित्यशास्त्र में वक्रोक्ति सम्प्रदाय की नींव डालने का महत्व कार्य राजशेखर ने ही किया था।

श्लेष-वचन - परन्तु भामह दण्डी वामन आदि सभी आचार्यों ने समस्त अलंकार का निरूपण किया है। शूद्र ने ५० श्लेषों में वचन का विस्तृत चित्रण किया है। उन्होंने श्लेष में भी छोट प्रकाश बनाये हैं किन्तु उनके पूर्वजों या पश्चजों जिसे साहित्यशास्त्र में श्लेष की दृष्टि में श्लेष तथा समस्त अलंकारों का वर्णन नहीं किया। राजशेखर ने श्लेषरूप प्रकरण में श्लेषपदुक्त पूरे एक पद का अर्थ धारणों द्वारा हस्त तथा उदाहरणों का समस्त द्वारा

हरण एवं श्लेष का श्लेष द्वारा ही हरण करने का उदाहरण देकर अलंकारों की दिशा में नवीनता का सृजन किया है ।

शास्त्रमय-विभाजन - ग्रन्थ और पारवान्य दोनों श्रेणियों के ही विद्वानों ने साहित्य को कई भागों में बाँटने की चेष्टा की है । आचार्य दण्डी ने वाङ्मय को स्वभावोक्ति और वस्तोक्ति में विभक्त किया है । किन्तु उनका दृष्टिकोण सीमित है । भारत में इस प्रकार का प्रयत्न सबसे पहले राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमांसा में किया है । साहित्य को उन्होंने दो भागों में विभक्त किया है—

‘शास्त्र काव्यं चेति वाङ्मय द्विधा’

वाङ्मय या साहित्य शास्त्र और काव्य भेद में दो प्रकार का होता है । साहित्य का यह विभाजन अंग्रेज विद्वान डब्लिवल्मी से मिलता है जिन्होंने साहित्य को ज्ञान और शक्ति के रूप में विभक्त किया है ।

राजशेखर ने केवल शास्त्र और काव्य का ही उल्लेख नहीं किया । उन्होंने समग्र शास्त्रों का सक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूप में वर्णन किया है, जो इतर साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता ।

काव्यश्रोतों में मौलिकता - पूर्ववर्ती आचार्यों ने काव्यवस्तु के रसों का वर्णन किया है । राजशेखर भरत, भामह, रुद्रट आदि द्वारा वर्णित काव्यार्थों में पूर्णतया महमत है, किन्तु इन बारह काव्यार्थों के अनिश्चित उन्होंने स्वप्रतिभाजन्य अथवा चार काव्यार्थों की भी कल्पना की है । वे हैं उन्नत मयोग, योक्तृ-मयोग, उत्साहमयोग और मयोग-विकार ।

आचार्य शैबिणि ने काव्यार्थ की व्यापकता को परिमित करने का प्रयास किया है । उन्होंने कथानक के पात्रों का दिव्य, दिव्यमानुष और मानुष होता बनताया है । पश्चात् आचार्य राजशेखर ने इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया । उन्होंने इन तीन भेदों के अनिश्चित पातालनीय, मध्यपातालनीय, दिव्यपातालनीय, और दिव्यमर्त्यपातालनीय भेदों का वर्णन कर अर्धव्यक्ति की सीमा मिश्रित कर दी है । पूर्ववर्ती आचार्य उद्भट ने अर्धराशि को विचारितपुंस्य और अविचारित-रमणीय विभागों में रखा है । अविचारित रमणीय अविचारित होता है उसमें वास्तविकता कभी दूर रहती है । राजशेखर इसमें समहमत हैं । उन्होंने

१ काव्यमीमांसा अ० ६५० ३५—“श्रुति स्मृति इतिहास पुराणं प्रमाणविद्या राजनिदान्तरण्यो लोको विरचना प्रकीर्णत च काव्यार्थानां दारन योत्सव.”
इति आचार्य ।

उद्भट की समस्या का निराकरण किया। उनके मतानुसार कवि वैज्ञानिक वस्तु की वास्तविकता को प्रतिभा के पुट में लोक-रजना में परिवर्तित करता है। शास्त्र विश्लेषणात्मक होने हैं, काव्य सश्लेषणात्मक। राजशेखर का यह मन्तव्य आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों को सर्वथा मान्य है।

कवि कर्म ही काव्य बहनाता है। अलंकार शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय काव्य ही है। कवि का जिनना विस्तृत विवेचन राजशेखर ने किया है उतना किमी पूर्ववर्ती या परवर्ती आचार्य ने नहीं। आचार्य वामन ने अरोचकी तथा मत्तूषाम्भवहारी कवियों के ये दो भेद गिनाये हैं, किन्तु राजशेखर ने भिन्न-भिन्न आधारों को लेकर कवियों के २७ भेद बतलाये हैं। ये उनकी सूक्ष्म विचार शक्ति के परिचायक हैं। अवस्थाजन्य कविश्रेणी भी साहित्य क्षेत्र में नवीन है।

कवि-शिक्षा भामहू ने राजशेखर पर्यन्त आसकारिकों ने काव्य-विषय का मथन किया है, किन्तु कवि के मानसिक पक्ष की ओर विन्मी भी दृष्टि नहीं गई। राजशेखर अलंकार क्षेत्र में प्रथम आचार्य है जिन्होंने काव्यमीमांसा में कवि शिक्षा विषयक तत्वों के बीज का वपन किया। परवर्ती आचार्यों के लिये यह धरोहर स्वरूप है। कवि-शिक्षा सम्प्रदाय के जनक के रूप में राजशेखर काव्य-जगत में प्रसर रहेगे। कवि-शिक्षा के अन्नगन्त जिन तत्वों का प्रथमावतार राजशेखर ने किया है वे हैं —

(१) कविचर्या (२) काव्यगोष्ठी (३) कवि-सम्मेलन (४) काव्य पाठ (५) अनुहरण (५) कवि-समय।

वाल्मीयान ने कामसूत्र में 'नागरिक-वृत्ति' जीर्णक के प्रन्तर्गत नागरिकों के रहन-सहन, निवास-स्थान एवं प्रसिद्ध दिनचर्या का सुविस्तृत विवेचन किया है। साहित्यशास्त्र में हमें ऐसा वर्णन कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। राजशेखर ही प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने वाल्मीयान की नागरिकचर्या को सामने रखकर कवि-चर्या पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

काव्यगोष्ठी की उद्भावना साहित्य क्षेत्र में नूतन नहीं है किन्तु राजशेखर की लेखनी ने उसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। राजा के सभापतिव्व में काव्यगोष्ठी की आयोजना परिकल्पित करके उन्होंने उसे सम्मान प्रदान करने की प्रेरणा दी है। राजा के नेतृत्व में आयोजित कवि-सम्मेलन सामान्य सभा-मण्डप में नहीं हो सकती। अतः उस सम्मेलन के लिये उन्होंने त्रिशिष्ट मण्डप की रचना का निर्देश दिया है। इस कवि-भवन में मोनहू खम्भे चार दरवाजे और छोट मत्तवागणी हैं। उग के बीच में एक हाथ ऊँची चार खम्भों वाली एक मणि-खेदिका बनायी

जाय। उस मणिवेदिका पर राजा का सिंहासन हो। राजा के चारों ओर भिन्न-भिन्न भाषाओं के गुणी तथा कविजन बैठें। राजा के उत्तर की ओर मरुत भाषी पूर्व की ओर प्राकृतभाषी, पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषी तथा दक्षिण की ओर पैशाची-भाषी बलि दें। ऐसी मजी हुई मभा में बैठकर राजा काव्य-मोक्षी वा मभापतिव्व करे।

महर्षि पाणिनि ने वर्णों के उच्चारण की विधि बतलाते हुए लिखा है कि जिन प्रकार व्याघ्री अपने पुत्रों को एक स्थान में दूसरे स्थान पर अपने दांतों में दबाकर लेजाती है और दांतों में उल्टे सिमी प्रकार की पीडा नहीं पहुँचाती क्योंकि वह डरती है कि वहाँ बच्चे मर न जायें या दाँत उनमें चुभ न जायें। उसी प्रकार वर्णों के उच्चारण करने वालों को भी सावधान होना चाहिये कि वही वर्ण उनके मूँह में गिर न जाय और वहाँ कोई वर्ण मूँह के भीतर ही रहकर अनुच्चरित न रह जाय। इसी को आधार मानकर राजशेखर ने कवि रहस्य अधिकरण में काव्य पाठ के चार भेद बतलाये हैं—

गभीरन्वमनैश्वर्यनिर्द्धृष्टिम्नारमन्त्रयो
सद्युक्तवर्णलावप्यमिति पाठगुणा स्मृता ।
विभक्तय स्फुटापत्र, समानाश्च कर्दधिता ।
अम्नान पदमन्धिरच तत्र पाठप्रतिष्ठित ॥
न व्यस्तपदयोरेक्य न भिदा नु समस्तगो ।
न चारुपाठ पदम्लानि विदधोत मुध्री पठन् ।

अर्थात् गभीरता, सम्बन्धता, ऊँच नीच स्वर का निर्वाह और सयुक्त वर्णों के पढ़ने में विशेष सुन्दरता ये पाठकों के गुण माने गये हैं। सुन्दर पाठ वह है जिनमें विभक्तियों स्पष्ट हों, समान भी स्पष्ट हों और पदों की संधि भी स्पष्ट हो। बुद्धि-वान् को पाठ करने समय न तो व्यक्त पदों को मिलाना चाहिये और न समस्त पदों को अलग करना चाहिये। आस्थान पदों को भी दिकृत या मलिन नहीं करना चाहिये। यही उनकी पाठ प्रतिष्ठा का आधार है।

वाराणसी, मगध, गौड, वनांड, द्रविड, पाट, मुराष्ट्र, त्रवण, रश्मीर और पाश्चाल जनपदों के काव्य पाठ की प्रणाली वा वर्णन उनकी श्रुतों देत है। सर्वप्रथम राजशेखर ने ही गीति के बदले प्राग्तीय प्रणाली के आधार पर काव्य पाठ का वर्णन किया है। उन्होंने प्रायः सभी प्रांतों की कवि-पाठ प्रणाली का वर्णन किया है।

अनुहरण

सर्वप्रथम प्राचार्य भानन्दबध्दंत के ध्वन्यालोक में अनुहरण की एक मूलक मिलती है। किन्तु इसका विस्तृत तथा विशिष्ट अनुशीलन राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में किया है। पूर्वकथित निहत्तुतपोनि के दूसरे भेद परपुरप्रवेश एवं उसके आठ भेदों की उद्भावना राजशेखर की अपनी है। अनुहरण विषयक कवि की धारणाएँ साहित्य-मगत में नूतन ही हैं।

कवि-समय : प्राचार्य वामन ने काव्यालंकार सूत्र में प्रायोगिक नामक पञ्चम अधिकरण में काव्य-समय का उल्लेख किया है, जिसमें व्यस्करण-निवृत्तों की रूपरेखा दी गयी है यद्यपि काव्य में तो कवि-समय का प्रत्यक्ष रूप में प्रयोग हुआ, किन्तु काव्य-शास्त्र में कवि-समय का विवेचन प्रथमतः प्राचार्य, राजशेखर ने किया है।

आलोचक भेद : पूर्ववर्ती प्राचार्य मंगल ने आलोचक के दो प्रकार बताये हैं— अरोचको शीर सत्पुण्यवहारी। प्राचार्य मंगल के इन कथन-प्रकारों से सहमत होते हुए आलोचक के दो अन्य प्रकार भी राजशेखर ने माने हैं। वे हैं—तत्त्वानिनिवेशी एवं मन्मयी। इस प्रकार प्राचार्य मंगल के विभाजन को राजशेखर ने मनो-विज्ञान का पुट देकर व्यावहारिकता के समीप लाने का प्रयास किया है।

काव्य-पाक काव्य-पाक के क्षेत्र में प्राचार्य भामह एवं वामन का नाम उल्लेखनीय है, किन्तु इन प्राचार्यों ने काव्य-पाक को दो भेदों तक सीमित कर दिया। प्राचार्य राजशेखर ने इनका परिवर्धन किया तथा काव्य-पाक को नौ भेदों में विभाजित किया। इस प्रकार राजशेखर ने वर्तमान भारतीय ममीक्षा का वास्तविक सूत्रपात्र किया।

काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में औपनिषदिक एवं वैशेषिक में दोनों प्रकरण अत्यन्त मूल्य हैं। शैटिलीय अर्थशास्त्र में औपनिषदिक प्रकरण मिलता है। राजशेखर औपनिषदिक कवि में सर्वोद्भूत जालकारी इस प्रकरण में देना चाहते होंगे। उनके कथन में लगता है कि वे इन प्रकरण में कलाओं का वर्णन भी करना चाहते थे।

काव्यमीमांसा ऐसा ग्रन्थ है जिसमें पूर्ववर्ती ज्ञान तथा अज्ञान प्राचार्यों के केवल नामों का नहीं, अपितु निदानों का भी उल्लेख मिलता है। ज्ञान प्राचार्यों में उट्ट, भानन्द, उद्भट के अनुयायी, वामन के अनुयायी (वामनीया) अश्वत्थगुप्तरौ, अश्वत्थगुप्तरौ, कानिदास, द्रौहिणि एवं पाण्यवीरि की गणना की जा सकती है।

मंगल, भ्यामदेव और मुरानन्द प्रादि अज्ञान प्राचार्यों का उल्लेख राजशेखर ने नहीं कर दिया। उन्होंने नती पूर्ववर्ती प्राचार्यों की उद्भावनाओं का उल्लेख

किया है वहाँ अपनी मौलिकता की भी छाप लगा दी है। उन्होंने कभी भी पूर्ववर्तियों की पुनरावृत्ति नहीं की। जिस विषय पर उन्हें कोई मौलिक वान नहीं रहनी होती है, उसे वे छोड़ देते हैं।

उनकी सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रूपरेखा में ग्रामूल परिवर्तन। अब तक के ग्रन्थों में अलंकार शास्त्र के किसी एक विषय पर विशेष रूप से बल दिया जाता था किन्तु इस काव्यमीमांसा में सभी विषयों का सामञ्जस्य करने का प्रयाग किया गया है। सामन्वयवादी ग्रन्थ-रचना की परिपाटी राजशेखर ने ही आरम्भ की।

संस्कृत अलंकारिक काव्य के तात्त्विक सिद्धान्तों से परिचित थे किन्तु उन्हें व्यावहारिक शिक्षा देने का श्रावणीयकार्य राजशेखर ने किया है। अपनी मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा राजशेखर युग-प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। उनकी ये उद्भावनायें साहित्य जगत में प्रकाश-स्तम्भ की भाँति आचार्यों एवं शिष्यों का मार्गदर्शन करती रहेगी।

खण्ड ४

राजशेखर-कालीन भारत

“पूर्वापरयो. समुद्रपोहिमवद्विन्ध्यपोरचान्तरमार्गान् ।
तस्मिन्नुपानुवर्ष्यं चानुराधम्य च । तन्मूलश्च सदाचार ॥”

राजशेखर-कालीन भारत

राजशेखर ने भारतवर्ष को उत्तरापथ, दक्षिणापथ, पूर्वदेश, पश्चाद्देश और मध्यदेश इन पाँच खण्डों में विभक्त कर तत्कालीन भारत की ममत्र ज्ञाती प्रस्तुत की है, जो संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपूर्व है। उनके इस विभाजन का केन्द्र-बिन्दु कान्यकुब्ज था।

भौगोलिक सीमाएँ

उत्तरापथ : महोदय केन्द्र में था। पृथुदक से आगे शक, वेक्य, वोकराण हूण, वाणायुज, काम्बोज, बाह्लीन, बह्लव, निम्पाक, कुलून, कीर, तगण, तुपार, तुरुष्क, बर्बर, हरहूरव, हूहुव, सहड, हममार्ग, रपठ और करण्ठ जनपद उत्तरापथ खण्ड का निर्माण करते थे।

पूर्वदेश . आराणसी से आगे के अग, वग, वणिय, कोसल, तोमल, उत्तल मगध, मुद्गर, विदेह, नेपाल, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, ताम्रनिप्लव, मलद, मन्ववर्तक, गुह्य और ब्रह्मोत्तर आदि जनपद पूर्वदेश के अन्तर्गत आते थे।

पश्चाद्देश . देवसभा से आगे, देवमभ, सुराष्ट्र, दशेरक, तवण, भृगुवृच्छ, कञ्चीय, अानर्त, अर्बुद, वासुणवाह और यवन प्रदेश पश्चाद्देश कहलाते थे।

दक्षिणापथ माहिष्मती से आगे दक्षिणापथ का भू-भाग प्रारम्भ हो जाता था। महाराष्ट्र, माटिपक, शम्भक, विदर्भ, कुस्तल, त्रयवैशिन, सूर्पारव, वाची, केरल कावेर, मुरल, वनजातक, सिंहल, चोड, दण्डन, पाण्ड्य, पल्लव, याङ्ग, नागिर्य, वीणण, कोत्तगिरि, वन्नूर, आदि जनपद दक्षिणापथ के अग थे।

मध्यदेश . इन चार खण्डों के मध्य का देश "मध्यदेश" कहलाता था। राजशेखर ने मध्यदेश के जनपदों, पर्वतों, नदियों और उपज के अनिप्रमिद्ध होने के कारण उनकी नामावली नहीं दी है। उन्होंने मनु द्वारा निर्दिष्ट सीमारेखा को मान्यता दी है, जिसके अनुसार हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में विनशन में पूर्व और प्रयाग से पश्चिम का भू-भाग मध्यदेश कहलाता था।

नदियाँ : राजसेखर के मतानुसार उत्तरापथ की प्रमुख नदियाँ गंगा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, चन्द्रभागा, यमुना, शरावती, विजया, विराया, कुहू और देविका थी। पूर्व देश की गंगा और करतोमा थी। पश्चादेश की सरस्वती, स्वप्नवती, शतघ्नी, मही और हिडिम्बा एव दक्षिणापथ की नर्मदा, तापी पयोष्णी, शोदावरी, वावेगी, भीमरथी, वेणा, कृष्णावेणा, वंजुरा, तुंगभद्रा, ताम्रपर्णी, उत्पलावती और रावणगंगा थी।

पर्वत : उत्तरापथ में हिमालय, कलिन्द, इन्द्रकील, चन्द्राचल, पूर्वदेश में नृहृद्गुह, मोहितगिरि, चंकोर, वंदूर, नेपाल और कोमरुच, पश्चादेश में गोवर्धन, गिरिनगर, देवसम, गाल्पशिखर, अर्बुद तथा दक्षिणापथ में विन्ध्य-दक्षिणपार, महेंद्र, मलय, मेकल, पाल, भंजर, महा और थीपर्वत थे।

इन जल-श्रेणियों, कलिण्ड नदियों और कुछ पर्वतों के आधुनिक नाम निम्न हैं :—

उत्तरापथ :

शक—भारत के सीमान्त के पास का मीदिआ क्षेत्र।

केचप—सेलम और प्याम नदी के मध्य-पू-भाग में स्थित जयलपुर।

तूण—तमिलनाडु के श्रासपास का प्रदेश।

वाणावुज—मरव प्रदेश।

बाम्बोत्र—हिमालय का रामपुर।

वान्हीरु—बलघ्न।

वद्धव—पंजाब का बाहीर प्रदेश (पूर्वी पंजाब)

विपाक—तयमल।

कुनून—कागल जिले का बुलू प्रदेश।

वीर—पंजाब का वीर ग्राम।

नगण—गडवाल जिले का तपणपुर।

तुपार—बलघ्न और वदरवा प्रदेश।

तुम्प—मुन्निगतान का पूर्वी-भाग।

वर्ग—यन्विरवान का उत्तर प्रदेश।

हृद्दरुव—मिन्धू और सेलम के मध्य का प्रदेश।

तूत—गाम्भीर का तूतपुर।

मदुड—गम्बुज और मरव-गम्बुज के पास का प्रदेश।

रमड—रोमच पर्वत के पास का प्रदेश।

पूर्वदेश :

अंग—भागलपुर, मुर्शिदाबाद जिले के आसपास का प्रदेश ।

कलिंग—उड़ीसा से विजयापुर तक का प्रदेश ।

तोसल—पुरी जिले का घौली प्रदेश ।

मगध—प्राधुनिक पटना और गया ।

विदेह—तिरहुत ।

पुण्ड्र—बंगाल जिले का महा स्थान ।

ताम्रलिप्तक—दक्षिणी पश्चिमी बंगाल का तमलुक प्रदेश ।

मल्लवर्तक—बिहार के हजारीबाग और मानसूरी जिले का भाग ।

ब्रह्माक्षर—बर्मा के आस-पास का प्रदेश ।

हमयग—उत्तरी-पश्चिमी आसाम का हमजा प्रदेश ।

करकण्ठ—बनू जिले का काराण्य प्रदेश ।

बग—बंगाल ।

कोसल—रायपुर, बिलासपुर और सम्बलपुर ।

उत्कल—भिदनापुर जिले का पश्चिम भाग ।

मुद्गर—मुर्शिदाबाद ।

नैपाल—नेपाल ।

प्राग्ज्योतिष-गोहाटी

मलद—शाहाबाद ।

पश्चिमदेश :

देवसभा—देवास ।

सुराष्ट्र—दक्षिण कच्छियावाड ।

दशेरक—राजपूताने का मारवाड़ प्रदेश ।

भृगुकच्छ—मठोच ।

कच्छीय—कच्छ की खाड़ी के आसपास का प्रदेश ।

आनत—डारजा के आसपास का प्रदेश ।

अर्बुद—आबू पर्वत के आसपास का प्रदेश ।

ब्राह्मणवाह—सिन्धु के पूर्वतट का प्रदेश ।

यवन—भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा से मिला प्रदेश ।

दक्षिणापथ :

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र ।

- माहिष्क—माहिष्वर या माग्धाता ।
 प्रश्मक—निजामाबाद का बोधन प्रदेश ।
 विदर्भ—वराह ।
 कुन्तल—कनारा जिले का उत्तरी भाग ।
 मूर्पारक—केरल से अपरान्तक का भाग ।
 काची—काजीवरम् ।
 केरल—केरल (मालाबार ट्रावणकोर और कोचीन प्रदेश) ।
 कावेर—कावेरी नदी के पास का प्रदेश ।
 मुरल—मुरला नदी के समीप का प्रदेश ।
 बानबासङ्ग—उत्तर कनारा का वनवासी प्रदेश ।
 सिंहम—सिलोन ।
 धोल—तजोर और त्रिचनापल्ली के ग्रामपास का प्रदेश ।
 दण्डक—दण्डीवन ।
 पाण्ड्य—मदुरा, तिनावेली जिलो एव रामनद, ट्रावणकोर कोचीन राज्यों का भाग ।
 पल्लव—काची के चारों ओर का भाग ।
 पाग—पागो प्रदेश ।
 नागिकर—नामिक ।
 कोरुण—गरशुराम क्षेत्र कांठन ।
 कोल्लगिरि—कोल्हापुर ।
 वल्लर—वेकटगिरी, चित्तूर, वल्लोरी प्रदेश ।
 नदियाँ—जिन नदियों के नाम बदल गये हैं वे नदियाँ और उनके प्राधुनिक नाम निम्नलिखित हैं—
 गन्धु—मन्मथ ।
 विषासा—ध्याम ।
 देविका—दीग ।
 कुट्टु—कावुव ।
 चार्तघ्नी—मायूरमती की महापत्न्या का नाम ।
 चन्द्रभागा—चिनाब ।
 इरावती—रावी ।
 पितस्ता—रोहम ।
 शशवती—गावरगती ।
 पयोष्णी—पैनगगा ।
 हिहिम्बा—समंथनी, समन्त

पर्वत : इगो प्रचार हिमानय की जिन धेनी विनेप मे यमुना का उद्गम होना वह नदिद, दण्डुन का उद्गम स्थल तोह्लगिरि है । इसके अनिर्दिष्ट इन्द्रकीन

श्रीर कामरूप हिमालय की शाखाएँ हैं। दृहद्गुरु ही भावण्ट एक्वेस्ट है। चन्द्र-भागा जिस पर्वत से निकलती है वह चन्द्राचल, भ्रमरकटक की वह धेणी, जिसमें नर्मदा का उद्गम होता है मेकन, विण्ठ्यावन की देवपट स्थित श्रेणी दर्दुर, आसाम स्थित हिमालय की श्रेणी कामरूप श्रीर मिर्जापुर वा चुनार पर्वत चकोर कहलाता है। अन्य पर्वतों के नाम समान हैं।

राजशेखर से पूर्व भारत के जनपदों, ग्रामों नदियों एवं पर्वतों का उल्लेख कालिदास की रचनाओं तथा पातञ्जल महाभाष्य में मिलता है किन्तु वैज्ञानिक ढंग से भारत का पाँच खण्डों में विभाजन राजशेखर के सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान का ही परिणाम है। सातवीं शताब्दी में भारत में भ्रमण करने वाले चीनी यात्री ह्वेन-त्सांग ने भी भारत को (Five Indies) पाँच खण्डों में विभक्त किया है। वे पाँच खण्ड हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्यदेश। प्रतीत होता है कि भारत को पाँच खण्डों में वर्गीकृत करने समय इन सभी के विचार राजशेखर के मस्तिष्क में थे। उन्होंने सबका मनन कर समयोपयोगी एवं प्रशिक्षण स्पष्ट रूपरेखा को अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है।

उन्होंने इन जनपदों के प्रतिरिक्त अनेक नगरों का भी उल्लेख किया है। वे हैं—मिथिला, लंका, अयोध्या, चेदि, अवनति, कुशस्थली, साट, घोड़, प्रयाग, महोदय वान्यकुब्ज, गांधिपुर, वाराणसी एवं मालव आदि।

देशानुसार देश-प्रणाली

राजशेखर ने भारत के विभिन्न देशों के विभिन्न परिधानों की एक शक वाच्यमीमासा में दी है—

पूर्वदेश—अय वग, मुह्म, ब्रह्म तथा पुण्ड्र आदि जनपदों की स्थियाँ उत्तरीय वस्त्र इस प्रकार धारण करती थी जिनमें घुँघट मस्तक वा चुम्बन बरने थे और बाहुमूल वा स्पष्ट रूप में प्रदर्शन होना था।

पश्चिम, शूरसेन, हस्तिनापुर, काशमीर, बहोद, बाल्लोर, बाल्लबेय, आदि देशों की स्थियों का आधा वस्त्र जपन में लेकर घुटने तक लटका रहता था अर्थात् वहाँ की स्थियाँ कमर से लेकर घुटने तक लटकने हुए आसपास घुँघरे पहनती थी।

दक्षिणापथ की-मलय, मेकन, कुन्ना, केरल, पाप, मञ्जर, महासाठ, पांग और अल्प जनपद की कामिनियाँ भुजाओं के नीचे में बगल में आठियाँ छोटी थी।

अवनति, प्रदेश की स्थियाँ सभी घुटनों तक लटकने वाले घुँघरे तथा सभी भुजाओं के नीचे में बगल में आठियाँ धारण कर आसपास वा केन्द्र बनी रहती थी।

शिक्षा का केन्द्र : उज्जयिनी तथा पाटलिपुत्र ये दोनों शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। जहाँ काव्यकारो एवं शास्त्रकारो की परीक्षा होती थी। उज्जयिनी में कालिदास, भर्तृहरि, भ्रमर, उपसर्ग, धार्यभूर, भारवि, हरिश्चन्द्र, और चन्द्रगुप्त आदि परीक्षा में सम्मिलित होकर सफल घोषित हुये थे। फलस्वरूप उन्होने पट्टबन्ध का गौरव भी प्राप्त किया था। उज्जयिनी केवल काव्यकारो की परीक्षा का केन्द्र थी।

पाटलिपुत्र में शास्त्रकारो की परीक्षा होती थी। जहाँ से धार्याय उपसर्ग, पाणिनि, पिगन, व्याडि, वररुचि, तथा पतञ्जलि परीक्षित हुए थे तथा पट्टबन्ध से गौरवान्वित भी।

राजशेखर और परवर्ती साहित्य

नाथ्य साहित्य : राजशेखर के पश्चात् स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त कर सट्टक का जिन्होंने निर्माण कार्य किया, वे हैं १-नयचन्द्र २-रुद्रदास।

रुद्रदास : चन्द्रलेखा के कर्ता रुद्रदास सन् १९६० के आसपास के हैं। इन्होंने इस सट्टक में मानवैद तथा चन्द्रलेखा के प्रणय का वर्णन किया है। चन्द्रलेखा की शैली कर्पूरमजरी की शैली से बहुत कुछ मिलती है। कर्पूरमजरी पर ही यह आधा-रित है। भावो एवं शब्द का साम्य भी पर्याप्त मात्रा में दिखायी देता है। यथा—

कर्पूरमजरी

चन्द्रलेखा

रहरहसकला लोचनचोलापिधानं ^१	एदे चूसिभ-बोल-बाल महिला मालि- दुमेभ्राभया । ^{१००}
दो भागद दे अण्णाएण पडित्तए ^२	जदो पुस्व एच्च अन्हाण पुण परपराए मग्गमप पडिअत्तण । ^{१००}
माह एक्क कण्णारअण दिह, तामिहा- णीअद्दु ^३	इह महिमले जा कण्णामाप रमण भू आ कण्णमा त पुरदो दमेहि ^{३००}
कच्च माणिकक च मम आहरणे पउजी- अदि ^४ ।	माणिकरु-भणिति काम विविकणी आदि ^{१००} ।
सहस्र पाचिदम्ब ^५ ।	सट्टओ णट्टिदम्बो ^{१००} ।
एत्थ महसवरे ^६	अस्सिं छु सहस्र वरे ^{१००} ।
मह वड्ढावओतुत्त । तुय वड्ढाविमा मज्जा ^७ ।	दाणि अह वड्ढावइस्स अय्यउत्त, अहं हि तुम वड्ढावइस्स ^{१००} ।

१ कर्पूरमजरी १-१५

२क चन्द्रलेखा १-२६

४. कर्पूरमजरी १-२०

५क चन्द्रलेखा १-४

७. कर्पूरमजरी १-१२

१क. चन्द्रलेखा १-१३

३. कर्पूरमजरी १-२५

४क चन्द्रलेखा २-९

६ कर्पूरमजरी १-७

७क. चन्द्रलेखा १-१३

२ कर्पूरमजरी १-१८

३क चन्द्रलेखा १-२९

५. कर्पूरमजरी १-४

६क. चन्द्रलेखा १।२३-२४

जदोण बत्थूरिआ कुग्गामे वणे वा विक्किणीअदि^१ ।

एद जेव भाअछदि
देवो ता कुज्जवामणकिरादवत्तिमवर
सोविदल्लाण एमो हलवोवो^२ ।

विह्निआ—अपच चामलगाहिणीओ
पुब्ब दुवारामि तिस्से रक्ख कादुं
ठाविआओ ।

कलहामिआ—पच सेरधीओ उत्तरदु-
वारामि पोमिदाओ

कुन्दमाला—तम्बोलकरकवाहिणीओ
पच्छिमदिमाए ठाविदाओ—अण-
गकेली—मज्जणपालीओ उत्तर-
दिमाए आण्ठाओ ।

मन्दारवदी—मुहामिदपदिआओ
अण्णकखीकिदाओ—^३

जयचन्द्र-रम्भामंजरी : नायक जयचन्द्र और रम्भा के प्रणय पर घाघारिन
इम सट्टक पर राजशेखर की छान स्पष्ट दिखायी देती है । प्रान्ती रम्भामंजरी
को उन्होंने कर्तूमंजरी की प्रोक्षा श्रेष्ठ कहकर गर्वांतिक की है किन्तु वस्तुतः उसमें
राजशेखर का अनुकरण ही लक्षित होता है ।

राजशेखर की अनुकृति निम्न अंशों से स्पष्ट हो जाती है —

कर्तूमंजरी	रम्भामंजरी
पिए विग्गमनेहण । एको अह वट्ठावओ तुग्ग एक्का तुम वट्ठाविआ मज्जा । वि उन दुवे वि अग्गे वड- वाविआ कचणवण्ड ^४ ।	देवी—वट्ठयाप्यसे—ता अहपि पडि- वट्ठाविआणववि पडिवत्तुमिच्छामि प्रिये वतन्तमेने नाह वर्यापवस्तव नापि त्वमवि वट्ठापिवा मम । किन्तु घाघारिवंधोपच परमहोमो ^५ ।

१ कर्तूमंजरी १-१८

२ क. चन्द्रनेखा ३-२४

४ कर्तूमंजरी १११६

१ क. चन्द्रनेखा २-९

२ कर्तूमंजरी ४-९

४ क. रम्भामंजरी ५० ११-१२

२ कर्तूमंजरी ३-३४

३ क. चन्द्रनेखा ४-२६

विदूषक-तुम्हाण सव्वाण मज्जे अहम् अस्म मे पाणवल्लहाए पियामहो पा-
 एको कालवखरिओ जस्स मे ण्डियाण पुत्थयवाहभाणण—
 'समुरस्स ससुरो पट्टिमपरे पुत्थि विचारणे आसि'*

तदो आगद दे अण्णएण पंडित्तए^१ । अहो पारपज्जेणेव पक्काहिदा तुम्हाण
 पत्थूरिया कुण्णये वने ना विककीणी कुले विज्जा^२ ।

ईदिसस्त रामलउलस्स भद् भोदु जहि णि एयणं पत्थूरिआ कुण्णामे विवद-
 चेडिआ वग्हेणेण समं समसीसिआए यदि ।^३ आ. मह ईहि राउने
 दीमदि-^४ आगच्छतरस ज जीवयव्वहरो स्थाम्मिराउले—दासीओ आ-
 धिज्जाति दासिओ पूइज्जाति उत्तमाण वभण्णं—ण कोवि वुज्जेदि ।^५

णिअनेहणीए—गेहे जेव्व रिठ्ठिअस्स ता भद् भोदु एदस्स रायकुलस्स गिय-
 ण हु व हु आगामिस्स ।^६ वल्लहाए—गिहज्जेव चिट्ठिस्सं
 इह नागमिस्सं ।^७

विश्वेश्वर-सिद्धगारमज्जरी : १८ वीं शताब्दी के विश्वेश्वर ने राजा
 राजशेखर और शृंगारमजरी के प्रणय की कथा सिद्धगारमजरी सट्टक में बर्णित की।
 सिद्धगारमजरी में कर्पूरमजरी के भाव और वर्णन की छाया स्पष्ट दिखायी देती है।

इन परवर्ती साहित्यकारों ने केवल कर्पूरमजरी का ही अनुसरण नहीं किया।
 इस सन्दर्भ में विद्वशालभजिका भी दृष्टव्य है। कर्णमुद्री की विह्वल की
 वर्णमुन्दरी नाटिका की कथावस्तु एवं वर्णन शैली आदि पर विद्वशालभजिका
 का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।

(कर्णमुन्दरी) नायक स्वप्न में किसी अनन्यमुन्दरी को देखता है। वह
 मुन्दरी गीम्र ही चली जाती है। राजा उसी का स्मरण करते अधीर होता है।

- | | |
|-----------------------|------------------------------|
| १. कर्पूरमजरी १।१६-१७ | १४. रम्भामजरी ५० १८-१।३१ |
| २. कर्पूरमजरी १-१८-१९ | १५. रम्भामजरी १-३३-३४ |
| ३. कर्पूरमजरी ५० २३ | १६. रम्भामजरी ५० १६ |
| ४. कर्पूरमजरी ५० ३० | १७. रम्भामजरी ५० १९५ व ५० २० |
| ५. कर्पूरमजरी ५० ३२ | १८. रम्भामजरी ५० २० |

उमका मित्र विदूषक उमै मदनीयान चलने के लिए बहना है जिनसे विरही राजा का मन स्थिर हो। प्रकृति शोभा का निरीक्षण करने हुए वे तरंगशाला पहुँचते हैं वहाँ पति पर उसी स्वप्नदृष्टा नायिका की प्रतिरूपि चित्रित है। नायिका उस नायिका के सौन्दर्य के वर्णन में मान है इसी समय देवी अपनी गद्दी हारलता के साथ प्रवेश करती है। राजा ने यह पूछने पर कि वह किसके गुणों का गान कर रहा है—रानी का कहार रानी को निशंक करती है। किन्तु वह चित्र स्पष्ट रूप से कर्ण-मुन्दरी का है। अतः रानी राजा को मन स्थिति समझ जाती है।

दूसरे अंक में विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि राजा बुनियात रानी को भनाने में सफल हो गया है। प्रमुख दृश्य में विरहाकुल राजा को तरंगशाला में मुन्दरी का चित्र देखकर मन बहलाने की सलाह विदूषक देता है। दोनों तरंगशाला में पहुँचते हैं। राजा उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए अभ्युत्सुक है। उन्हें नायिका लीलावन के मरोवर में स्नान करती हुई दिखायी देती है। मञ्जनामञ्जना स्नान का वर्णन करते हैं। नायिका स्नान के पश्चात् सला मुहम में प्रवेश करती है और विदूषक उमका अनुसरण करते हैं। नायिका भी मदन-क्षरोपे में राजा का स्मरण करती हुई वह विरहशह को न सह सकने के कारण भ्रुञ्छ हो जाती है। गुह्य में छिपा हुआ राजा शोध वहाँ पहुँचता है। चेतना-लक्ष्य नायिका एव नायक के मिलन की याता देवी को ज्ञात होती है। रानी की भना में नायिका रानी के आने के पूर्व ही वहाँ से प्रस्थान कर देती है।

तृतीय अंक में रानी कर्णमुन्दरी का वेश धारण कर तथा सखी हारलता कर्णमुन्दरी की राखी का रूप धारण कर राजा के समक्ष उपस्थित होती है। राजा के मन का रहस्य जानने के बाद वह अपना वास्तविक रूप दिखाती है। राजा अपराधी की भाँति उसके करणों पर अपना मन्त्रक झुकाने की कोशिश करता है किन्तु बुद्धा रानी भनभनाती हुई चली जाती है।

चतुर्थ अंक में नायिका कर्णमुन्दरी का विवाह तेष्य से व्यवहृत कर, वरवेष में राजा को भी सुजोषित कर रानी दोनों का वाधिग्रहण कराती है। इसी समय राजा के दूत का आगमन होता है जो राजा के चत्वरणी होने की घोषणा करता है। भरतनामप के पश्चात् पात्र चले जाते हैं।

इस नाटिका में यद्यपि सलावली का अनुकरण है, (वासवदत्ता भागविरा के देश में राजा से मिलने जाती है। इस नाटिका में रानी कर्णमुन्दरी के वेश में) तथापि विद्वज्जालभजिका का प्रभाव अधिक लक्षित होता है।

परिचित भावगाम्य से घन निम्न है—

विद्वज्जालभजिका

वर्णमुन्दरी

श्वनः रिमेर्गिम् सविदिद्युगाभाज्
ज्ञानं रिमेन दुभवात्मनः मन्वदेव ।
दुन्दरे—नरनायकाधी घनानरे
तानिप्रकारका निम्न
सनाहन-रानित धेगाकरितापी ।
देवी ध्यातम्य धपनं धनमानननु
रग-पुर गायत्री मह सौविदन्तौ । १

पणभापामंनगामनमहम्मध ध्यापण
मउकभामम् उशरीष शमिष
विशशिपादुवारेण पमोपउम्बाग-
पविगिष २

श्वनोजी निम्नेन्नागमार मवा-
दीति न पम्प—दृष्टा कुं-
गोत्ता—पौर्तिकावन्क
धातारं निमदिन नो दमितः
मधमः । वागाविन्वुपहामगा-
विनग्ना प्रसोर्गि नाविपृथः ।
निस्वाग परिव्वा कि तु
ज्ञानकेः श्यामीदृष्टप्रवताभवा-
नारत्नमयप्रदीप विरुणधेपि-
विमुक्तान्तवा ।

इसे सेवागदपविन्दमहम्मसकिष्ण
विनाम गाविभनेन्वोरमुन्दरवण
धत्वाणगण परिहृत्वि रण-
धनुषा रिष्वाए विइविकुमासो
पीमरीषा ३

रिती भी भवि वा ध्यकित्व रिता उन्न एव महान् है इसका महत्वपूर्ण सवेन हम बात में मिलता है कि उसने उत्तरवर्ती कवियों भयवा वाध्यरूपों पर अपनी वितनी तथा र्शती छप छोड़ी । उपर्युक्त चर्चा में राजसेखर के नाट्य-साहित्य की महत्ता स्पष्ट हो जाती है ।

कार्यशास्त्रीय साहित्य

वाक्यमीमांसा में ससृष्ट साहित्य शास्त्र की बुनीधं परम्परा के परिष्कृत एवं परिभाजित रूप का दर्शन होता है । पूर्ववर्ती छाषासों के विचार, उनका

१ विद्वज्जालभजिका १-२१, वर्णमुन्दरी १-३१ ।

२ विद्वज्जालभजिका १-१९, वर्णमुन्दरी १-४० ।

३ विद्वज्जालभजिका १-२२, वर्णमुन्दरी १-४८ ।

यथावसर समर्थन एवं खण्डन काव्यमीमांसा ग्रन्थ में विद्यमान है, किन्तु कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय काव्यशास्त्र के लिए सर्वथा नवीन है। राजशेखर की इसी मौलिकता का प्रभाव परवर्ती आचार्यों पर स्पष्ट देखा जा सकता है। कतिपय आचार्यों ने इस सम्प्रदाय के कुछ विषय शब्दों ग्रहण किये हैं।

चतुर्दश, पञ्चदश एवं षोडश ग्रन्थियों में वर्णित कवि-समय को जिन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है, वे आचार्य हैं—१. जिनसेन, २. अमर, ३. देवेश्वर, ४. केशव मिश्र, ५. हेमचन्द्र एवं ६. वाग्मट।

आचार्य हेमचन्द्र एवं आचार्य वाग्मट ने राजशेखर वर्णित ग्रन्थों, हरण, देश-विभाग एवं काल-विभाग विषयों को शब्दों उद्धृत करने में गौरव ममता है। परिशिष्ट में सलग्न सूची में यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी। यहाँ केवल ग्रन्थाय एवं पृष्ठों का निर्देश किया जा रहा है।

विषय	काव्यमीमांसा राजशेखर	काव्यानुशासन- विवेक हेमचन्द्र	काव्यानुशासन- वृत्ति वाग्मट
काव्याथं यानि.	अ० ८ पृ० ३५- ४१	अ० १ पृ० ५, ६, ७, ११	अ० १ पृ० ५, ६,
ग्रन्थव्याप्ति	अ० ९ पृ० ४२- ४६	अ० ३ पृ० १२२, १२३	अ० ६ पृ० ६०- ६१
हरण	अ० ११-१२- १३ पृ० ५६ ६४	अ० १ पृ० ८-१०	अ० १ पृ० १२- १३
देश विभाग	अ० १७ पृ० ८९ ९८	अ० ३ पृ० १२६- १३०	अ० १ पृ० ३-६
काल-विभाग	अ० १८ पृ० ९८ ११२	अ० ३ पृ० १३०, १३२	अ० ६ पृ० ६५- ६७

राजशेखर एवं विश्वनाथ

वाग्म-सुरय के अज्ञ-ग्रन्थों का निर्देश करने मन्व राजशेखर ने रम को काव्य की आत्मा माना है। परवर्ती आचार्यों में विश्वनाथ भट्ट राजशेखर में अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने काव्य शास्त्र में ही 'वाग्म रमान्तर काव्यम्' कहकर रम की अतिशयोक्ति को स्पष्ट किया है। राजशेखर द्वारा प्रणीत काव्यमीमांसा की समन्वयगत रचनात्मकता की अनुसृष्टि मन्वट के ग्रन्थ में उपलब्ध होती है। आचार्य विश्वनाथ का नाम भी माहिष दरंग में समन्वयगत प्रणाली को प्रस्तुत करने के कारण उल्लेखनीय है। दोनों ही आचार्य राजशेखर के शिष्य हैं।

ही का स्थान ऊँचा उठरता है । परन्तु भर्तृमेष्ठ की एक मात्र कृति 'हयग्रीववध' अनुपनव्य है । अतः सम्वृत साहित्य में हम उनका स्थान, अथवा राजशेखर में उनकी तुलना करने में अममर्थ है ।

भवभूति एवं राजशेखर : कहा जा चुका है कि राजशेखर अपने को भवभूति का अवतार मानते हैं । यह सत्य भी है क्योंकि 'बालरामायण' में महावीरचरित में ममानता रखने वाली इतनी अधिक पक्तियाँ उपलब्ध हैं कि लगता है कि भवभूति ही पुनः राजशेखर के रूप में अवतरित हो गये हैं । कवि के काव्य-कौशल, अभिव्यञ्जना एवं शिल्प आदि पर भवभूति की अमिट छाप दिखायी देती है ।

कालिदास एवं राजशेखर : राजशेखर ने कविकुलमूढ कालिदास के भावों को भी यथाम्थान ग्रहण किया है । जिनका निर्देश नाटक के प्रसंग में हो चुका है । कालिदास के काव्य में प्रायः कोमल तथा ललित उपादानों की 'अभिव्यञ्जना' हुई है । प्रकृति-वर्णन में भी वे प्रकृति के मौम्य रूप का ही चित्रण करते हैं । राजशेखर ने केवल मौम्यरूप का ही वर्णन नहीं किया अपितु वे प्रकृति के रौद्ररूप को भी झाँकी प्रस्तुत करते हैं । कालिदास व्यञ्जना-प्रिय है । राजशेखर अभिधा प्रेमी है । वे अपनी शाब्दी ध्वनि के ध्वनि मात्र में ही दृश्य को नेत्रों से सामने उपस्थित कर देने की क्षमता रखते हैं ।

वाग्मीकि में प्रेरणा पाकर, मेष्ठ की वक्रोक्ति को अंगीकृत कर तथा स्वयं को भवभूति में विलीन कर राजशेखर ने 'बालरामायण' की सज्जना की । इसके अनिश्चित नाटिका एवं मट्टक नामक उपरूपक का भी उन्होंने प्रणयन किया ।

राजशेखर की उपलब्धि

सम्वृत-साहित्य में नाटिकाओं का शुभारम्भ श्रीहर्ष ने किया है । उनकी 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' परवर्ती नाटिकाकारों के लिए आदर्श बन गयी हैं किन्तु इन नाटिकाओं पर कालिदास के मातृकान्तिमित्र की छाया स्पष्ट झलक रही है । इनके अध्ययन में विदित होता है कि धनपुर की प्रणयलीलाओं का उत्पादन इनका प्रमुख लक्ष्य है । धनपुर में सम्बन्धित पात्रों की संख्या एवं उनके कार्य नियत होते हैं । नायक-नायिका के अनिश्चित राजा-रानी के परिचारकगण, विदूषक, राज्य के कर्मचारी, मंत्री तथा स्त्री-प्राणियों में महादेवी की प्रमुख भूमिका के साथ दूतों, प्रतिहारों परिवारिका आदि का निर्वाहण किया जाता है । राजशेखर ने इन परिभाषों का पालन किया है किन्तु प्रमथानुसार परम्परा में भीतिरता का भी आधिकारण किया है । हर्ष एवं कालिदास

ग्रन्थाय मे अलंकार-शास्त्र की पडइग के समकक्ष प्रतिष्ठा, काव्य की पन्डहवीं विद्या के रूप मे स्थापना, साहित्य की पञ्चमी विद्या मे गणना, काव्यपुरुष की अवतारणा, साहित्य विद्या-बधू द्वारा काव्य-पुरुष की खोज मे रीति-वृत्ति-प्रवृत्ति की गवेषणा, रसि की दित्तचर्चा, कवि-भेद, काव्यार्थ योनियो मे चार ग्रन्थ स्रोतो का प्रवेश, हरण एव कविममय का विस्तृत विवेचन आदि समस्त विषय राजशेखर के उर्वर मस्तिष्क की उपज हैं । जिन विषयो का केवल सकेत-मात्र है, वे हैं—
 वनोदिक एव भ्रौपनिपदिक प्रकरण । इनके सकेत मात्र से मौलिकता की प्रतीति होती है । इस प्रकार शास्त्रीय विज्ञेपण मे राजशेखर ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

राजशेखर एक स्वतन्त्रचेता आचार्य थे । उन्होंने, भरत, वामन, उद्भट, रद्रट एवं आनन्दवर्धन की मान्यताओं को परिमार्जित एवं प्रतिष्ठापित करने का अथसाध्य कार्य भी किया था । उनको यह विशेषता उनकी समन्वयात्मक प्रणाली मे दृष्टिगत होती है । आनन्दवर्धन ने प्रतिभा को श्रेयस्कर माना है । वे कहते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों ही समान रूप से श्रेयस्कर हैं । "प्रतिभाव्युत्पत्ती मिय समवेते श्रेयस्यौ इति यायावरीय ।" इसी प्रकार रस के विषय मे पाल्यकीर्ति और अवन्तिमुन्दरी के विभिन्न मतों का उन्होंने मनुन समन्वय किया है ।

कुछ विद्वान् एक लोक की, कुछ दो की, तीन की और कुछ तो सात से डक्कीस लोको तक की बल्पना करते हैं । राजशेखर ने "सर्वमुपपन्नम्" कहकर सभी को स्वीकृति प्रदान की है । उनका जिस स्थल पर आचार्यों मे मतभेद है वहाँ वे स्पष्ट शब्दो मे अग्रहमति प्रकट करते हैं । वे किसी भी बात को अपनी तरफुडि की बसोटी पर कमकर ही स्वीकार करते हैं ।

भरत मुनि को आचार्यत्व प्रदान करने वाला रस-सिद्धान्त है । किन्तु यह सिद्धान्त केवल नाट्य-रस से सम्बद्ध है । राजशेखर ने भरत मुनि के इस सूत्र पर रस-साम्प्रदाय का भव्य प्रसाद छडा करने की योजना बनायी । उन्होंने आचार्य भामह और दण्डी के शब्दार्थमय शरीर को काव्यपुरुष के रूप मे मूर्त स्वरूप दिया है । वे वामन की रीति विषयक आन्यताओं मे महमत हैं तथापि उन्होंने रीति, प्रवृत्ति और वृत्ति के उद्गम की बल्पना प्रमनुन कर वामन की रीति को और भी परिमार्जित कर दिया है । साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र मे इसका महनीय कार्य

परिशिष्ट १

राजशेखर को पुनरुद्धितयां

श्लोक	बाल- रामायण	बाल- भारत	विज्जमाल- भजिवा	कर्पूर- मञ्जरी	काव्य- मीमांसा
१ अककणमकुण्डलम्			३१९२	३१२६	
२. अनुकूल हिर्दव	११५-६		४१२०-२१		
३. अयि पिवत चकोरा	५१७५		३११५		
४. आपद्नातिहर	१११८	११११			
५. आद्य कन्दो वेद-	१११८	११३			
६ उतालालक भजनानि	२१२३		२१५		
७. कण्ठे मौक्तिकरुदाय-		११२७	३११६		
८. कर्णे स्मेरशिरीषम्	५१२६				१८१११
९ गत स कालो	३१२				७१२१
१० गभंश्वरीषु वीरुधाम्	११२३		११२३		१८११०८
११. तद्वन्न यदि मुद्रिता-	२११७		१११८		
१२ तनुलग्ना इव ककुमा				३१६	
१३ तरण्य दृशो मनाक्	३१२५		३१२७		
१४ दन्तोलूखनिभि	१०१५८	१११९			
१५ द्विलम्पोमि पुराण-			११११		१०११५
१६ धत्ते यत्किन्	७१३८, १०१ ८८				९१८५
१७ घृथा हि नाम नाट्यस्य	१११९-२०	१११३-१८			
१८. निवेन्द्रागर जीवर्षाण-		११२०	२१२२		
१९. पातुश्रोत्ररमायनम्	१११७		११७		
२० पाणिप्रस्थं वंदुल-	३१३९	११६५			
२१. प्रेषान् मे दन्तिदप्र-	८१११		८१२३		
२२. प्रथयति पात्रविशेषान्	११००	१११८			

२३. वभूव वाल्मीकि-	१११६	१११२	
२४. ब्रह्मोद्भ्य. शिवमस्तु	१११०	११५	
२५. मया मूधि प्रहृते	६१११-		४१६
	१६		
२६. मयि शिशिरतरौः	११४-२७		४१५
२७. मूल बालघि वीरधाम्			४१५
२८. यावामि हे चरत	७१४५		१७१९६
२९. या स्त्रीणामपि	७१३९,१०१४६		
३०. यत्काल मगरेण	७१३९,७१४३		१४१५०-
३१. यन्वद्रावित-	३११४		५१
			१३१७१
३२. येमीमन्तितगाल-		११२	
३३. योगोन्द्रच्छन्दसा	११९	१११५	
३४. राजमूयत्रतोयंजवा	२१७	२११३	
३५. नम्पाकीना किरल.	५१३५		१५१९९
३६. वीराचण्डमिदण्ड	३१४४,७१६८		
३७. धिय प्रमूते		११९	११८
३८. तमव्यायाग्धाम्	११२४		८३८
३९. सपदि सखीनिभूतम्	५१४१		११२४
४०. मद्यश्चन्दनपक-	१०१४०		३१२
४१. साम्य सम्प्रति	५१४०		११२५
			१८१९७-
			१०९
४२. सूत्रधारचलद्-	५१६,७१७७		
४३. सीघ्रादुद्विजते	५११०		३१२
४४. हारोऽय वेरल-		२११५	१११७

२ अन्य ग्रन्थों में राजशेखर का उल्लेख तथा उद्धरण .

(१) अभिनवभारती . अभिनव गुप्त

१ यथा बानरामायणे इत्यादिना ।

२ राजशेखरेण मुक्तामित्यर्थः ।

३ अनुत्पन्न महम् इत्यादी

म २ पृ० ३२०

प २ पृ० २९५

ध १ पृ० २९

(२) वशाहपक : धनजय

- | | |
|---------------------------------|------|
| १. असद्भूत मिय. स्तोत्रम् | ३-१५ |
| २. आनन्दो यथा विद्वशालभजिकायाम् | ४-५३ |

(३) वक्रोचितजीवित कुन्तरु

- | | |
|---------------------------|--------|
| १. अयि पिवत चकोरा- | १८१ |
| २. अस्मत् भान्यविपर्ययात् | ६७ |
| ३. आज्ञा शत्रुशिरामणि- | १९९ |
| ४. आन्दोल्यन्ते कति- | ४८६ |
| ५. आयंष्याजिमहोत्सव- | १३३ |
| ६. आ समारं कई | ३१७ |
| ७. इत्युद्गते शशिति | २६४ |
| ८. इन्दुलिप्त इव | ४१७ |
| ९. एकाम् | ७१,२२१ |
| १०. कर्पूर इव दारुधीर्षिप | ४२३ |
| ११. गर्भग्रनयीषु वीर्याम् | २०१ |
| १२. ताम्बूलीनद्धभुग्ध | १८० |
| १३. दाहोम्भ प्रमृतिम्भव | ७२,२४६ |
| १४. नमस्वता वासितकल्प- | २५४ |
| १५. निष्णयसि निवेण- | १७६ |
| १६. वद्धस्यशंस्तव | २७६ |
| १७. मध्येऽकु रपत्तलवा | ७६ |
| १८. पाडिम्नि मग्न वपु | ७६ |
| १९. माविष्ठीवृत्त | ४३८ |
| २०. मैथिली तस्य दारा | ७७,८२ |
| २१. यस्वारोपण कर्मणि | २५३ |
| २२. रुद्रादेस्तुलनम् | ३१ |
| २३. शाम्भवाणि चक्षुर्नव | २७९ |
| २४. मद्य पुरीपरिमरे | ४९ |
| २५. गवन्ती रघु- | २०७ |
| २६. सभूनिद्रुहिणान्वये | २०० |

	१८४
२३. हे नागराज	१२८
२८. हेनाथमल	४४४
२९. शाशास्त्रार्थशिवदुःख-	८४
३०. रामेण मुग्धमनसा	४३८

(४) मरस्वनीयप्रश्नसंग्रह—भोजराज

१. अत्रान्तरे मन्त्रित्तर-	७२१
२. घाहारे विर्गिन.	४४४
३. इन्द्रविप्ल इवात्रनेन	४६४
४. दीनामाय विनिर्घोजि	३२२
५. ज्ञाने स्वप्नविदो	३०६
६. तद्भवत्तं यदि	४४४
७. तरण्य दृशोऽग्रणे	४४२
८. दमोमि तपि-	६९३
९. निर्घाम्य भमनधियम्	१६६
१०. पर जोषहा उष्ट्रा	२४१
११. फूलकार वनभक्तरगमम्	६९३
१२. भद्र भोदु मरम्भदध	३०६
१३. श्रिय प्रदुग्धे विपद-	१६८
१४. गुधावडशामम्	४६३
१५. वपाने मात्रारः	३६६
१६. क्व पेष ज्योम्लाम्भ.	१७८
१७. गणपुरीपरिगरेऽपि	७४
१८. गीष्वाडुद्विजने	६३१

(५) शृङ्गाप्रकाश . भोजराज

१. गर्भारविधानम् भोज धीर श्रीचित्त	१८७
२. तत्र दोष्यहानम् भोज and वत्रोक्ति	
३. शृङ्गारस्तु भवेद्दाम्य भोजार्थ Conception of रमा's in the शृङ्गारप्रकाश	४९३
४. प्रकाशविषय भोज धीर माद्वयशाम्भ	६०८

५.	बभूव वन्मीकिभवः Authors and works quoted in शृ. प्र. ७८५	
६.	निर्दोषदशम्य Authors and works quoted in शृंगारप्रकाश १८२	
७	उक्तिविशेष काव्यम्	१०५
८.	प्रथमविशेषास्त-	१०७
९	वच्छेमी	२०१
१०.	केचित्	२९५
११	तथा हि	५४१
(५)	औचित्यविचारचर्चा—शेमेन्द्र	
१.	ज्यायान् धन्वी	१९१
२	वर्णादीदशनाकित-	१५३
३	पोलन्त्य प्रणयेन	११८
४	मावा मुचय-	९३
५	स्त्रीणा मध्ये मजिलम्	६३
६	चिताचक्र चन्द्र	४३
७	एतस्या ह्मर-	३५
८	यत्पावतीहठ-	२७
९	सबधी पुर-	१९
१०	नाले शौर्यमहोत्सवस्य	२०
(६)	कविकण्ठाभरण . शेमेन्द्र	
१	नखदमितहरिद्राव	१०७
(७)	काव्यप्रकाश भन्मट	
१	ये स्रवागिरिमेषला-	४६८
२	अत्तामीन् फणिपाश-	५११५
३	पून्वूकर वलमकूर-	७३१०
४	आज्ञा शरुकिष्ठाभार्णि-	७२७९
५	राममन्मथशरणे	७२५५
६	मनूणचरणपालम्	७२२७
७	आपाचापं स्त्रिपुर-	७२०२
८	वर्षुं इव दग्धोऽपि	१०११०७
९	मह दिप्रहृणिसाहि	१०११२२
१०	कपाले मार्जार	१०११३२
११	दशा दग्धम्	१०११३८

(८) अलंकारसर्वस्व : रय्यरु

१. इन्दुलिप्त इव	१९२
२. इन्दोर्लक्ष्म	२०८
३. कर्पूर इव	२३५
४. चकोर्यं एव	११९
५. दाहोऽम्भ. प्रमृतिम्पच	१०७
६. दृशा दग्धम्	२५६
७. न्यचतनुश्चित-	२९४
८. पृथ्वि स्थिरा भव	२०३
९. लोकोत्तरं चरित-	२०२

(९) काव्यानुशासन वाग्भट

१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थं योनि)	मध्याय	१	५,६
२. प्रकृति (अर्थव्याप्ति)	"	४	६०,६१
३. हरणम्	"	१	१२,१३
४. कविसमय	"	१	७ से १२
५. देश.	"	१	३-४
६. काल	"	४	६५,६७

(१०) काव्यानुशासन . हेमचन्द्र

१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थयोनय)	"	१	५,२८
२. प्रकृति (अर्थव्याप्ति)	"	३	१२२,१२३
३. हरणम् (उपजीवन शिक्षा)	"	१	८,१०
४. कविसमय	"	१	११ से १६
५. देश	"		१२६,१३०
६. काल	"	३	१३०,१३५

(११) काव्यकल्पलता . शरिसिंह एव ग्रमर

१. कविसमय	३०,३१
-----------	-------

(१२) अलंकारचिन्तामणि . जिनमेन

१. कविसमय	७,८
-----------	-----

(१३) काव्यकल्पलता—देवेश्वर

१. कविसमय	४०,४२
-----------	-------

(१४) साहित्यदर्पण - विश्वनाथ

१. सद्यः पुरीपरिमरेऽपि	३११४
२. भो लकेश्वर	३१२३४
३. आहारे विरति.	४११०
४. श्रवणं. पेयमनेकं.	६१२०
५. कालरात्रिकरालेऽप्यम्	६१२०७
६. अत्रामीन् पणपाण-	६१२०८
७. चापाचार्यंस्त्रिपुर-	७१८
८. उदन्वच्छन्ना भू	७१११
९. भाजा शक्रशिखामणि-	१०१७६,१०१५
१०. दशादश	१०१७६,१०१५
११. चकोर्य एव	१०१६९
१२. इन्दुलिप्त इव	१०१५८
१३. पृथिव्यं स्थिरा भव	१०१६१
१४. तद्वन्न यदि	१०१८३

(१६) अलङ्कारमहोदधि नन्द प्रभसूरी

१. भाजा शक्रशिखा-	१५७
२. आहारे विरति	२६६
३. इन्दुवन्दे शशिनि	२०
४. इन्दुलिप्त इव	२८३
५. इन्दोलेऽम् त्रिपुरजयिन्	२९१
६. उदन्वच्छन्ना भू	१३३
७. चापाते भार्जरी	२४८
८. चापूर इव	२९६,२
९. चापाचार्यं	२६,१४६
१०. चित्रे चतुर्दश	१८८
११. उदन्वच्छन्ना शशिनि	१३७
१२. नरक्य इमांशुमने	१३६

१३.	दृशा दग्धम्	३०३
१४.	गाहन्ता महिषा	१३४
१५.	निर्माल्य नयनधिय.	९७
१६.	फूल्लूक्कर कलमकूर	१७०
१७.	अच्चन्द्रकोटिकर	१९५
१८.	श्यामा श्यामलीमान.	८४, १६१
१९.	सबधी रघु-	२४४
२०.	श्रीणीबन्ध-	३०२

(१५) अलंकार कोस्तुभ . विश्वेश्वर पण्डित

१.	अकुकुममचन्दनम्	३१३
२	इन्दुलिप्ता इव	२८७
३.	दूरे किञ्जहु	३९१
४.	दृशा दग्धम्	४०८
५.	पर जोण्हा	३२२
६.	यद्धोताजन-	३५२
७	किसलयकरण-	३३२

(१६) कुबलयानन्द . अण्यदीक्षित

१.	उन्दोलंक्षम	२३१
२	दृशा दग्धम्	१७३
३	श्रीणीबन्ध	१८०
४	मुधात्रद-	४६

(१७) बित्रमीमासा . अण्यदीक्षित

१.	मुधावद्ध-	१६३
२	स. व पाषादिन्दु	२७४
३.	दाहोऽम्भः	३२०
४.	कपाले भार्जार	२५२
५	अस्मद्बिभ्रम-	२५१
६.	इन्दुलिप्ता इव	

३. राजशेखर द्वारा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	वाक्यमीमांसा पृष्ठ संख्या
१ ऋग्वेद	—	६, २८
२. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास	१२, २४
३ रघुवणम्	कालिदास	१२, ४१, ७६, ८५
४ कुमारसंभवम्	कालिदास	१२, ४०, ४४, ४८, ८१, ८४, ९६
५. बेणी महारम्	भट्टनारायण	१९, ३२
६. एतरेय एव शतपथ		२८
७ निरुक्तम्		२२, ५८, ७०, ८५
८ किरातार्जुनीयम्	भारवि	३५
९ महाभारतपर्व	—	—
१०. सूर्यशतकम्	मयूरभट्ट	३५, ९५, ९९,
११. विश्वामोर्वशीयम्	कालिदास	३५
१२ रामायणम् (विश्विन्वा- वाङ्)	वाल्मीकि	३६
१३ जानकीहरणम्	कुमारदास	३६
१४ वायुपुराणम्	—	—
१५ गिर्युपासवधम्	माघ	३६, ४२, ४२, ४४, ६०, ८६
१६ भगवद्गीता	व्यास	३७
१७ महिम्न स्तोत्रम्		३७
१८ कामसूत्रम्	वाल्म्यायन	३९, ६७
१९ मानवीमाधवम्	भवभूति	४८, ८६
२० समरशतकम्	समरक	४७
२१ वृन्दावन यमबाधम्		५७
२२. नारदस्मृति		५९
२३ गोडवहो	वाकानिराज	६२
२४ विजयवा		६७
२५. वादम्बरी	बाणभट्ट	७६, ८८
२६. मेषद्रुतम्	कालिदास	८६, ९६
२७ सैन्धवीय गीता		९९

४. राजशेखर.के नाटकों के सुभाषित

प्राकृत-सुभाषित

१. अण्णेणमिलिदस्म मिधुणस्म मअरद्धमसामणेण पस्स पणअण्णठि प्रेमम ति छइल्ला भणति ।
२. अण्ण णिमित्तमिह कि पि तमत्थि मण्णे जेणणणाओ हिअहिहिण ओमग्ति ।
३. अहिदेवअ व्व णिवमइ तह विहु तारुण्णाए लच्छी ।
४. अरभरमणिज्जाइ कल्लाणाइ होति ।
५. अहवा वा वण्णणा बडलावली गधभारवई
६. अदेव देवउत्त, अनवग्गे लेहो, जदो न दीमदि सा ।
७. एद त सीमे मण्णो देमतरे वेज्जो ।
८. कच्च अज्ज वि सो ज्जेव मिरित्ताली पत्तमचओ ताओ ज्जेव अकररपणीओ ।
९. को अण्णो चदाहितो समुद्वडण विअडो ।
१०. कि तुम अज्जाजिदो विअ किपि किपि बुग्गुराम्णो चिट्ठामि ।
११. कि ण् कच्च अणभिण्णमि कदप्पवरिआण । ज दाणि णव णव कोउहन कामिजणे ।
१२. कि गदे मल्लिने मेदुवधेण कि वा वुत्ते विवाहे नक्खत्तपरिक्रमाए ।
१३. कि उव्वेत्तदि केत्तिकदलीए करिणुण्डादडविडो ।
१४. कि विअ मक्कडो वरिट्ठाणं वरणिज्ज पुच्छदि ।
१५. कध महाभाअणेअज्जणत्तज्जसिद्धि विअ चित्तोवणदा विअमही ।
१६. तुम भण दाव उण अह भणिग्गम । पडिम महप्रारमज्जरी । उव्विज्जईपच्छा तु वल्लकठी मुट्ठ मिअिनेदि ।
१७. ण ह गोवाणवनिमतरेण वल्लही समारोहो ।
१८. मुण्णिणे वि एवमुमरति, पादाहितो बहण पत्तिममति मव्व ।
१९. तुम ज्जेव्व मव्वदो मार उन्निवमि । हतो ज्जेव जनेहि दुडमुद्धेरहि ।
२०. पुराणपत्तमणिक्कनिअ गो पल्लवां गमुल्लमदि । ण अ-तुण्णमट्ठिवग्ग अक्कदली वग्गलणलुडो गंधहग्गिणे मदनवेदारिआण, अहिरमदि ।
२१. केअई बुग्गुमवामिदग्ग मरिग्गम अण्णे गंधुग्गागे ।
२२. ता मम विच्छुरदि तुण्डक्कट्टु ।
२३. पारअरगच्चुविअ विअ मृवण्ण मे लावण्य ।
२४. मने वल्लपट्ठीण गुरागइमग्गेओ बुग्गुमेग्गु मअरगधुग्गागेति ।

- २६ ण हि मिणहो जूताजुत्तमनुग्घेदि ।
 २७. कथं विप्र महप्रारलट्टीणं कन्वकडा बुट्ठिदप्पणया होदि ।
 २८ तथा वि भगीअदि, सुदमतमखण्णं कखु वज्जमिद्धीणं कारणम् ।
 २९ कथं विप्र जीअनादो किकलामादो सिरमुवण्ण पावीअदि ।
 ३०. ण कखु मिअलण्णमञ्जीअ षण्णेण समिकतपुत्तमिअवड्ढणिज्झरा
 वज्जरड ।
 ३१ ण विण च्चद मेहालिआणं विप्रमति कुमुमाड ।
 ३२. ता विरपाडदब्बा जुप्पमज्जरी दुद्ध नि कजिअ ।
 ३३ पोम्मराअमणि एव्व एआवनि अलकरेदि ।
 ३४ गहु अणुप्पी डिअो सहप्रारपिट्ठगठी रममव्वय मुचदि ।
 ३५ एमो अवरो गडम्म उवरि फुट्टिउभेदो ।
 ३६ कोच्चिर वा च्चदे पमादिदकरे आविमट्टकदाट्टा णीलुप्पनिपी विट्टदि ।
 ३७ वर तक्कालोवगदा तित्तिरो ण उण दिअहत्तगिदा मीरी ।
 ३८ महि कोयण्णे ण सव्वो रामभहो णअरे णअरे केवेयी ।
 ३९ हत्थे ककण कि दप्पणेण ।
 ४० धावतरम तुरागभम्म निग्घत्तणे कि मानिअणो पुत्तहीअति ।
 ४१ ण सत्थरिआ बुग्गामे वणे वा विवरीणअदि, ग सुवण्ण वगवट्ठिअ
 विणा वमीअदि ।
 ४२ णिमगच्चगम्म वि मागुमम्म सोहो समुग्गीवह भूमपेहि ।
 ४३ णहु विडुअभि अन्तरेण वेरलिअमणिमलाआ गिण्णजदि ।
 ४४ दक्कआरमो ण भट्टरिज्जड मक्कराण ।
 ४५ हरिअडगुरीव दिण पणट्टा अ ।
 ४६ दरदिआनिअअणीमु पुणो विवमई मअरदअरहम्म ।
 ४७ रित्ततणदावगी विरमउ कमलाच दक्कव्वरिणेण ।
 ४८ री वा छट्टणा ।
 ४९ छेआ पुणो पअट्ठच्चिमभावणिज्जा ।
 ५० आदिमो चित्तअरो तादिमी चित्तअम्मरपमाहो, जादिमो कई तादिमी
 वव्ववग्घळ अति ।

संस्कृत-मुभाषित

१. अत्रिन्दनप्रसंग हि पुण्यवारा वर्णादानाम् ।
२. कल्पवृक्षेण पुमांस्त्रि यदर्थं यत्प्रदत्तम् ।

३. सविघ्नविग्रुप एव काम्यक्रियारम्भाः ।
४. अग्निर्वेदः मिद्रेर्मूलम् ।
५. अनुकूलं हि दैव सर्वस्मै स्वस्ति करोति ।
६. अविमृश्यकारिता हि वृत्त. परं परिभवत्थानम् ।
७. क्व न पुन सर्वत्र सर्वे गुणाः ।
८. सुप्ततप्तकुपिताना हि भावजात इष्टव्यम् ।
९. मत्स्य मत्स्यमिद गीयते दुस्त्यजा प्रकृतिरिति ।
१०. हन्त हन्त नैकप्रकारो मदन-व्यापार ।
११. न प्राणनिर्वाणेश्यनुचितभावो भवन्ति भृत्याः ।
१२. भ्रतिषान्ते वस्तुनि साक्षिप्रत्ययपरतन्त्रा व्यवहाराः ।
१३. आत्यवध प्रथम पातकेषु ।
१४. असतामपि महापुरुषशुभ्रूपा किमपि रामदुष्का ।
१५. आयुधनिषेध्या रिषवो न मानसाध्याः ।
१६. न विना हिमानोमचण्डो मार्तण्डः ।
१७. निरकृशा कविवाच ।
१८. न हि चन्द्रमसोऽनुभावो मदस्य प्रावणोऽपि नित्यन्दने ।
१९. न च सदेहदेहो बीरघ्ननिर्वाहः ।
२०. अनाकनितसारा हिबीरप्रकाण्ड-प्रभूतिः ।
२१. सेय कवीना वचनरामधेनुः । मदमनभूतमपि मूले ।
२२. दिग्भस्य दुक्लिस्तार्जान् भुदे गुरुणाम् ।
२३. न हि तरणि किरणम्पशादन्यो व्याधिरिन्वीवरवनम्य ।
२४. काललाभो हि नप विदा प्रयोगग्राम कदलयनि प्रयोग परतन्त्रा च वायं-
सिद्धिः ।
२५. ईर्ष्यायित हि स्त्रीणा प्रवाशक प्रेमभरस्य ।
२६. किं हि दुष्पर गार्धुमेते किमसाध्य वैदगाय्य ।
२७. अयमपर. शनि शारावमेकः ।
२८. देवि, दैव शिष्यति ।
२९. न. शक्तिमानपि मूयावमूर्ति मित्ता पट्टके पित्तपि ।
३०. मुप्तस्यापि महान् मिनद प्रतिबोधहेतुः ।
३१. महो मर्कवाटारवाऽभवमायः ।
३२. न क्वचदस्त्वान्नमणे. प्रभावो यदयो द्रवति ।
३३. किपत्वाप्तं अन्नदतिरत्तरिणी मार्तण्डमण्डनमन्तरयति ।

- ३४ यदिपालता हि भूत्यान् स्वामिनः स्मारयति न गुणधाम ।
 ३५ सर्वो गुणेषु रज्यते न शरीरेषु ।
 ३६ प्रवृष्ट हि तपः कामदुघम् ।
 ३७ भ्रान्तिव्यने भ्रान्तृगात्रे कपोल्य सौर्षि चन्द्रमा ।
 ३८ एकविषयाभिन्नापो हि वैरकन्द वन्दलयति ।
 ३९ अनूचानो हि यद्भूते मा स्वयम्भूः सरस्वती ।
 ४० यत्सत्यं मदिरा विनैव मदनो युता मनोन्मादभूः ।
 ४१ अहो महात्मनामपि वीतवानुगृहीता वृत्तय ।
 ४२ संशये न च सतां प्रवृत्तय ।
 ४३ शरीरधना हि राजान ।
 ४४ किञ्च एव हिमन्पराश्वेषि तत्तहृत्तचारिणोऽन्यपरादारः ।
 ४५ आकृतिमन् गृह्णन्ति गुणा ।
 ४६ न प्रेम नव्य सहतेऽन्तरायम् ।
 ४७ वैषम्यमेव वा विष विषस्य ।
 ४८ न चित्रशिसिण्डिदाम्ना विना चक्रास्त्युदोचो ।
 ४९ लेखमपा एव सेववाहा भवन्ति ।
 ५० को हिनाम घृत्तजितानामुद्विजते मौधूर्येण ।

नाट्यकृतियों मे प्रयुक्त छन्द

	वाल- रामायण	वाल- भारत	वर्षूर- मजगी	विद्विमान- भजिदा	सख्या
१. शार्दूलविक्रीडित	२०८	४१	२४	३९	२१२
२. वसन्ततिलका	१६३	२५	२३	११	२२२
३. मनुष्टुभ्	१२८	२५		२	१५६
४. सगुधरा	९६	१०	११	१०	१२७
५. मन्द्राकाल्या	६९	५	५	२	८२
६. मानिनी	३८	५	७	१२	६३
७. प्रथ्या	१६	२	२२	१२	६२
८. पूषी	७	७	७	६	२७
९. रपोद्धता	१	१२	९		२२
१०. इन्द्रवज्रा	९	१	४	५	१९
११. वसन्ध	१३	१	१	१	१६
१२. उपजाति	८		७		१५
१३. पुण्डिताया	५		२	२	९
१४. जपेन्द्रवज्रा	३	..	२	२	८
१५. स्वागता	१	..	४	१	६
१६. शान्तिनी	४	१	१	..	६
१७. विपारिणो	४	..	१	..	५

१८	हारिणी	..	२	१	..	१	४
१९	प्रहर्षिणी	..	४	४
२०	रुचिरा	..	३	३
२१	गीति	..	१	..	२	२	५
२२	उपनीति	..	१	..	१	१	३
२३	हरिणीति	१	१

बालभारत

छन्दो विवरण

छन्द का नाम	अंक १	अंक २
१. शार्दूलविकीर्णित ..	२, ५, ६, ११, १६, १९, २२, २३, २६, २७, २९, ३३, ३४, ३५, ३८, ५०, ५२, ५५, ६२, ६२, ७०, ७१, ७७, ७८, ८२, ८५ ।	२, ४, ८, १०, ११, १४, १७, २३, २७, २९, ३१, ३४, ३९, ४३, ५० ।
२. वसन्ततिलका ..	३७, ४१, ४४, ४७, ४९, ५३, ५७, ५९, ६८, ७२, ७४, ७६ ।	९, २२, २४, २५, २६, २८, ३०, ४१, ४५, ४७, ४९, ५३, ५४ ।
३. अनुष्टुभ् ..	१, ४, १०, १५, १८, ३६, ४०, ४३, ४६, ६१, ६४, ६७, ८१, ८६, ८८ ।	७, १२, १३, १६, १८, ३२, ३४, ३६, ४२, ४४ ।
४. रघोद्धता ..	८, २४, ३९, ४२, ४५, ४८, ५१, ५४, ६०, ६३, ६६, ६९ ।	..
५. राघवरा ..	२५, ७३, ७४, ८४ ।	१, १५, ३६, ३८, ४६, ४८, ५१ ।
६. पृथ्वी ..	३१, ८९ ।	३, १९, २०, २१, ५२ ।
७. मालिनी ..	६, २१, ३२, ५६, ८०, ८७ ।	..
८. मन्दागान्वा ..	२८, ६५, ७९, ८३ ।	४० ।
९. उपेन्द्रवज्रा ..	९, २० ।	..
१०. धार्या ..	१०, १४ ।	..
११. हृन्धवज्रा ..	१७ ।	..
१२. हारिणी ..	३० ।	..
१३. वगस्य ..	१२ ।	..
१४. गारिणी ..	३ ।	..

विद्याभालमञ्जिका

पद्य का नाम	पद्य १	पद्य २	पद्य ३	पद्य ४	कुल
१. मारुतपर्वीष्ट	३, ३, १०, ११, १६, १५, २२, २३, २५, २९, ३३, ३९, ६०, ६३.	१, ५, ११, १२, १६, २०, २१, २२, २३, २३.	१, २, १०, ११, १३, १४, १६, १९, २२.	५, ६, ९, १४, २०, २५, २६.	३६
२. पार्वी	१६, २६, २६, २८.	१५, १६, १७, १८, १९.	६.	१५, १६.	१२
३. मारुतपर्वी	१, १६, २०, २६, २८.	१०.	३, १५, १७, २१, २३.	२, ७, १७.	१२
४. मारुतपर्वी	१०, १९, २१, ३०, ३६, ३७, ३८, ६१.	३, ६, ९.	११
५. मारुतपर्वी	२०, ३१, ६६, ९, १०, १७, २३.	८.	९.	३, १२, १६, २१, २२, २३, २४.	५ १०
६. मारुतपर्वी	३५, ३६, ३७.	६, १३.	१२, २३, ५, ५.	१, ५, १३, १९, २१.	६ ५ ३

१०. मन्दात्रास्ता	१०.	२४, २५.	१०.	१
११. पुष्पिताप्रा	११.	१, ४२.	१०.	१
१२. मीति	१२.	४, ५.	२.	१
१३. वक्रस्य	१३.	१८.	११.	१
१४. उपमीति	१४.	२६.	११.	१
१५. स्वापता	१५.	८.	११.	१
१६. हरिमीति	१६.	२०.	११.	१
१७. हास्वी	१७.	८.	११.	१
१८. उपेन्द्रव्या	१८.	८.	११.	१
	४४	२३	२७	१२१

शतिकाव्य

छन्द का नाम	श्लोक १	श्लोक २	श्लोक ३	श्लोक ४	कुल
१. शालूनिश्रीदित	१, १३, १६, १७, १८, २०, २६, २९.	१, ३, ८, १७, २१, २५, २७.	१, ३, २५, २७.	४, ९, २२, २३.	२४
२. मन्दात्रास्ता	३०, ३३.	२, २३, ३०.	९, १०, ११, १२, १३, १४, १५.	५, ८, २१.	५
३. वधन्तसिक्का	१४, १९, २१, २४, २५, २७.	४, ५, ६, २६.	१६, १७, २२.	१९, २८, २९, ३०.	२३
४. सधरा	४, १५, २६.	१०, २८, ३१, ३१, ४०.			२

२
३२

२
३

४
१
७
४
१
७

१
१
७
१

..

५. तुल्यताया
६. धार्या

२. २, ५, ७, ८, ९,
१०.
१२, १३, १४,
१५, १६, १७,
१८, १९, २०,
२१, २२, २३,
४०, ४३, ४३,
४८, ४९.

१२, १३, १४,
१५, १६, १७,
१८, १९, २०,
२१, २२, २३,
४०, ४३, ४३,
४८, ४९.

१२, १३, १४,
१५, १६, १७,
१८, १९, २०,
२१, २२, २३,
४०, ४३, ४३,
४८, ४९.

२१, २३, २४,
३१, ३२, ३३,
३४.

२४.

१६, १७, १८.

२०,
१०,
१४,
११, १५, १२,
१३, १४.

४५

३४

३४

७. गीति
८. रसोद्धता

६. ७.
११.

२१, २३, २४,
३१, ३२, ३३,
३४.

२१, २३, २४,
३१, ३२, ३३,
३४.

२४.

१६, १७, १८.

२०,
१०,
१४,
११, १५, १२,
१३, १४.

४५

३४

३४

३४

९. स्वागता
१०. शानिनी
११. मालिनी
१२. इन्द्रवज्रा
१३. उपेन्द्रवज्रा
१४. उपजाति

१२.
२३.
२२.
३१, २८.

२४, ४४, ९.
७.

२०,
१०,
१४,
११, १५, १२,
१३, १४.

२४.

४५

३४

३४

३४

३४

३४

१५. उपगीनि
१६. वज्रस्थ
१७. पृथ्वी
१८. मित्ररिणी

३४

४५

३४

३४

३४

३४

३४

३४

३४

३४

३६	४०	३४	२४
----	----	----	----

राजशेखर की सूक्तियाँ

(गुभाषिन ग्रन्थों में)

शिव-विष्णु प्रायंत्रः

यद्ब्रह्माध्वजं यद्भृगुमुकुटं यस्चन्द्रमन्दारयो
 पमं धाम च दाम च रिमन्तरमत्सुन्देन्दुनीलधियो ।
 तस्यद्वाङ्मरयाङ्गसगविषटं धीषष्ठ वीणुण्डयो—
 बन्दे मन्दिमहोशताशयंगशियन्नामाद्भुमेकं षणु ॥ (१)

शिव-नृत्य

धाम्याङ्गिभराणि धामचलन-जमत्सुम्बुम्भीनमानि
 युटयसारानि रिद्रगडरणिधररिगर श्रेणिशीर्यद् दूषानि ।
 दित्रकीर्णाश्वदग्नि द्रवदमरचमुचनचचद्विपन्ति ।
 व्यस्तन्तु व्यापदं वात्रिपुरद्विजयिनस्ताण्डवा रम्भणानि ॥ (२)

शिवभाल-शोभी चन्द्र

स य. पायादिन्दुनेवविमलनाकोटिबुटिलः
 रमरारयो मूर्ध्नि ज्वलनवपिसो भाति निहित. ।
 रवन्मन्दादिग्या. प्रतिदिवसतिक्नेन पयसा
 ऋषानेनोमुक्तः स्फटिकधयनेनाद्भुर इव ॥ (३)

गौरी (विवाह के अवसर पर)

गौनासायनियोजितागदरजाः गर्पाय बद्धौपधिः ।
 षण्डस्थाय विषाय वीर्यमहतः पाणी मणीन् विधत्ती ॥
 भर्तुर्भूतगणाय गोवजरतीनिदिष्टमन्त्राक्षरा
 रक्षत्वद्रिगुता विवाहमये प्रीता च भीता च यः ॥ (४)

श्री राम

मानेण्डं कबुलप्रकाण्ड निलचरत्तैतोक्ष्यरक्षामणि
 विश्वामित्र महामुने निरपधिः शिष्यो रघुधामणी ।
 रामस्ताडित ताडक विमपर प्रत्यक्षनारायण
 कौनल्यानयनोन्मवो विजयते भूषणपस्यात्मजः ॥ (५)

लक्ष्मी

- प्रवीरहृठभोग्यापि जयति श्रीमंहासती ।
 कृत्स्नतैलोक्यवासापि कृष्णोर. स्थलशायिनी ॥१॥ (६)
- विष्णुवधोगृहे लक्ष्मीरस्ति कौस्तुभदीपिके ।
 पुनातुनिवसन्ती वो दृढदो स्तम्भतोरणे ॥२॥ (७)

लक्ष्मीशृङ्गार

- मिथ्याकण्डूनिसाचीकृन्गल सरणियेषु जातो गस्तमा
 न्येनिद्रा नाटयटिभ शयनफणिफणलंक्षिता न श्रुताश्च ।
 ये च प्र्यानानुबन्धच्छन्नमुकुलदशा वेधमा नैव दृष्टा ।
 स्ते लक्ष्मी नमंयन्तो निधुवनविधय पान्तु वो माघवस्य ॥ (८)

कविप्रशंसा

- मरस्वतीपवित्राणा जातिस्तत्र न देहिनाम् ।
 व्यासस्पर्धी कुलालोऽऽभूद्द्रोणो भारते कवि ॥ (९)
- हृता शिखिनि गौणाद्या स्तोक श्रेयाऽपि साक्या ।
 गुरलीडेन्दुनेखेव लोके पूज्यतमाऽभवत् ॥ (१०)
- स्वस्ति पाणिनयो तस्मै यस्य रद्रप्रसादत ।
 प्रादो व्याकरण काव्यमनु जाम्बवती जयम् ॥ (११)
- भाम नाटकचम्रेऽपि च्छेकै क्षिप्ते परोक्षिणुम् ।
 स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकौऽभून् न पावक ॥ (१२)
- तौ शूद्रककषावारी रम्यौ रामित्तोमिलौ
 काव्य यथांशुयोरासीदर्थनारीश्वरोगामम् ॥ (१३)
- पृथिव्या ग्रथिता गाथा सातवाहनभुभुजा ।
 व्यदधुस्तेतु विस्तारमहो चित्र परम्परा । (१४)
- सरस्वतीव वार्णाटी विजयाहा जयत्यमी ।
 या वैदर्भगिरा वाम कामिदामादनन्तरम् ॥ (१५)
- प्रादो गणपति यन्दे महामार्दविधायिनम् ।
 विद्याधरमणेशस्य पूज्यते बण्डयजिनम् ॥ (१६)
- दूरादर्पि सता चित्रे विगिन्नाश्वयंमञ्जरीम् ।
 कुलशेखरखर्माऽभ्या चकाराश्वयमञ्जरीम् ॥ (१७)
- मनुप्राप्तमिनि मन्दर्भो गोलन्दगम कुन ।
 यथार्थनामर्नवास्य यद् वायवर्दी पाणनाम् ॥ (१८)

- ययोऽग्नेयस्यो देवरात्रयो वेदास्तयो युगाः ।
 स्यो दण्डप्रवन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विभुनाः ॥ (१९)
- मायुराजसमो जज्ञे नान्यः कलधृतिः कविः ।
 उदन्वत समुत्स्युः कति वा तुहिनांशवः ॥ (२०)
- जानकीहरणं कर्तुं रघुवशे स्थिते सति ।
 कविः कुमारदामश्च रावणश्च यदि क्षमः ॥ (२१)
- पार्थग्यं मनसि स्थानं लेभे नधुः सुभद्रया ।
 रवीनां च पञ्चोवृत्तिचातुर्षेण सुभद्रया ॥ (२२)
- शीतामट्टारिरावाचि वाणोक्तिषु च ना यदि ॥ (२३)
- के वैवटनितम्बेन गिरा गुम्फेन रजिता ।
 निन्दन्ति निजवान्ताता न मौढ्यमधुरं वचः ॥ (२४)
- वातंजरगतिश्चक्रे भीमटः पचनाटकीम् ।
 प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदधाननम् ॥ (२५)
- ग्रहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मानंविवाकरः ।
 श्रीहर्षस्या भवत्सम्यः समो वाणमदूरयो ॥ (२६)
- दपं कश्चिज्जगाना गता श्रवणनोचरम् ।
 विषविषेव मायूरी मायूरी वाक् विक्रन्तति ॥ (२७)
- मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे ।
 इनीव स कृतो धात्रा कवित्त्वाकरोऽपटः ॥ (२८)
- कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्थविजयः क्षमः ।
 तदर्थः शरपते द्रष्टुं लोचनद्वयिभिः क्वचम् ॥ (२९)
- द्विमन्थाने निपुणता स ता चक्रे धनजयः ।
 यथा जातं फलं तस्य सता चक्रे धनजयः ॥ (३०)
- सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानां च विसासभू ।
 प्रभुदेवी कवित्वादी गताऽपि हृदि तिष्ठति ॥ (३१)
- वाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदत्रयम् ।
 प्रायः कविकुरङ्गाणां चापलं सन्नं कारणम् ॥ (३२)
- भासो रामलसौमिलौ वररुचिः श्री साहसाकः कवि
 मर्षो भारविकानिदासतरणा स्वन्ध सुबन्धुश्चपः ।
 दण्डी वाण-दिवाकरौ गणपति वान्तश्चरत्नाकरः ।
 मिन्ना यम्य मरन्वती यदि भवेत्के तस्य सर्वोऽप्यमी ॥ (३३)

- एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
 शृङ्गारे सलितोद्गारे कालिदासवयी किम् ॥ (३४)
- सहस्रं चरितारब्धाद्भुतकादम्बरीकया ।
 बाणस्य बाण्यनार्षेव स्वच्छन्दा भ्रमति श्रिता ॥ (३५)
- कुत्स्न् प्रबोधकृद्वाणी भारवैरिव भारवे ।
 माघेनैव च माघेन कम्प कस्य न जायते ॥ (३६)
- धत्रोक्त्या मेष्ठराजस्य बहुल्या मृणिरुपताम् ।
 प्राविद्धा इव ध्रुवन्ति मूर्धनि क्विकुंजरा ॥ (३७)
- ध्वनिनातिगभीरेण नाब्धतत्त्वनिवेशिता ।
 प्राचन्दवर्धनं कस्य नामोदानन्दवर्धन ॥ (३८)
- यायावरकुलश्रेणेर्हीरयट्टेश्वसण्डनम् ।
 सुवर्णदन्धलचिरस्तरले स्तरलो यया ॥ (३९)
- अकालजलदस्वोर्कैरिवप्रातमहृत्तौरिव ।
 जात कादम्बरीरामो नाटके प्रवर नवि ॥ (४०)
- अकालजलदेन्दो सा हृदा वचनचन्द्रिका ।
 नित्य कविचकौरैर्या पीयते न च हीयते ॥ (४१)
- नदीना मेकलसुता नृपाणा रणविग्रह ।
 कवीना च सुरानन्दरचेदिमण्डलमण्डलम् ॥ (४२)

सहस्रुष्य प्रज्ञांसा

- उदन्वच्छन्ना भू स च निधिरपा योजनघात
 सदा पान्द पूपा शपनपरिमाण गणयति ।
 इति प्रायो भावा स्फुरदवधिमुद्रामुबुसिता-
 सता प्रज्ञोन्मेष पुनरयमसीमा विजयते ॥ (४३)
- नून दुग्धाब्धिमन्धोत्पाविनी गुजनदुर्जेनी ।
 चिन्तित्तो मोरर पूर्व. मालकूटस्य पौर । (४४)

रुत्री

- दृशा दग्ध मन्सिज जीवयन्ति दर्शव मा ।
 किन्पासम्य जपिनीन्ता स्तुवे धामभोचना ॥ (४५)

सतीवर्णन

- धम्पुन्यातमुपागने गृह्णती तद्भाषणे नम्रता
 मन्पादापिनृष्टिभगनविश्रिम्भस्योपचर्या स्वयम् । (४६)

मुने तत्र शयीन तत्प्रथमतो जहाच्च गप्यामिति
 प्राच्यं, पुत्रि निवेदिता कुनरधूमिडाभनधमां धमी ॥ (४७)
 निर्व्यामा दविने ननान्दृषु नता श्रधूपु भक्ता भव
 स्निग्धा बन्धुपु यन्नाया परिजने स्मेरु सपत्नीष्वपि ।
 पद्युमित्यजने मनमंश्चनता गिन्ता च तद्देषिपु
 स्वीणां सवननं ननधु तदिद वानीपथं भर्तुपु ॥ (४८)

पश्चिमी प्रदेश की स्त्री

घंल गचरितु सरङ्गरत्नधनेग्रमालोवितु
 रम्यं स्थातुमनादगावितमनोमृदं च सवापिनुम् ।
 मन्यग्योग्रजविनीशनोदिवदिनु ह्यं च सङ्कगने ।
 प्रयङ्गापेणमुन्दं च न जनो जानानि रन्तु पुर ॥ (४९)
 प्रपञ्चिनानानन्दे पावासीवेविरमंणि ।
 सर्वास्त्रमोक्षं सधने मय कुगुमकामुक् ॥ (५०)
 चकोर्य एव चतुराभ्रन्द्रिकापानकर्मणि ।
 भावमय एव निपुणा, स्त्रिय, मुग्धतर्मणि ॥ (५१)
 ताटकुबलानतरङ्गित गण्डनेध—
 मानाभितस्त्रिदरदोलितारहारम् ।
 आश्रोणि-गुल्क-परिमण्डलिनोत्तरीय
 वेशं नमस्वत महोदयमुन्दरीणाम् ॥ (५२)

उत्तर-पूर्व की स्त्री

शलाद्रं चन्दनपुचापिनगूत्रहार—
 मीमन्तबुम्बिसिचपस्फुटवाटमूल ।
 दुर्वाप्रकाण्डरचिरामु गुरपमोगो
 गोडाङ्गनागु चिरमेप चकारित रंप. ॥ (५३)

दक्षिणात्य स्त्री

शामूलतो बलितकुन्तल चारुबूड
 धूर्णानिकप्रकरलाञ्छितभालभाग ।
 कस्तानिवेशनिविडो कृतनीचिरेप
 वेपश्चिद जयनि कुन्तलकामिनीनाम् ॥ (५४)
 नेवयात्ताशरोपेस्त्रयम्बरस्थापि ताडनी ।
 ध्रुवता द्रविडस्त्रीणा द्वितीय कामरामुक्म् ॥ (५५)

नायिका

(विषिदुपाङ्क-शौकला)

पद्म्या मुक्तास्तरतमनय मथिता लोचनाभ्या
शोणीविम्बं त्यजति तनुता सेवते मध्यमाय ।
पत्ते बलः कुचमभिवतामद्वितीय च वस्त्रम्
तद्गात्राणा गुणाविनिमय कल्पितो शौवनेन ॥ (१५)

युवती

तरन्तीवाङ्गानि म्पूरदमललाकण्य-जलधो
प्रथिम्न प्रागल्भ्य स्तनजघनमुन्मुटयति च ।
दृशांर्त्तिलारम्भा स्पृष्टमपवदन्ते मख्यता—
मरुं मारुङ्गाध्यास्तार्जणमणि गाढपरिचय ॥ (१६)

मुग्धा

धुक्मुदाघिनटीषु वल्लवरना
यदुदिततन्तुवर्षवलि काञ्च्य ।
इह हरिषदृश फलेयदीपे
विदधति मौक्तिकनदानभिरत्र हारान् ॥ (१७)

ललित विरहिणी

आहारे विरति समस्तविषयशान्ते निवृत्ति परा
वागाग्रं नयन घटेनदपर धरुवैतनान मन ।
मौन चेदमिह च जून्यमश्लिन वद्विधमाभार्ति ते
मद्भ्रमा सखि योगिनी निमगि भो कि वा विषोयिन्यगि । (१८)
यत्तलोदनपाकपाण्डुवदन पल्लेवयोर्दुदिन
वण्ड. पाणिनिपेवणाञ्च यदपे मखान्-नकाङ्कानि ।
गौरी प्रुप्यतु वनेन यदि न ते तत्कोपि चित्ते युवा
धिर्धिष्त्वा सहपाशुपंतन-मखीवरोपि यन्निद्रव ॥ (१९)

नायिकापमद

नितम्बगुर्धं घट्टन श्रमेण
विधम्य मोपातरदेषु बावित् ।
बाभोत्तराग्निदवाभार्ति
रुपाय इयं वरपाङ्गेत् ॥ (२०)

विरहिणी रोदन

मुक्तानङ्गं कुसुमविशिवन्पञ्च चूर्णाकृताया
 म्मन्ये मुग्धां प्रहरति हृत्कल्पविणा वारणेन ।
 वारां पृथः कथमितरथा स्फारनेत्रप्रणाली
 वज्रोद्ग्राहस्त्रिवलिविपिने भारणी-साम्यमेति ॥ (९१)

पद्मभान्ते स्वनिना, वपोत्कलके लोले सुदन्त, क्षण
 धारालास्तरलोच्छलतनुकणाः पीनस्तनम्फालनात् ।
 कस्माद् बृहि तवाद्य कण्ठविगतन्मुक्तावलीविभ्रम
 विभ्राण्य निपतन्ति बाष्पपयसा प्रस्यन्दिनां विन्दवः ॥ (९२)

उपालम्भ

चन्द्रोपालम्भ

प्रियविरहमहोष्णान्मुसुरामदलेषा-
 भयि हतकहिमाशो मा स्पृश व्रीडयापि ।
 इह हि तव सुदन्त प्लोपभाव भजन्ते
 दत्तजट्टमृणाली-वाण्डमुग्धा मयूरा ॥ (९३)

मृतिदुग्धसमुद्गतो भगवतः श्रीरोम्तुर्भा मीदरी
 सौहासं कुमुदाकरेषु किरणा पीयूषधाराविर ।
 स्पर्धा ते वदनाम्बुर्जमृगदृशा तत्स्पाशुचूडापणे
 हृहो चन्द्र कथ न मुञ्चमि मयि ज्वापामुचो वेदनाः ॥ (९४)

मदनोपालम्भ

धनुड्याप्रमती शय मवमि मे गान्ता, नम पञ्च ते
 निदंघं विरहाग्निना वपुरिदं तीरेव गार्ध मम ।
 बरट नाम निरायुधोपि भवता जेतुं न शक्यो ज्ञो
 दुष्यो स्वामहनेकः एव गतसो सोः सुख जीवतु ॥ (९५)

चन्द्र

(चन्द्रकला)

सिद्धामनङ्गुरशोरगकान्तिभाष—
 सिन्दोरिवसोऽय ममूदरि मूलनस्य ।
 देतान्तरप्रणविर्गोरपि यत्र मूनो—
 नूनं मिद मनि मिनिनि विरोर्गितानि ॥ (९६)

चन्द्राभास

पातस्यास्तमनन्तर दिनकृतो वेशेन रागान्दिव
स्वैर शीतरु. करं कमलिनीमानिद्विगतु योजयन् ।
शीतस्पर्शमवाप्य सप्रति तथा गुप्ते मुखाम्भोर हे
हामेनैव कुमुदनीवनितया विलस्यपागृहकृत. ॥ (७४)

मिश्रकचन्द्र

विताचक्र चन्द्र. कुमुमघनपुो दग्धवपुषः
कलङ्कुस्तस्याय बहति मलिनाङ्गार तुलनाम् ।
अयैतम्म ज्योतिर्दरदलितकपूर धवल
मधुभिर्भ्रममेव प्रमरति विकीर्ण दिशि दिशि । (७५)

बहुरूपकचन्द्र

फेन क्षीराम्बुराशैरथमुदयगिरेस्तुगाशृगातपत्र
पूर्वस्या भालदेशे तिलक एव दिशां दर्पणो यामिनीनाम् ।
वापीनां राजह्म. परिलभिनसट केजरीकाननाना-
माराराश्यादह्मास कुमुदवनचयान्दोदशश. शशाकः ॥ (७६)

चन्द्रोदय

यस्तौलोवयजित स्मरस्य किमपि प्रीडातडाग महद्
परचाभोगभृतो भुव प्रकटिताकारार्पणे दर्पण ।
सोय सुन्दरि मन्दराद्रिभिधित-क्षीरोदसारोच्चय
इचन्द्र कुंकमपवपिण्डलडहृच्छाय समुदच्छति ॥ (७७)

अमावेकद्विविप्रभृतिपरिपाठ्या प्रकटयन्
वना स्वैर स्वैर नवकमलकन्दान्कुरम्ब ।
पुल्लघ्रीणा प्रेयोविरहृद्धेनोशीपितहशा
वटाश्लेभ्यो विभ्रयन्तिभूत इव चन्द्रोभ्रदयते ॥ (७८)

पर्णे नागररजण्डमार्द्रमुभगं पुगीफल फालय-
वर्षुरस्य च यत्र कोऽपि वनुरस्ताम्बूनयोगवम ।
देश केरल एष वेलिमदन देवस्य भृंगारिण
स्त दृष्टा कुह कोमलागि मफल द्वापीयमी लोचने ॥ (७९)

वाक्मत्वागसमुद्रवैरभिनयैरित्यं . रमोन्त्यामनी
शामाद्गुय. प्रणयन्ति यत्र मदवत्रीडा महान्ताटवम् ।
अज्ञानध्रान्तव दक्षिणेन त इमे मोशावरीत्योवमा
मपानामपि वानिधिप्रणयिना डीपान्तर्गत्य धिनाः ॥ (८०)

येनैव सागरगहं लघु लङ्घयामि
किं सेतुना समरकर्मणि वो नयामि ॥ (८७)

नीलेन सैन्यपतिता प्रभुताङ्गान्ते
मुक्तस्तया किलविलाध्वनिरेष रौद्रः ।
स्रष्टापि वाञ्छति सगेजभवः श्रवामि
शङ्के यथा करयुगेन मुधा पिघानुम् ॥ (८८)

ऋतुचक्रवाल

वसन्त का आरम्भ

गर्भग्रन्थिषु वीरघ्ना मुमनसो मध्येद्भुजुर पल्लवा
वाञ्छामात्रपरिग्रहं पितृवधूकण्ठोदरे पञ्चमः ।
किं च क्षीणि जगन्ति जिष्णुदिवसीद्वित्रैर्मनोजन्मनो
देवस्यापि चिरोज्जितं यदि भवेदभ्यासवज्र्य धनु ॥ (८९)

वसन्त.

जम्बूनां बुभुषोदरेष्वतिरमादाबद्धपानोष्मवाः
कीरा पक्वफलाशया मधुकरी ष्वसुम्बन्ति भुञ्जन्ति च ।
एतेषामपि पश्य किञ्चुत्तरो एवैरभिन्नत्विपा
पुष्पध्रान्तिभिरापरान्ति सहसा चधुषु भृङ्गाङ्गना ॥ (९०)
ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगहृशा मग्युतन्तुच्छित्तो ये
सद्यः शृगारदीक्षाव्यतिचरगुरवो ये च सोऽत्रयेऽपि ।
ते कण्ठे लोलयन्त परभूतवयसा पञ्चम रागराज ।
वाञ्छि स्वैर समीरा, स्मरकिजय-महामाभिषो दक्षिणात्या ॥ (९१)

वसन्तपरिचरु

मव्याधे वृशलाक्षतस्य रश्मिरं दृष्टस्य सानामव
सर्वं नैतदिहाम्नि तत्त्वधमसो पान्यस्तपरसो मृत. ।
आ ज्ञानं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारव्यकोलाहले
नूतं साहसिषेन चूतमुनुजे दृष्टिः समारोहिता ॥ (९२)

घोस्मवेत्त

जलाद्रं सव्यातं विमरिमलर्षं, केनिवलयः
शिरीषंस्तत विचित्रिलमयी हाग्गपता ।
शुचावेशाक्षीया शन्यज्ररगाद्रश्म तनयो
विना तन्त्रं मन्त्ररनिग्मणमृषुञ्जयविषि. ॥ (९३)

ये दोनाकेतिकारा, त्रिपणि मृगदशा मन्मुतन्नुच्छदो ये
मच शृंगारदीधाव्यनिकरगुरवां ये च लोक्रवयेऽपि ।
ते नष्टे लोठयतः परभूतवयमा पञ्चम रावराज
वान्ति स्वैर ममीरा स्मरविजयमट्माशिगो शक्तिणात्था । (१००)

मदन

गुधामूतवैन्पुमंधुमह्वर पञ्चमरवि-
दिभन्लीला बह्वी कुवलयदशा नर्मणि मृष्ट ।
मदैव शृंगारी हृदयवमति पञ्चविशिष्ट,
मदा स्वाहून् दुर्वैन्धुमदविकारान् विजयते ॥ (१०१)

मदनशीयं

कुलगुरुरबलानां वेलिदीध्राप्रदाने
परमसुहृदनङ्गां गेहिपीचलभस्य ।
अपि कुसुमपूपकैर्देवदेवस्य जेता
जयति मुग्धवीला नाटिकामुवधार ॥ (१०२)

मदनसोख

ताडीदन यदरठोरमिद यदेया
मुद्राग्नानाङ्कधनचन्दनपङ्कमूर्ति ।
यद्बन्धनं विनायता तनुपन्नुभिश्च
बन्ध्यात्रिचरेप गनितरतदनङ्गलेख ॥ (१०३)
पाणिप्रद्वेषणतो विशीर्णगिरम, स्वेदान्बुभग्नध्रिव
तत्कृत्वाष्टनितेशतो मनसि ते त्रिपित्तनीर्नि गथा ।
बैबिश्वात्पुनक्त ताञ्छनभूत लष्टेन बाभेन वा
व्याक्षेप बभयन्ति पक्षमलदृशो सेवराक्षरशेष ॥ (१०४)

मदनोपालम्भ

प्रापुद्रवाशममीशरा मनसि ते मन्मा मन पञ्च ते
निर्दग्धु विरहाग्निना वपुरिद नैरेव माधं मम ।
नष्टं काम निरादुधोसि भवता जेतु न शनयो जतो
दु खी स्यामयनेन एव नक्तो लोक मृग जीवतु ॥ (१०५)

बटाक्ष

प्रणालीदीपस्य प्रभूभरतरङ्गस्य नृहृद
बटाक्षव्याक्षेपा शिशुअपरफगप्रनिभुव ।

सुधाया. सर्वस्व कुसुमधनुपोत्मान् प्रतिमाश्वे
नव नेत्राद्वैत कुवलयदृश. सनिदधति ॥

(१०६)

विलोकन

भवनभुवि नृजगन्स्तारहारावतारान्
दिशि दिशि विदिशन्त. केतवाना कुट्टुम्बम् ।
वियति च रचयन्तश्चन्द्रिका मुग्धमुग्धा
प्रतिनयननिपाता सुभ्रुवो विभ्रमन्ति ॥

(१०७)

स्वप्न

कथ पेय ज्योत्स्नाम्भो वदन विमवस्तीसरणिभि
मृणातीतन्तुभ्य मित्रपरचना कुत्र भवनु ।
कथ वा पारीमेयो बत वकुलदाम्ना परिमल.
कथ स्वप्न साक्षात्कुवलयदृश कल्पयतु ताम् ॥

(१०८)

गायकाभिलाषा

न नीलाब्ज चक्षु मरसिहृमेतन्न वदन
न बन्धूकस्येद मुकुलमधरस्तद्वृत्तिधर ।
ममाप्येया भ्रान्ति प्रथममभवद्भृङ्ग किमुते
कृत दलैरेभ्यो विरम विरमेत्यञ्जलिरयम् ॥

(१०९)

गुणकोर्तव

तद्रूपं यदि मद्रिता शशिकया हा हेम सा चेषति
स्तन्वक्षुयंदि हारित बुधनयस्तच्चेरिस्मत का सुधा ।
धिष्णकम्दपंधनध्रुवो च यदि ते किं वा बहु दूमहे
वत्तत्य पुनरुक्त-धस्तुविमुख मगंमो बेधत ॥

(११०)

नायक आगमन

डारगतं काप्यवगम्य वान्ममुष्मन् वरुत्र मित्रयाञ्चलेन ।
विमुञ्चती मण्डनकर्मदीर्घ यथायथात्मानमनचकार ॥
काप्यागत वीक्ष्य मनोधिनाय तमुत्पिता मादरपासेनाय ।
करेण जिञ्ज्वलयेन तल्पमास्फालयन्ती वनमाजुहाव ॥

(१११)

(११२)

नायिका-गमन

नितम्बगुर्वी दनुश श्रमेण विश्रम्य मोघानपदेषु कावित् ।
काञ्चीकरामम्बिनवामपाणि-क्याय हर्म्यं वनपाणोद् ॥

(११३)

ध्रुः

महौगुप्तो मन्मथकायष्टि रत्नगता विभ्रमवर्षरत्नी ।
गनादरङ्गाङ्गपनरंकीयमनञ्जना ध्रुवगुप्तानि दृष्टिम् ॥ (११४)

मत्स्य-भाग

कुपवन्ममहिम्ना ध्योगिभारप्रथिता
विहितनिविहपीडाम्ना द्वयी मुष्टिगण्ठा ।
विममुदरनरमश्रेणिसार्णो यामा
ध्रुवुष्टिमिष घट्टन्नि श्रेष्ठनो मध्यमाया ॥ (११५)

रत्न

मन्मथानो तुल्यावपि जतितुरावन्म च मह
प्रवृत्तो गाम्ना च मन्म इति ममानाकुटयिनो ।
मिष सीमासात्रे यद्विदमनयोमैरद्वयमूनो
रपि रत्नार्थानून मदित्ति हि नमस्या इतिता ॥ (११६)

वेत्ता

कण्ठे मीतिवसाविका मन्मथे वार्पूरमध्यं रत्न
मादं वन्दनमद्रुने यत्नदिता धापो मृणालीवता ।
तन्वी नलमियं चराग्नि गुत्तिनी चीतागुने विघ्ननी
मीतामोर्गधिदेवतेव गतिता ध्योमाप्रमारोत्त ॥ (११७)

जलश्रीडा

मौक्तुं स्नाताशुवानि स्मरत्भगरमग्यानुकूलैर्दुबूलः
वस्तुर्तु वेत्ताशातगुरगुरभिणा धूपधूमोदगमेव ।
ताम्बूलोन्लेपरेधामपि विवन्दिनु धीनपुष्टेवरोष्टे
तीरोतीर्णान्तरथ्य क्षणमुपदिविगुर्वन्निवेचीमृहेषु ॥ (११८)

बन्दुवश्रीडा

धमन्त्र-मणिलुपूर-प्रचुरधार-चारत्रम
मणञ्जणितमेखतास्त्रलितनास्त्रारच्छटम् ।
इद तरनवङ्कण यतिविशेषवाचानितं
यनो हरति मुधुव विमपि बन्दुवश्रीदितम् ॥ (११९)
धरया स्वैदाम्बुविन्दुभ्युत्तलितरता व्यक्त-वचनेन्दुबाले
पर्यायात्स्त्रुवस्य प्रहणनवणना केलिवाचालिताया ।

उत्पातोत्ताल-तान्त्रम-नमितदृशस्तताडनीत्तालस्तानी
लीलाख्यामौनिता स्म. प्रतिपदममुना कन्दुरभीडिनेन ॥ (१२०)

धेलाञ्चनेन चयहारनताप्रकाण्डै-

वैणीगुणेन च व्याडलयीरुतेन ।

स्वेच्छाहितप्रमरक अभिनण्डनीभि-

रुण्य रस रयबतीव चिर नतध्रु ॥

(१२१)

गिध्यामणिरितोष्णस्वितकयत्यय मेदनी

मितोगनितगुम्फनास्नेरतवैणवान्ता सज ।

इतश्शुरितमन्तरा वृष्टितहारमुक्ता-फलै

रित. श्रवणपागत कमलपत्रमाम्ने ध्युनम् ॥

(१२२)

वनविहार

उज्ज्वल्य स्वर्णवाञ्चोर्षणिनि रजनया चम्पकान्ध्याममय्या ।

तन्वत्यस्तारहाराग्विचकित-वनिवापडिचन-मुद्रावलीभि ।

कि चाशोक-प्रवालैरुणमणिमयान् मलयजस्योवनया-

नृत्कीर्णा कामवार्णैरिव हृदि गुह्यदो वन्दमाना बभूवुः ॥ (१२३)

उद्वेग-कथन

गौवाद्गुडिजने त्यजत्युपवन ट्रेष्टि प्रभामन्दवी

हारात्त्वम्यनि चित्रकेनिगदगो वेश विष मन्वने ।

पास्ते केवलमज्जिनीदिसलयप्रस्तारिण्युवाते

तदल्योपनत-त्वशट्टिनिरमायतेन चिनेन गा ॥

(१२४)

तनुता

दोनालोता स्वगतमग्न इवधुपी निशंराभे

तम्या शुष्यत्तगरगुमनपाण्डुरा गण्डभिक्ति ।

तद्गवावाणा विमिद हि यद् दूमेते दुर्बलत्व

येयामये प्रतिपदुदिता चन्दनेग्राप्यनवी ॥

(१२५)

विनाशरथा

नापोम्भ प्रमुनिम्भ प्रचरवान् वाण प्रणातोचिन ।

उग्रमाननित्तर्डीणवक्तिविका वारिष्टिम्भ सध्व कतु

दि भाष्यन् वयसामि रासिम्यिवा स्वदुर्मेवावायने

रुतन्तुर्वाभ्युदयमग्नमग्नमि शिर्वाचनैः ॥

(१२६)

प्रियसम्बोधन

विलिम्पत्येतस्मिन्-मत्तप रजसाद्रेण महसा
 दिक्षा चक चन्द्रे सुकृतमिदमस्या मृगदृशः ।
 दृशोर्वाप्य पाणौ वदनमसव कण्ठकुहरे
 हृदि त्वं ह्रीः पृष्ठे वचसि च नृणा एवभवत्.. ॥ (१३३)
 चन्द्र चन्दनकर्दमेन लिखित सा शार्दूलं दशटाघरा
 वन्द्य निन्दति यच्च मन्मथमसौ भक्ताग्रहस्ताङ्गलि ।
 कसम पुष्पशर किलेति सुमनोमयं तुनीभेष य
 तत्तुला सा मुभय त्वया वरतनुर्वातुताना लम्बिता ॥ (१३४)

पोषित

केपूरीकृताकृद्भावगिरयो कर्णावतगीहृत्त
 व्यातोलातकपद्मनि पायि पुरो बद्धाञ्जलि पृच्छति ।
 यावत्कञ्चिद्दुदस्तमात्तरमितुस्तावन् एवैत्यथ
 प्रोडावशिताकृष्टनाममवना के नैनं भिला रसे (१३५)

सबोधयथा

दृष्ट सपमलाक्षिभिर्निगदित वीतातिरुभेतिभि
 न्यस्त चेतमि सञ्जनं मुक्त्विभि बाब्धेषु मवारिणम् ।
 उन्वाणं कुमले प्रशस्तिविनादं गीतथ मरुतेपदा-
 दानैर्निजितवैरिवीर भवतश्चन्द्रावदाभ यथ ॥ (१३६)
 सा चन्द्रादपि चन्द्रनादपि दरव्याफोषकुन्दादपि
 शीराब्धेरपि शेषतोपि फणितरुचण्डीमहामादपि ।
 कर्णाटीतितदन्तपत्रमहतोष्यत्यन्तमुद्गोविनी
 कीर्तिस्ते भुञ्जवीर्येतिजितरिपोर्वीरजय भ्राम्यति ॥ (१३७)

संकीर्णं

घाशनेष प्रथम क्रमेण विशिने कृत्ये धातस्वार्थञ्च
 केनियूनविदो पथ प्रियतमे कान्तश्रुत पृच्छति ।
 धन्वर्गाविभूदमपरमस्वारीभवदुरवया
 स्वैर शौरिनितात्पाप निहित स्वैदान्मुग्धं कृतः ॥ (१३८)

मत्प्राप्त

धरो पद्मनवादनपुष्पादि स्व शर्जनात् शिवा
 जगन्मन्वरमान्निश्चर्जन शिवाी मन्त्रोशिष्यः शिरः ।

मिथ्या लेडि मृपालकोटिरभसादष्ट्राङ्कुर शूकरो
मध्याह्ने महिपश्व वाञ्छति निजच्छामामहावदंमम ॥ (१३९)

प्रदोष

सैरुध्रीकरवृष्ट्यदृक्सरतारध्वनिदूतो
दूनीमूत्रित-सन्धिविग्रहविधिः सोन्तासतीलाचय ।
वारस्त्री-जनसङ्ग्यमानशयनः संनदपुण्यायुष-
धीखण्डद्वघोतगौप्रमलिनो रम्य क्षणोवर्तते ॥ (१४०)

भोगावली

भिन्दान. सुन्दरीणा पतिषु रपमय हर्म्यपारावनाना
वाचालत्वं दधानः कविनृषु च गुण प्रातिम सदधानः ।
प्रातस्त्यस्तूर्यघोषः स्थगयति गणन मासल प्रासुतल्पा
दस्वल्पादुत्थितानां नरवरकरिणा शृङ्खलाशिञ्जितेन ॥ (१४१)

प्रिय-स्मरण

नागबलिरधिरोहसु पूग
राश्रिरेणतिलकेन ममेवु ।
स्वामसौ भजति कोक्तिवण्टी
वाचमचंतु कवेः सुकृतार्थे ॥ (१४२)

श्रुतिसुख

वीणया च निनदेन च वेणी
केकया च कलकण्ठगिरा च ।
शीत्वृत्तैश्च रणितैश्च बधूना
भुञ्जते श्रुतिसुखानि युवान ॥ (१४३)

तडाग

एतन्मानिनि मानसा मुखरो निर्लूनहेमाम्बुज
पार्वत्या प्रियपूजनाधममुतो शङ्खासरिन्निर्गता ।
अस्मान्निवत्तशिखण्डिभिश्वपरमे ब्रह्मण्युपादीयते
स्नानोत्तीर्णवृषाङ्क-भस्मरजता सगात्पवित पयः ॥ (१४४)

उपालम्भ

श्रद्धवश्रमाय चरणौ विरहाय दारा
दम्यशंकाय वचन च सपुञ्जराय
एतानि मे विदधतस्तव सर्वदैव
घातस्त्वया न यदि कि न परिश्रमोपि ॥ (१४५)

घन्य

शिलापट्टोद्घृष्टा मलयजरमालेपमुभगा-
 स्फुरद्भूमामोदा दरदलित—वर्षूरमुहृद. ।
 इत. कम्बुच्छेदच्छविभिरहिवन्ती-किमलय-
 नियेवन्ने केपि प्रमुकफलपाणीन् मुकृतिन. ॥

(१८६)

राजशेखर की पूर्वकवियों को श्रद्धाञ्जलि

कवि-प्रशस्ति

राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का न केवल अध्ययन किया था अपितु उनके गुणदोषों का सम्यक् परीक्षण भी किया था । पूर्ववर्ती कवियों के प्रति उन्होंने जो मादर श्रद्धाञ्जलि प्रेषित की है वह कविप्रशस्तिरूप में प्रस्तुत है—

१—श्लेष

गरम्बनी-कविवाणा अनिमन्त्र न कारणम् ।

व्यागम्पर्शं कुन्तारोऽभूद्दोषो भारणे कवि ॥

२—गुणाश्च

दृता शिष्टिनि गोणाङ्गा स्तोत्रनेपार्श्वि ता कथा ।

मुरलीकेन्दुसंघोद मोके पूज्यतमाऽभवत् ॥

३—पाणिनि

नम. पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।

प्राप्तौ व्याकरण काश्यामनू जाम्बवनीजयम् ॥

४—भास

भासनाटक चक्रेऽपि ष्टैकैः शिष्टे परीक्षितुम् ।

स्वज्ज्वातवदस्य दाहकोऽभूत्स पावक ॥

५—रामिलसोमिल

तां शूद्रककथाकारौ रम्यांरामिलसोमिलौ

काव्य ययोर्द्वयोरासीदधनारीश्वरोगमम् ॥

६—विजया

सरस्वतीव कर्णाटी विजयाङ्गा जयत्यसी ।

दा बैदभंगिरा वास. कविदासादनन्तरम् ॥

७—गणपति

दृष्टो गणपति षष्ठे महामोदविधासिनम् ।

विधाधरगर्णयंस्य पूज्यते कण्ठगञ्जिनम् ॥

८—कुलशेखर वर्मा

बूरादपि सताचिते लिखित्वाऽऽश्वर्यमञ्जरीम् ।
कुलशेखरवर्माऽऽभ्या चकाराश्वर्य-मञ्जरीम् ॥

९—गोनन्दन

अनुप्राप्तिति सदभे गोमन्दसम कुतः ।
यथार्थनामतीवाम्थ यद्वाग्बदति चाग्नाम् ॥

१०—दण्डी

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणा ।
त्रयो दण्डप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विधुता ॥

११—मायुराज

मायुराजममो जज्ञे तान्य बलनुरि कवि ।
उदन्वत ममुत्तस्थु कति वा तुहिनाश्व ॥

१२—कुमारदास

जानकीहरण कर्तुं रघुवशे स्थिते सति ।
कवि कुमारदामश्च रावणश्च यदि क्षमी ॥

१३—सुभद्रा

पर्यस्य मनमि स्थान लेभे तप्तु सुभद्रया ।
कवीना च बचोवृत्ति-चानुयेण सुभद्रया ॥

१४—शीलाभट्टारिका

शब्दार्थयो ममो गुम्फ पाञ्चाली रीतिरुच्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि ॥

१५—विकटनितम्ब

के विकटनितम्बेन गिरा गुम्फेन रञ्जिता ।
निन्दन्ति निजकान्ताना न मौढ्यमधुर वव ॥

१६—भीमट

बामञ्जरपतिरवके भीमट पञ्चमाटशीम् ।
प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशाननम् ।

१७—मनोज्ञदिवाकर

घटो प्रभावं वाम्देव्या यन्चाण्डानदिवाकर
भोहृपंग्णाभधन् गम्य गमो बागमगुरवो

१८—मयूरमट्ट

दर्पं कविभुवङ्गाना यता श्रवणगोचरम् ।
विपविद्येव मामुरी मायुरी वाङ् निवृत्नति ॥

१९—रत्नाकर

मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे
इतीव स कृतो धात्रा कवी रत्नाकरोऽगारः ॥

२०—त्रिलोचन

कर्तुं त्रिलोचनादन्धो न पार्थिविदप धाम ।
तदर्थः शरदने इष्टं सौचनद्रियिणि कथम् ॥

२१—धनंजय

द्वि सन्धाने निपुणता न ता पथे धनञ्जय ।
यथा जान कन तस्य माता पथे धनञ्जय ॥

२२—प्रमूदेवी

मूकनीता स्मरकेनीना बलात्ता च विनायभू ।
प्रमूदेवी कविर्जाटी यत्नात्प्रि हृदि निष्ठानि ॥

२३—काशिकाय

एकोऽपि जीयते ह्यन काशिकायगो न वेनचित् ।
भृंगारे सविमोङ्गारे काशिकायत्रयी तिमू ॥

२४—बालदा

- (१) गहर्पंचरिता मग्धम् धृतराज्यत्रीस्यदा ।
बालाय काशिकायैव स्वस्वन्दस पार्थिवि शिषी ॥
- (२) बालेन हृदि यत्नेन यत्नन्तीति पदत्रय ।
भवेत् कविदुग्गायां धातर तत्र बालम् ॥

२५—माघ

कृपनप्रबोधान् बापी भास्वरेव भारते ।
माघेदेव च माघेन कथं कथं न ज्ञेयः ॥

२६—भक्तं

भक्तं न कश्चिदात्रैव भवतीति तद्वदन् ।
त्रिभ्यो बालाय गहर्पंचरिताः पदत्रयं कवि ॥

स्नाता. स्वर्गतरङ्गिणीमपि मया पूजा पुनर्नित्तये ।
व्युत्पत्त्या परया रसोपनिषदां रामायणस्यास्य ते ॥

यदुक्ति-मुद्रा सुहृदर्थवीथी
नक्षारमो यच्चुलकंश्चुलुक्य. ।
तथाऽमृतस्यन्दि च यद्-वचोर्वै
रामायणं तत् कवितृन् पुनानि ॥

३७—वररुचि

यथार्थता कथं नाम्नि याऽमूद् वररुचेरिह ।
तद्दधत् कण्ठाभरणं म मदारोहणप्रिय. ॥

३८—प्रद्युम्न

प्रद्युम्नान्नापरस्येह नाटके पटवो गिरः ।
प्रद्युम्नान्नापरस्येह धौणा अपि शरा क्षरा ।

३९—प्रचल

कविरमरः कविरचलः कविरभिनन्दश्च कानिदामश्च ।
अन्ये कवयः न पदश्रवाण-मात्र पर दधन्ति ॥

४०—नालाकवयः

इह कानिदास—भर्तृमेण्ठावत्तामरस्यवर्षभारकय. ।
हरिबन्द्र चन्द्रशुक्लो परीक्षिनाविह विशालायाम् ॥
भाषा रामिणमीमितो वररुचि श्रीमाहसाङ्क. कवि
मैष्ठो भारविकालिदाम-तरला स्तन्द सुबन्धुश्चय ।
दण्डी बाणशिवारुणौ गणपति काण्ठश्च रत्नाकर
मिद्धा यस्य सरस्वती यदि भवेत् के तस्य सर्वेऽपि ते ॥

राजशेखर-प्रशस्तयः

पातु धोत्ररमायत रचयितुं वाच गता सम्मता ।
 व्युत्पत्ति परमामवाप्तुमवधि लब्धु रमखोलम ।
 भौक्नु स्वादुफल च जीविततरोर्यत्सित ते वौतुक
 तद् भ्रान शृणु राजशेखरकवे मुक्ती मृधास्थन्दनी ॥
 ममाधिगुणभालिन्य प्रमन्नपरिपक्वलिना ।
 याथावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तप ॥
 याथावर प्राज्ञवरो गुणसौराणमित मूरिमभाजवर्षे ।
 नृत्यत्युदार भणिते रमस्या नटीष यम्पोहरना पदश्री ॥
 म मूर्ती पत्नानीद्गुणगण इवाकालजलद
 सुरानन्द सोऽपि श्रवणपुटयेयैव वचसा ।
 न चान्ये मन्थले तरन्कविराजप्रभृतयो
 महाभागस्तस्मिन्त्यमननि याथावरकुले ॥
 आपन्वातिहर पराक्रमधन सौजन्यवाचनिधि
 इत्यामी मन्थगुणप्रकाशशशभृत्स्वान्त रवीना गुरु ।
 वर्ष्य वा गुणराजरोहणविरे वि तस्य भाद्रादमी
 देवी वस्य महेन्द्रपालनृपति जिष्णोः रघुप्राणणी ॥

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

- धम्मपदीक्षित
धमिनवगुप्त .. चित्रमीमामा—काव्यमाला सीरीज, १९४१ (३८)
.. धमिनवभारती—दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
१९६१
- भानन्दवर्धन .. ध्वन्यालोक—चौखम्बा मस्कृत सीरीज आफिस,
वाराणसी, १९४०
- कविकर्णपुर
कुन्तक .. अनकारकौस्तुभ—राजशाही, १९२६
.. कविविजयवित—आत्माराम एण्ड मन्स, दिल्ली,
१९५५
- केशवमिश्र .. अलकारशेखर—काशी मस्कृत सीरीज आफिस,
बनारस, १९१७
- क्षेत्रेन्द्र .. श्रौचित्यविचारचर्चा—चौखम्बा विद्याभवन,
वाराणसी, १९६४
कविकण्ठाभरण—मोतीलाल बनारसीदास, १९६७
सुवृत्ततिलक—
- दण्डी .. काव्यादर्श—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८
- धनजय .. दशरूपक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५५
१९५५
- नरेन्द्रप्रभसूरी .. अलकारमहोदधि—ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,
बडोदा, १८४२
- भरत .. नाट्यशास्त्र—भायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज,
बडोदा, १९३४
- भामह .. काव्यालकार—बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, १९५६
- भोजराज .. सरस्वती कण्ठाभरण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई,
१९३४

- मृगशारप्रकाश—पुनर्वसु, मद्रास, १९६३
- मम्मट .. काव्यप्रकाश—चौधम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६०
- राजशेखर .. काव्यमीमांसा—प्रोरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, १९२४
- रघुपक .. अलंकारमर्वस्य संजीवनी—मोतीलाल बनारसी दास, १९६५
- शामन .. काव्यालंकारसूत्र वृत्ति—काव्यमाला सीरीज, १९२६
- विद्यानाथ .. प्रतापमन्त्रयजोभूषण—गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, १९०९
- विश्वनाथ .. साहित्यदर्पण—निर्णयसागर प्रेम, बम्बई, १९३६
- विश्वेश्वर .. झलकारकौस्तुभ—काव्यमाला संस्करण,
- हेमचन्द्र .. काव्यानुशासन—निर्णयसागर प्रेम, बम्बई, १९३४
- गल्पानुशासन—बम्बई, १८८०
- गल्पानुशासन
- वाग्भट .. वाक्यानुशासनविवेक,

दृश्य-काव्य

- वाग्भट .. धर्मिज्ञानशास्त्रान्न—चौधम्बा संग्रह सीरीज प्राक्तम, वाराणसी, १९५५
- मालविद्यामित्र (नाटिका)—चौधम्बा सीरीज, प्राक्तम, वाराणसी, १९५१
- श्री हर्ष .. रत्नावली (नाटिका)—चौधम्बा संग्रह सीरीज बनारस, १९५३
- मिश्रमिश्र (नाटिका)—चौधम्बा संग्रह, वाराणसी, १९५३
- भद्रपुत्रि .. उत्तररामचरित—निर्णयसागर प्रेम, बम्बई, १९४९
- महावीरचरित—चौधम्बा विद्याभवन, बनारस, १९२५
- मानवीयाग्रह (प्रकरण)—निर्णयसागर प्रेम, बम्बई, १९३६
- राजशेखर .. वाग्भटवचन—बनारस, १९९९

- बालभारत—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
 विद्याशालभजिका (नाटिका)—चौखम्बा विद्या-
 भवन, वाराणसी, १९६५
- विह्वल .. कर्णमुन्दरी (नाटिका)—निर्णयसागर प्रेस,
 बम्बई, १८८८

सट्टक

- राजशेखर .. कर्पूरमञ्जरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
 कर्पूरमञ्जरी—आर्यभूषण प्रेस, पूना, १९६०
 कर्पूरमञ्जरी—हार्बर्ड ओरियण्टल सीरीज, १९०१
 कर्पूरमञ्जरी—यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, १९३९
- धनश्याम .. भ्रान्तमुन्दरी—मोतीलाल बनारसीदास, १९५५
- विश्वेश्वर .. शृंगारमञ्जरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
- प्रसन्नचन्द्र .. रम्भामञ्जरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८८९
- रुद्रदान .. चन्द्रलेखा

धर्म-ग्रन्थ

- ऋग्वेद .. भारत मुद्रणालय, सतारा, १९४०
- याज्ञवल्क्यस्मृति .. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
- बौधायन धर्मसूत्र .. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९३४
- वैखानस गृह्यसूत्र .. " " "

गद्य-काव्य

- वाणभट्ट .. हर्षचरित—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
- सोड्डन .. उदयमुन्दरी-कथा
 यशस्तिलकचम्पू—तारा मन्त्रालय, वाराणसी,
 १९६०
- धोमेन्द्र .. बृहत्कथामञ्जरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०१

अन्य

- अमरसिंह .. अमरकोश, पूना, १९१३
- आपटे वामन मदाशिव .. राजशेखर हिज साइफ एण्ड राईटिंग—आर्यभूषण
 प्रेस, पूना, १८८६
- बरो ए० .. भवभूति एण्ड हिज ज्येस टन सम्पूत लिटरेचर—
 बलवत्ता, १७७८

राजक्षेत्र

- डे० एम० के० एण्ट दाम } दि हिन्दी ग्रॉफ संस्ठन लिटरेचर—कलकत्ता,
गुप्ता एम० एन० } १९६४
- भा० गगानाय .. कविरहस्य—हिन्दुस्थानी अकादमी, इलाहाबाद
१९५०
- फनीट ग्रॉफ जॉन .. इडियन एण्टीक्वेरी, १८८७
- कीलहार्न एफ० .. एपिग्राफिका इण्डिका, १८८९
- कृष्णमाचारी एम० .. दि हिन्दी ग्रॉफ कनामिक्ल मस्कृत लिटरेचर, मद्रास,
१९३७
- बाणे पी० वी० .. एन इण्ट्रोडक्शन टू माहित्यदर्पण
- मूलर एफ० एक्स० .. इण्डिया क्वॉट बॅन इट टीच घग ? लन्दन, १८८३
- मिराशी वी० वी० .. पाठक कमेमोरेसन बाल्युम
- पीटमॅन एण्ड परब .. इण्ट्रोडक्शन टू बन्लभदेवाज मुभायिनावती, बाम्बे
मस्कृत मीरीड, १८८६
- विन्सन एच० एन० .. मिनेक्ट स्पेसिमन ग्रॉफ दि पियेटर ग्रॉफ दि हिन्दूज,
वा० ३, लन्दन, १८७१
- भा० गगानाय .. कविरहस्य—हिन्दुस्थानी अकादमी, इलाहाबाद,
१९५०
- .. मगील रत्नानर—धानन्दाधम मुद्रणालय, पुण्य-
पवन, १९४२